निबन्ध-कौमुदी

उच्चकोटि के निबन्ध

लेखक :

श्री साहित्याचार्य हरशरणदास 'शरण'

सुश्री सुदेश शरण 'रश्मि' बी० ए० (आनर्स) प्रभाकर।

नवयुग प्रकाशन

पुस्तक प्रकाशक तथा विक्रेता

दिल्ली

मूल्य [illegible])

भूमिका

निबन्ध साहित्य का प्रमुख अंग है। अतः इसको ठीक प्रकार से लिखने के लिए अध्ययन और अभ्यास का अवलम्बन लेना पड़ता है। किसी वस्तु के विषय में अपने क्रमबद्ध विचारों को उचित भाषा में वर्णित कर यथा स्थान रखने को ही निबन्ध कहते हैं। ऐसी दशा में लेखक वर्ण्य विषय के बारे में जितनी अधिक बातों का अनुसन्धान कर सकेगा, उतना ही उसके निबन्ध का कलेवर सुन्दर और पठनीय होगा। यह सब कुछ पुस्तकों के परिशीलन, अपने अपने अनुभव और निरीक्षण से एकत्रित किया जा सकता है। इसके साथ-साथ ही मस्तिष्क भी इतना साफ सुथरा होना चाहिये जो कि एक बार के अवलोकन और पठन से उसकी विशेष सामग्री को अपने में समेट कर रख सके और यथा समय उसका पूर्णरूप से उपयोग किया जा सके। कला के दृष्टिकोण से निबन्ध को सुन्दर बनाने के लिए निम्न लिखित बातों पर विद्यार्थियों को ध्यान देना चाहिये—

भाव संगठन—निबन्ध में कभी भी भाव संघर्ष नहीं होना चाहिये। उसकी व्याख्या के उपरान्त सब भाव एकत्रित होकर एक उद्देश्य के पूरक होने चाहिये। किसी असंगत भावों का रचना में समावेश नहीं होना चाहिये।

भावक्रम—निबन्ध में भावों का समावेश क्रमानुकूल होना चाहिये मनगढ़न्त विचारों को रखकर निबन्ध को कभी

भी बोमल नहीं बनाना चाहिए। अतः निबन्ध को लिखने से पूर्व उसका एक ऐसा ढांचा तैयार कर लेना चाहिये जिससे भावों का क्रम सुन्दर ढङ्ग से हो जाये।

संक्षिप्त—निबन्ध में ऐसे शब्दों का प्रयोग करना चाहिए जो कि थोड़े में ही लेखक के आशय से पूर्णरूप से प्रगट कर सकें। अधिक शब्दों की भरमार से रचना नीरस हो जाती है। शब्दों की अधिक पुनरावृत्ति भी नहीं होनी चाहिए।

भाषा और शैली—निबन्ध भावों का भण्डार होता है। अतः भाषा गाम्भीर्यपूर्ण होनी चाहिए। भाषा सादी और मुहावरेदार होनी चाहिए कि कठिन शब्दों का प्रयोग करके भाषा को असुन्दर नहीं बनाना चाहिए। भाषा सभ्य और ऊँचे दर्जे की होनी चाहिए। वाक्य सीधे और स्वाभाविक हों।

निबन्ध के भेद—

निबन्ध निम्न लिखित चार प्रकार के होते हैं:—

वर्णात्मक निबन्ध—इसके अन्तर्गत स्थानों, दृश्यों, पशुओं, स्थलों, संस्थाओं तथावस्तुओं आदि का वर्णन होता है। जैसे दिल्ली, शरद्-ऋतु में ताज आदि।

विवरणात्मक—इसके अन्तर्गत घटनाओं तथा यात्राओं आदि का वर्णन होता है। जैसे रेलवे यात्रा, काश्मीर समस्या आदि।

जीवन चरित्रात्मक—इसके अन्तर्गत महापुरुषों के जीवन चरित्र इत्यादि का वर्णन होता है। जैसे महात्मा गांधी, लोहपुरुष पटेल इत्यादि।

. विचारात्मक—इसके अन्तर्गत तर्क वितर्कों की प्रधानता होती है। किसी भी विषय पर अपने विचार प्रगट किये जाते हैं। जैसे—चरित्र ही सर्वश्रेष्ठ धन है।

श्री शरणजी ने उपर्युक्त सभी बातों का विशेष ध्यान रख कर निवन्ध कौमुदी" में निवन्धों का संकलन किया है। मुझे आशा है कि उनका यह प्रयास हिन्दी परीक्षार्थियों को विशेष लाभ-दायक सिद्ध होगा।

देहली

प्रो० परमानन्द 'पथिक'

विषय-तालिका

स्वतन्त्र भारत और हिंदी

किसी भी देश की भाषा उस देश के साहित्य का जीवन होती है। और वह साहित्य उस देश की जागृति का आधार होता है। इसके बिना देश निर्जीव होता है। अब तक जिन राष्ट्रों ने अपनी राष्ट्रीयता एवं साहित्य का पुनः उद्धार किया है वे सभी उन्नतिशील बन गये हैं। अतः भारत को भी उन्नतिशील बनने के लिये राष्ट्र भाषा का आश्रय लेना आवश्यक सा हो गया है। क्योंकि इसी के द्वार पर खड़े होकर हम अपने राष्ट्र की नींव को पक्का कर सकते हैं ? आज से लगभग ४ वर्ष पूर्व सात समुद्र पार रहने वाली जाति हमारी शासक थी और हम शासित थे। उन्होंने हमारे ज्ञान, आदर्श और उन्नति की चिन्ता न करके अपनी भाषा और सभ्यता में हमें रंग डाला, विदेशी भाषा ने हमारी भारतीयता को खोकर हमारे मस्तिष्कों पर पराधीन मनोवृत्ति की छाप डालदी थी। इसके अतिरिक्त उन्होंने हमारी भाषा, संस्कृति, सभ्यता और पूर्वजों के आदर्शों के प्रति हमारे हृदयों में उदासीनता ही नहीं घृणाको जन्म दे डाला। इस भाषा ने हमें पंगु, निकम्मा, अशक्त और संसार-संघर्ष के अयोग्य बना डाला है। इसके माध्यम के कारण आज हम भारतीय उन्हीं की दासता में रहना स्वीकार करते हैं। पाश्चात्य सभ्यता के इतने अनुकरण शील हो गये हैं कि अपने अच्छे बुरे को समझने के विवेक को भी खो बैठे हैं। इसके अनुकरण मात्र से भारतीय सभ्यता और पूर्वजों के आदर्श जिन पर हमें कभी गर्व था पतन के गड्ढे में जा गिरे हैं। यदि हम उनका पुनः उद्धार करना चाहते हैं तो विदेशी चोले को छोड़कर अपनी भाषा को अपनायें।

यही प्रश्न हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी को जन्म देता है। वास्तव में राष्ट्र भाषा वही होनी चाहिये जो भारत की बहु संख्यक जनता द्वारा समझी और बोली जाती हो, सरल सुबोध हो, प्राचीनता के साथ साथ

प्रान्तीय भाषाओं से बहन जैसा सम्बन्ध रखती हो। जिसका
शब्दों से भरपूर हो और देश-साहित्य जिसमें सुरक्षित हो। इस प्र
को हल करने के लिए कितनों ने ही हिन्दी का पक्ष लिया। कुछ ने उ
को इसके योग्य बताया और शेष जो रह गये उन्होंने इसके लिए हिन्दु
स्तानी का नाम अलापना आरम्भ किया। हमारे राष्ट्र के अधिकांश कर्ण-
धारों ने हिन्दुस्तानी का पक्ष लेकर हिन्दू मुस्लिम संगठन करना चाहा,
परिणाम यह हुआ कि इसका घोर विरोध हुआ जिसके कारण आपसी
वैमनस्य बढ़ गया। हिन्दुस्तानी भाषा के चोले में ऐसी भाषा की
खिचड़ी देनी चाही- जिसको हम पानी के साथ भी नहीं सटक सकते थे।

रेडियो द्वारा अरबी फारसी को ही हिन्दुस्तानी का रूप दिया गया।
यह भाषा नहीं भाषा का प्रदर्शन गृह है। जिसमें अरबी फारसी जैसे
पक्षियों के चित्र रखे गये हैं। उर्दू के पास अपना शब्द भण्डार ही
नहीं। भारत की जनता की भाषा हिन्दी ही है और वही रहेगी।

भारतवर्ष की मूल भाषा संस्कृत है। क्योंकि भारत की संस्कृति
धर्म पर आश्रित है और धर्म की भाषा संस्कृत होती है? इसका प्रचार
भारत के कोने कोने में था। इसका भण्डार अनन्त है। इसका सहारा
लेकर आज हिन्दी विश्व भर की भाषाओं का प्रतिनिधित्व कर रही है।
इसके राष्ट्र-भाषा बन जाने से सारा उत्तरी भारत एक सूत्र में बँध जाता
है। क्योंकि उत्तरी भारत-भारत की सभी भाषाओं में धर्म दश
सम्बन्धी शब्दावली एक है? अन्य भाषा में उर्दू और विदेशी भाष
अंग्रेज़ी को ही लीजिए—ये लिखी कुछ जाती हैं और पढ़ी कुछ।
दर्शन शास्त्र के अध्ययन करने से पता लगता है कि हिन्दी विदेशी
से कहीं अधिक पूर्ण की है। अतः इसकी लिपि सरल और सुगम
से प्रत्येक मानव चाहे किसी भी जाति से सम्बन्ध रखता हो
ता से समझ सकता है। इसको प्रयोग में लाने वाले लगभग
करोड़ भारतीय हैं।

हिन्दी बहुत पुरानी भाषा है, यह लगभग १०० वर्षों से देश का भार वहन कर रही है। इसकी प्राचीनता का प्रमाण स्वर्गीय राजेन्द्र-लाल मिश्र लिखित 'इन्डोएरियन्स' में एक स्थान पर लिखा हुआ मिलता है। 'भारतीय भाषाओं में हिन्दी का स्थान बहुत ऊँचा है और यह हिन्दू जाति के सबसे अधिक सभ्य लोगों की भाषा है। यह प्राचीन होने के कारण युगों के निर्माण तथा पतन का इतिहास देख चुकी है। तुलसी कृत 'राम चरित मानस' हिन्दू जनता का प्राण बन गई है। इसमें ही हमारे मानस की कितनी ही भावनाएँ रक्षित हैं, और इसमें ही हमारे साहित्य का इतिहास सुरक्षित है।

हिन्दी के द्वारा आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक सभी कार्य चल सकते हैं। इसको अन्य किसी भाषा के सामने आँचल पसारने की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

हम सर्वदा से शरणागतों का स्वागत करते आये हैं। और दूसरों को शरण देते हैं, पर उसी सीमा तक कि वे हमारे लिए जब तक भार-स्वरूप न हों। अतिथियों को स्थान देंगे—घर वालों को बाहर निकाल कर नहीं; अतः आज हिन्दी उदार, धनी, सम्पत्तिशाली, वैभवशाली, मौलिकता, सर्वभौम और सम्पूर्णता के नाते ही राष्ट्रभाषा के सुसज्जित आसन पर विराज सकी है। इतिहास इसका प्रत्यक्ष है कि मुस्लिम पूर्वजों में जायसी, कुतबन, मंझन, रसखान, रहीम और कबीर आदि ने इसको अपनी पुत्री के समान पाला है। इन्हीं मुस्लिम महानुभावों में इन्शा-अल्लाखाँ जैसे हिन्दी के सच्चे अनुरागी ने जन्म लिया है। जो हिन्दवी की छुट और दूसरी भाषा की छुट अपनी भाषा में नहीं देते थे।

विश्व भर में हिन्दी का प्रचार करने के लिए २५०० संस्थायें बन चुकी हैं। आज पत्र तथा पत्रिकाएँ अधिकतर हिन्दी ही की शरण में आ रही हैं।

भारतीय जनतन्त्र के बन जाने पर अनेक प्रान्तों में राज भाषा का बोझा हिन्दी वहन चुकी है। सारे भारत के नागरिकों के कठिन परिश्रम

के पश्चात भारत के प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू तथा शिक्षा मन्त्री ने इसको प्रधानता दी है। अब से लगभग १२ वर्ष के पश्चात् विदेशी भाषा के स्थान पर हिन्दी का पूर्ण आधिपत्य होगा।

आज स्वतन्त्र भारत की अनेकों उलझनें राष्ट्र-भाषा हिन्दी के कारण सुलझ चुकी हैं। (सम्पादक)

स्त्री समाज और शिक्षा

भारतीय संस्कृति का गौरव केवल भारत में ही है और संस्कृति से सम्बन्धित रखने वाले समाज में भारतीय नारियों का पर्याप्त स्थान है। प्राचीन युग से ही इस प्रकार की महत्ता चली आ रही है। भारतीय नारियाँ अन्य देशों के समान विलासिता की सामग्री बन करके नहीं, अपितु भारतीय संस्कृति की डोर सम्भालने वालों की सहयोगिनी हैं। इसी हेतु बहुत-सी स्त्रियों को देवी और जगतमाता कहा गया है। भारतीय ललना सदा विश्वास, श्रद्धा तथा त्याग की मूर्ति रही है। उपरोक्त शब्दों की पुष्टि 'प्रसाद जी' ने इन पंक्तियों को लिखकर की है:—

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वासरजत, नग, पग तल में।
मानस पीयूष बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में।"

विश्व सांस्कृतिक संघर्ष में भारत केवल इस नारीत्व के महान आदर्श को लेकर के ही सर्वदा मान्य रहा है। नारी और पुरुषत्व की देन भारतवर्ष की मौलिकता है।

इन्हीं सब कारणों से पुरुष के साथ स्त्री जाति को भी शिक्षित होना अनिवार्य है। नारी माता के रूप में पूजनीया, पत्नि के रूप में अर्द्धांगिनी तथा वृद्धावस्था में धात्री मानी गई है। शिक्षा का माध्यम

मस्तिष्क को परिपुष्ट करना है और अशिक्षित पत्नि होने के कारण अधिकांश परिवार आजकल के राष्ट्रीय युग में नर्क के समान बन रहे हैं। और आज इस युग में सच्चा सहयोग न मिलने के कारण ही भारतीय संस्कृति दिन प्रतिदिन अवनति की ओर जा रही है। इसी कारण बड़े-बड़े विद्वानों का कथन है कि जीवन की लम्बी यात्रा में अथवा गृहस्थी के कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है।

विश्व के दर्शन करते जाइए तो आपको पता चलेगा कि विश्व की उन्नति शिक्षा के बल पर ही चरम सीमा तक पहुँच सकी है। यदि स्त्री जाति अशिक्षित होने के कारण घर और बाहर की दशा से सर्वदा अनभिज्ञ रहती आई है और वे बेचारी अपने जीवन को विश्व की प्रगति के अनुकूल बनाने में सर्वदा असमर्थ रही हैं। प्राचीन कूप मंडूकता के कारण उनका अधिक जीवन भांति-भांति के संघर्षों में व्यतीत हो जाता है। शिक्षा के कारण उनका पारिवारिक जीवन स्वर्गमय हो सकता है और उसके उपरान्त देश, समाज तथा राष्ट्र की उन्नति में वे पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा भिड़ाकर चलने में समर्थ हो सकती हैं।

इन सब के उपरान्त यह प्रश्न उठता है कि भारत जैसे धार्मिक देश में कौन सी शिक्षा पद्धति भारतीय ललनाओं के लिए की जाये, जिससे वे गृहस्थ को सुचारू रूप से और अपने जीवन-मार्ग को ठीक प्रकार से चला सकें। आज कल की नारियाँ पाश्चात्य शिक्षा का अन्धानुकरण करके अपने शरीर को लिपस्टिक, पाउडर से लपेट कर भारतीय संस्कृति को लात मार कर और गृहस्थी जीवन के गौरव को संज्ञाहीन बना रही हैं। आज देश स्वतन्त्र है और वे स्वतन्त्र भारतीय संस्कृति की पूजनीय आत्मायें हैं। इसलिये उन्हें चाहिए कि वे संस्कृति की योग्यतानुसार अपने कार्यक्रम को निर्धारित करें और ऐसी शिक्षा जैसे सीना, पिरोना, बालबच्चों का पालन-पोषण और पति की सेवा इत्यादि की शिक्षा ग्रहण करें। हमारे समाज में शिक्षित माता गुरू से भी बढ़-

कर मानी जाती है। क्योंकि वह अपने पुत्र को महान से महान बना सकती है। आज जितने भी हमारे महापुरुष गुज़रे हैं, उनकी मातायें शिक्षित थीं। इसीलिए आजकल की नारियों को आडम्बर से रहित और जीवन के सन्निकट पहुँचने के लिए जिस शिक्षा की आवश्यकता पड़ती है वह लेनी चाहिए। आधुनिक कुशिक्षा के कारण बहुत सी स्त्रियाँ जीवन के क्षणिक आनन्द में अपना सर्वस्व खो बैठती हैं और अन्त में उन्हें अपने जीवन से निराश होना पड़ता है।

बहुत सी स्त्रियाँ शिक्षित होते हुए भी केवल धन के लिए ही कलह पैदा कर देती हैं। ऐसी स्त्रियाँ शान्त जीवन नहीं चाहतीं वे तो भरपूर घर को श्मशान बना देना चाहती हैं।

स्त्री समाज को पुरुष समाज की भाँति शिक्षित नहीं होना चाहिए, क्योंकि दोनों के कार्य क्षेत्र भिन्न हैं। स्त्री यदि गृह-स्वामिनी है तो पुरुष बाह्य क्षेत्र का अधिष्ठाता है। गृह को चलाने के लिए जितने भी कार्यों की आवश्यकता पड़ती है, स्त्रियों को उनका ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है और पुरुष का जीविका-उपार्जन करना, सन्तान शिक्षा, समाज तथा राष्ट्र की सेवा करना है।

स्त्री शिक्षा के लिए माध्यम मातृ भाषा अधिक उपयुक्त है। स्त्रियों को शिक्षा के साथ-साथ शारीरिक शिक्षा देना भी आवश्यक है। क्योंकि आजकल की शिक्षित स्त्रियाँ बहुधा फ़ैशन की पुतली बन जाया करती हैं, जो आत्मिक उत्थान के लिए एक कलंक है। इसी कारण वे शरीर से निर्बल होती हैं।

भारत के अन्दर शिक्षा की कमी है। यहाँ अन्य देशों के अतिरिक्त स्त्रियों में शिक्षा की बहुत न्यूनता है। जिस देश का पुरुष-समाज ही अधर शिक्षित हो उस देश की स्त्रियाँ अशिक्षित क्यों न होंगी? इतिहास इसका प्रमाण है कि देश की स्वतन्त्रता में स्त्रियों का पूर्ण सहयोग रहा है। इन्हीं सब बुराइयों को दूर करने के लिए स्त्री-शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है। (सम्पादक)

जीवन में पुस्तकों का महत्व

जिस प्रकार शारीरिक स्वास्थ्य रखने के लिए पौष्टिक भोजन की आवश्यकता है उसी प्रकार मानसिक स्वास्थ्य के लिए सत्साहित्य-सद्‌ग्रन्थों की आवश्यकता है। पुस्तकों में निहित ज्ञान से ही मनुष्य की मानसिक तथा बौद्धिक शक्तियों का विकास होता है। जिन लोगों ने ग्रन्थावलोकन का महत्व जाना है, वे नित्य कुछ समय पुस्तकों के बीच अवश्य व्यतीत करते हैं। यदि किसी कारण से किसी दिन पुस्तकों का सत्संग प्राप्त नहीं करते तो उस दिन उनको अभाव-सा अनुभव होता है।

पुस्तकें हमारे जीवन की पूरक हैं। पुस्तकों के होते हुए हमें कभी संगी-साथियों का अभाव नहीं खटकता। ग्रन्थ हमारे सगे मित्र और स्नेही सखा हैं। जीवन में जब कभी अभाव से पीड़ित हो जी घबराता हो, ऐसे समय जब स्नेह-सहानुभूति की आवश्यकता हो, आड़े समय सहायता के लिए किसी सहृदय सखा की खोज हो तो आप पुस्तकों की शरण में जाइये। वे अत्यन्त प्रेम और सहानुभूति की बातें सुनायेंगी और मित्र की भांति आपका दुख दूर करेंगी। उनमें कोई आपको धीरज देते हुये कहेगी—'छुश! वीर होकर घबराता है। धीरज न खो, सैनिक-समान आगे बढ़! जानता नहीं राम ने कितना कष्ट सहा। पांडव मारे मारे फिरे। अन्त में विजय उन्हीं की हुई।' उनकी वीरता-पूर्ण उत्साह-वर्धक वाणी सुन कर आप वक्षस्थल तान खड़े हो जायेंगे! तो उनमें से कोई आपकी कमर थपथपा कर कहेगी—'शाबाश! तेरी विजय होगी!'

पुस्तकें हमारे लिए पथ-निर्देशक हैं। हमें प्रलोभन से बचाती हैं, हमें पथ-भ्रष्ट नहीं होने देतीं और प्रकाश-स्तम्भ के समान विश्व सागर में तैरते हमारे जीवन-जलयान को मार्ग दिखाती हैं। जब कभी प्रलोभन या आतङ्क से हम अपना आदर्श भूल रहे हों, पथ से अलग जा रहे हों, तो इनके पास जायें। दुर्वार्द्र हो, हमारा हाथ पकड़ कर हमें दृ

सुनायेंगी। इनमें से कितनी चीज उठेंगी—प्रलोभन में आकर आदर्श की हत्या करता है पगले ! उन ऋषियों को नहीं जानता जिनकी तू सन्तान है। प्रताप, दयानन्द, दुर्गादास को कितने प्रलोभन दिये गये, पर वे अपने पथ से न डिगे।" हम अपनी निर्बलता पर लज्जित हो, आँखों में आँसू भर लायेंगे। तो उनमें से कितनी ही वात्सल्यमयी माता के समान हमें चूम कर कहेंगी "यह तो तेरी क्षणिक दुर्बलता थी! तू वीर-पुत्र है, प्रलोभन को ठुकरा देने वाला।"

पुस्तकें ही हमारे ज्ञान कोष की तिजोरी हैं। इन्हीं के हृदय में हमारे पूर्व ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, इतिहास, साहित्य सुरक्षित हैं। आज भी लाखों वर्षों के सुरक्षित ज्ञान-रत्न इन्हीं में सुरक्षित रखे हैं और इन्हीं के कारण हम उनके अधिकारी हैं। इन्हीं के द्वारा हमारे पूर्वजों ने अपने ज्ञान-धन की वसीयत हमारे नाम की है। आज हम जिनके स्वामी बन-कर गर्व से मस्तक उन्नत कर रहे हैं। गौतम कपिल, वाल्मीकि आदि आर्य मुनियों को हुए लाखों वर्ष व्यतीत होगये, पर पुस्तकों के द्वारा उनका ज्ञान आज भी हमें प्राप्त है। राम-कृष्ण की कहानी आज की तो नहीं है, बहुत प्राचीन है। पर पुस्तकों के द्वारा उनकी वीरता, शक्ति, शौर्य, निर्भयता, युद्धकला आदि सभी जैसे बिल्कुल नवीन-सी लग रही हैं।

पुस्तकें हमारे और पूर्व पुरुषों के बीच दुभाषिया हैं। इनके द्वारा आज भी हम अपने पूर्व पुरुषों, ऋषि, मुनियों, आर्य-वीरों, दार्शनिकों से बातें करते हैं। इन्हीं के हृदय में हमारे पूर्व ऋषि तप में लीन, आचार्य ज्ञानोपदेश देने में तत्पर और वीरविजय-ध्वजा फहराते हुए मिलते हैं। इन्हीं के द्वारा हम पूर्वजों से घबराहट में धैर्य, युद्ध में प्रोत्साहन, कष्ट में सहानुभूति, उलझन में सुसम्मति और विराम में आनन्द प्राप्त करते हैं। इनमें वर्णित महा पुरुषों के कार्य-कलाप आज भी हमारे प्राणों को पावन प्रेरणा प्रदान करते हैं। कष्टों में राम हमारे साथी हैं। युद्ध में भीम-अर्जुन हमारे साथ युद्ध करते हैं। मृत्यु-शय्या पर पड़े भाई के

लिए हनुमान संजीवन लाते हैं ? पुस्तकों के द्वारा आज हमारे पूर्वज अमर हैं। राम-कृष्ण अन्तर्ध्यान हो गये, पर अब भी उपस्थित हैं। पाण्डव हिमालय में गल गये, पर आज भी वे जीवित हैं। आज भी वे सक्रिय हैं, सचेष्ट हैं और प्रयत्न शील हैं।

उदास-अनमने, कार्य-भार-पीड़ित, थके-मांदे, और शिथिल हो जाने पर कौन आपको गुदगुदाता है ? मनोरंजक पुस्तकें ! वे आपको गुदगुदा देती हैं और एक हँसोड़-साथी के समान आपकी उदासी दूर कर देती हैं। कैसी स्वच्छन्द हँसी से वे आपका कमरा गूंजा देती हैं ! फिर कैसी उदासी और सुस्ती ? घर पर कोई नहीं है, मन अनमना-सा है, एकान्त सूना-सूना बड़ा अखरता है वह समय ! किसी सहृदय ग्रंथ को उठाइये और पढ़ना आरम्भ कीजिए। फिर न आपको एकान्त अखरता है न सूना पन खटकता है। आप के पास सहृदय साथी है जो आपसे खुले दिल से बातें करता है।

पुस्तकें घबराहट में धैर्य, उद्विग्नता में शान्ति, उदासी में मुस्कान अन्धकार में प्रकाश और एकान्त में सच्ची संगिनी हैं। वे उलझन में सुसम्मति, सुस्ती में गुदगुदी हैं। यही आवश्यकता में मित्र और अपूर्णता अभाव में पूर्ति हैं। पुस्तकें हमारी मानसिक तृष्णा को तृप्ति और बौद्धिक विकास की संजीवन-सुधा हैं! पर हमें इनकी बातें समझने की आदत और समझ होनी चाहिए। अतः जीवन में पुस्तकों का महत्त्व पूर्ण स्थान है। (सम्पादक)

महात्मा गांधी और उनकी देश सेवा

जब १९वीं सदी की सांझ थी, दो अक्टूबर १८६९ को पोरबन्दर के दीवान की कोठी में इस युग के क्या, युग युगों के महानतम व्यक्तित्व ने प्रथम बार अपनी पलकें खोलीं ? इस नवजात शिशु का नाम था मोहन लाल कर्मचन्द गांधी।

वैभव और सम्पन्नता के गौरव में वह शिशु किशोर हुआ। जबकि वे अध्ययन में लगे हुए थे तभी उनके पिता का देहान्त हो गया। १७ वर्ष की आयु में जब वे अध्ययन के लिए इङ्गलैंड जाने लगे उस समय वे एक पुत्र के पिता बन चुके थे।

इङ्गलैंड के विलास वातावरण में भी अपने व्यक्तित्व में अछूते फूलों की सी पवित्रता रखते हुए उन्होंने वकालत की योग्यता प्राप्त कर ली। यहीं उनके जीवन का विकास हुआ। बम्बई वापस लौटने पर माता की मृत्यु का शोक-समाचार सुना। फिर वे कुछ दिनों तक वकालत करते रहे, परन्तु उसमें सफल न हो सके। तभी पोरबन्दर की एक कम्पनी के वकील होकर वे दक्षिण अफ्रीका गए। वहां भारतीयों पर होता अपमान सहन न कर सके और इस पर चोटें खाईं—ईंट और पत्थरों से।

उन्होंने 'नेटाल इण्डियन कांग्रेस' नाम से एक युग की स्थापना की। ऐसे युग की जिसमें मनुष्यता, अन्याय और घृणा का बदला प्रेम और न्याय से लिया जाता था। इसके कुछ दिनों के उपरान्त ही वे भारत लौटे। घूम घूम कर होने वाले भारतीयों पर अत्याचारों का रूप जनता के सम्मुख खड़ा कर दिया। अंग्रेज़ों के विरुद्ध दक्षिण अफ्रीका में एक बहुत बड़ा विप्लव हुआ। जिसमें गांधी जी ने सेवक बन कर कार्य किया। जिन गोरों ने उन पर पत्थर फेंके थे। उन्हीं के घावों को उन्होंने धोया। जिन्होंने उनकी बेइज्जती की थी उन्हीं की जानें बचाईं। नफ़रत और मौत के बदले में प्यार और ज़िन्दगी का वरदान देने वाले इस मानव को देखकर देवताओं की आंखों में भी आंसू भर आये होंगे।

इस पर भी गोरों के अत्याचार दिन और रात के समान बढ़ने लगे। तो गांधी जी ने फोनिक्स में एक आश्रम की स्थापना की—और 'इंडियन ओपिनियन' नामक एक समाचार पत्र निकाला। उसी के पश्चात् की कहानी संघर्षों की एक लम्बी गाथा है। 'काला कानून' जिसके अनुसार हर भारतीय को अपने अंगूठे की छाप देनी होती थी। भारतीय विवाह नाजायज करार दे दिए गये। सारे भारतीयों पर एक मौत का

सा सन्नाटा छाया हुआ था। उस समय गाँधी जी की एक ही आवाज़ ने मुर्दों में जान डाल दी और वे अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए चल दिए दल बाँधकर। उनकी जादू भरी आवाज़ ने हमें जानवरों के बजाय इन्सान बना दिया। और फिर हमने रगों में लाल रक्त की अधिकता महसूस की और संसार ने अचरज से देखा कि किसी प्रकार से सदियों की गुलाम क़ौम ने करवट ली और हुंकार उठी। अन्त में आवाज़ पर विजय का सेहरा बँधा और भारतीय विवाह जायज़ करार दे दिया गया। 'काला कानून' हटा दिया गया और जनरल स्मट्स को झुकना पड़ा। इसी बीच में प्रथम महायुद्ध छिड़ा और गाँधी जी के अनुसार भारतीयों ने युद्ध में सहायता की।

सन् १९१५ में गाँधी भारत लौटे। भारत ने बाहें फैलाकर अपने मसीहा, अपने पैगम्बर का स्वागत किया। उन्हें महात्मा कह कर पुकारा। सारे भारतका भ्रमण करके उन्होंने साबरमतीको अपना साधना-स्थल चुना और वहीं अपना आश्रम स्थापित किया। वहां पर भी शांति न मिली और चम्पारन के नील की कोठियों से उठती हुई दर्द और कराह की आवाज़ ने उन्हें बेचैन कर डाला और वहां अन्दोलन द्वारा शांति स्थापित की।

थोड़े समय पश्चात् ही अहमदाबाद के मिल मज़दूरों के आन्दोलन के सिलसिले में प्रथम बार ही उन्होंने अपने जीवनमें उपवास किया। और १९१८ में दिल्ली में युद्ध सम्मेलन हुआ। और महात्मा जी ने स्वयं रङ्गरूटों की भर्ती करने में सहायता दी, परन्तु स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण उन्हें बकरी के दूध की शरण लेनी पड़ी.

इधर तो लोग रोलट बिल का विरोध कर रहे थे। उधर पंजाब की धरती ख़ून से रंग उठी। जलियाँ वाला बाग़ में सैकड़ों निर्दोष गोलियों से भून दिये गये और ख़ूरेज़ी की एक भयंकर लहर ने सारे हिन्दुस्तान को डुबो दिया। लेकिन ४० करोड़ हिन्दुस्तानियों का पाप अपने सिर गांधी जी ने ले लिया। और तीन दिन तक उपवास किया। इस पर

१ अगस्त १९२० को उन्होंने फिर असहयोग आंदोलन आरम्भ कर दिया। खिलाफ़त और स्वराज्य दोनों की आवाज़ें उठीं और विदेशी उपाधियों, स्कूलों, अदालतों और विदेशी कपड़ों का बहिष्कार कर दिया और प्रिन्स आफ़ वेल्ज़ के आगमन के समय विदेशी कपड़ों की आग की रोशनी से ब्रिटेन के ताज और तख़्त थर्रा उठे।

इस पर भी जनता अपने पर नियन्त्रण न रख सकी। बम्बई में गोली कांड हुआ उसकी प्रतिक्रिया में जनता ने पुलिस का थाना जला दिया इससे गांधी जी को बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने पांच दिन का उपवास किया।

१० मार्च १९२२ को इन्हें ब्रिटिश सरकार का मेहमान बनना पड़ा। परन्तु शारीरिक अवस्था ठीक न होने के कारण सरकार उन्हें अधिक दिन मेहमान न बना सकी। फिर उन्होंने साइमन कमीशन का विरोध—'साइमन लौट जाओ' के नारे के साथ किया। जिससे ब्रिटिश साम्राज्य की नींव हिल गई। फिर ये नमक कानून तोड़ने के अपराध में गिरफ्तार कर लिए गये। गांधी-इर्विन समझौते पर ही पुनः छोड़े गये। इसी कारण कितनी ही बार उन्हें अनशन करने पड़े। और कितनी ही बार सरकार का मेहमान बनना पड़ा। इसी बीच में द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया। भारत को बिना उसकी सलाह के युद्ध में सम्मिलित घोषित कर दिया गया।

सन् १९४१ में 'क्रिप्स प्रस्ताव' आया। परन्तु गांधी जी ने इसे 'बेकाम चेक' बता कर नामंज़ूर कर दिया। और उसके बाद उन्होंने 'भारत छोड़ो' की आवाज़ उठाई। ब्रिटिश राज्य जिसमें कभी सूरज डूबता ही नहीं था कांप उठा।

सन् १९४२—इसी वर्ष कांग्रेस ने भी इसी प्रस्ताव का समर्थन किया और ९ अगस्त को सभी नेता गिरफ्तार कर लिये गये। ज्वालामुखी के शिखर उठा लिये गये। और हिन्दुस्तान धधक उठा। उसके बाद महान अगस्त का आंदोलन हुआ जिसमें अंग्रेज़ों ने भी मार कर

हिन्दुस्तानियों को कुचला और ज़िम्मा भी गांधी जी और कांग्रेस के माथे थोप दिया गया।

फिर उन्होंने २१ दिन का अनशन किया और सरकार ने उन्हें वहाँ छोड़ दिया। इसी बीच मौत ने उनसे भाई महादेव देसाई को छीन लिया था। फरवरी में कस्तूर बा ने भी उनका साथ छोड़ दिया था। ६ मई सन् १९४४ को इन दो मौतों की पीड़ा से व्यथित गांधी जी को सरकार ने छोड़ दिया। फिर वे बम्बई गये और कायदे आज़म से भेंट की।

उसके पश्चात् कान्फ्रेंसों का एक लम्बा दौर चला। शिमला कान्फ्रेंस अभी भूली नहीं थी। १२ मई १९४६ को नई योजना आई और अन्तरिम सरकार बनी, मगर १६ अगस्त के बाद बंगाल में भयंकर हत्याकांड शुरू हो गया। अपनी जीवन सन्ध्या में इन हत्या कांडों से गाँधी जी का दिल सिहर उठा। वे पैदल गाँव-गाँव में शांति का अलख जगाते हुए चल पड़े। परन्तु अग्नि पूर्ण रूप से धधक उठी थी, बंगाल में दबी, बिहार में फिर धधक उठी।

सन् १९४७ में वे बिहार पहुंचे वहाँ का दंगा शांत किया। उसके पश्चात् तो जैसे पशुता और रक्तपात ने उन्हें चैन न लेने दिया। १५ अगस्त १९४७ को जब भारत भर में आज़ादी की खुशियाँ मनाई जा रही थीं। उस समय गांधी जी कलकत्ते में साम्प्रदायिक शांति कराने में व्यस्त थे। वहाँ पर भी उन्हें उपवास करना पड़ा। कलकत्ते के ठंडे होते ही दिल्ली धधक उठी। ८ सितम्बर को वे दिल्ली पहुंचे। कौन जानता था कि दिल्ली में जहाँ इतनी बादशाहतें समाप्त हुईं, वहीं उस देशभक्त को भी अपनी मौत देखनी पड़ेगी? १३ जनवरी को उन्होंने अपना अन्तिम उपवास किया, सारा देश थर्रा उठा। नेताओं ने शांति स्थापना का वायदा किया। उन्होंने उपवास तोड़ा। ३० जनवरी को एक मराठे हिन्दू नाथूराम गोडसे ने तीन गोलियों से उनकी हत्या कर दी।

भारत के आसमान का सूरज डूब चुका था। भारत की आत्मा की

रोशनी गुम गुदी थी। और आगे क्या होगा इसको सोच कर मन कांप उठता है।

बापू सत्य के प्रतीक थे। उन्होंने ही अव्यवस्थित भारत को सुन्दर उपवन का रूप दिया था। वही वह आत्मा थी जिसने चालीस करोड़ पशुओं को ठीक मार्ग पर चलाया था। वह करोड़ों में एक थे। वह एक राजनीतिक व्यक्ति थे। उनकी बुद्धि महान् थी। वह भारत के सच्चे देश सेवक थे। उनकी सेवायें भारत के प्रति महान् थीं।

(श्री योगेश्वर चन्द्र)

भारत की वैज्ञानिक उन्नति

मनुष्य का स्वभाव उसकी उद्दण्डता का जीता जागता चित्र है। प्राचीन इतिहास बताता है कि आरम्भ में उसे शिकार पर ही अपना जीवन निर्वाह करना पड़ा। उसे जंगली व हिंसक पशु-पक्षियों का सामना करना पड़ा, किन्तु फिर भी सफल रहा। इन सब संघर्षों से पार लगाने का एक मात्र श्रेय उसकी बुद्धि को ही है।

इसी कारण उसने समस्त विश्व के प्रत्येक प्रकार के पशुओं को वश में किया और उनसे मन चाहे काम लिए। उसने गायों का दूध दुहा, बैलों से हल जुतवाये और हाथी घोड़ों से सवारियों के स्थान पर कार्य लिया। यह था मानव का प्रारम्भिक युद्ध।

इसके पश्चात् मनुष्य ने प्रकृति के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया और स्वयं ही मैदान में आ कूदा। उसने वन के वृक्षों को काट डाला और उनकी लकड़ियों को अनेक प्रकार से काम में लाया, नदियों पर पुल बांधे और सुगम से सुगम मार्ग निकाले। पृथ्वी के पेट को चीर कर उसमें से अनेक प्रकार की वस्तुएँ निकालीं, समुद्र इत्यादि के वक्षःस्थल पर नौका विहार किया और बड़े से बड़े नगर बसा दिये।

कहते हैं 'आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है।' (Nece-

ssity is the mother of. Invention) और ठीक भी है मनुष्य को आवश्यकता थी और उसने उसे पूरा किया। पहिले मनुष्य अपने निर्दिष्ट स्थान पर कई दिवसों की कठिन यात्रा के पश्चात् घोड़ा-गाड़ी या घुड़दौड़ इत्यादि के द्वारा पहुँचता था, किन्तु आज उसी यात्रा को वह कुछ घण्टों में पार कर लेता है। यह सब किसके कारण ? यह है मनुष्य की तीव्र बुद्धि व कला-कौशलता। उसने भाप द्वारा चलित एक इस प्रकार की गाड़ी को बनाया जो कि बड़ी से बड़ी, कठिन से कठिन यात्रा कुछ घंटों में ही पूरा कर देती है। यह है वाटस साहब की बुद्धि का एक चमत्कार ! उसने (मनुष्य ने) मोटर साइकिल और अन्य ऐसे यन्त्र बनाये जिसके द्वारा उसने अपनी प्रत्येक कठिनाइयों को दूर कर दिया। उसने न केवल थल पर ही विजय प्राप्त की अपितु जल व नभ में भी विजय प्राप्त कर ली। उसने बताया कि मनुष्य पशु-पक्षियों के समान आकाश में भी उड़ सकता है। उसने आकाश में उड़नेवाले उड़न खटोले की समस्या का यथार्थ रूप में उड़कर जग को यह प्रमाण दिया कि यह कहानियाँ जो कि उड़न खटोले से सम्बन्धित हैं और जो श्रीराम के विषय में बताई जाती हैं कहाँ तक सत्य हैं ! जल पर उसने बड़े-बड़े जहाज़ चलाये जिसके कारण उसने एक प्रान्त के मनुष्य को दूसरे प्रान्त के मनुष्यों के सम्पर्क में आने का व व्यापार को बढ़ाने का सुगम मार्ग बताया। मनुष्य ने यही नहीं किया क्या उसने इससे भी आगे बढ़ने की ठान रखी है ? दिनों दिन विज्ञान अपनी प्रतिभा से उसे आगे बढ़ने में सहायता दे रहा है। उसे भविष्यत् से और भी बहुत आशाएँ हैं।

मनुष्य ने प्रकृति को दबाकर एक नई वस्तु प्राप्त की। यह है विद्युत अर्थात् बिजली उसने पानी को झरनों का रूप दिया और ऊंचाई से गिरा कर उससे यह अनुपम शक्ति उत्पन्न की।

विद्युत शक्ति ने तो एक प्रकार का कल्पवृक्ष स्वर्ग से लाकर मृत्यु-लोक में उपस्थित कर दिया। एक बटन दबाया नहीं कि सारा नगर विद्युत की विशुद्ध निर्मल । ज्योत्स्ना में पूर्ण हो उठा।

तमसो मा ज्योतिर्गमय ! की प्रार्थना कम से कम भौतिक रूप में स्वीकृत हो जाती है ! इतना ही नहीं यह शक्ति आपकी चाकरनी बनकर आपके घर को परिष्कृत करती है । बटन दबाते ही आज्ञा का पालन होना प्रारम्भ हो जाता है । जाड़े में गरम वायु और गर्मियों में शीतल पवन का सेवन कर लीजिए ! पवन देव भी आपके इच्छानुवर्ती बन जाते हैं । इसी शक्ति के कारण अब मनुष्य का अगला कदम व उसका भाव या मनोरंजन। उसने रेडियो जैसी कला का निर्माण किया। जिसके द्वारा वह निज कमरे में बैठकर दूर दूर के समाचार व अनेक भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। टेलीविज़न (Television) द्वारा वह बोलने व गाने वाले का चित्र आपके सामने ला सकता है। यह है मनुष्य का अन्तिम नूतन आविष्कार । वायरलैस द्वारा उसने हजारों मील दूर बैठे आदमी का आदमी से अपना सम्बन्ध स्थापित किया। इन आविष्कारों ने मनुष्य को अजय बना दिया।

मनुष्य ने कठिन से कठिन बीमारी के ठीक करने के सुलभ से सुलभ साधन निकाले। एक्सरे और रेडीयम द्वारा चिकित्सा शास्त्र में बहुत कुछ वांछनीय परिवर्तन हो गया है । मनुष्य को अपने भीतर की बात जानने के लिए अनुमान का सहारा नहीं लेना पड़ता अपितु (Xray) एक्सरे द्वारा सब कुछ ज्ञात होता है। इन सब का श्रेय केवल एक फ्रांसीसी महिला को ही है जो कि क्यूरी के नाम से आजकल संसार में विख्यात है।

अनुवीक्षण (Microscope) यंत्र ने नाना प्रकार के कीटाणुओं को प्रकाश में लाकर चिकित्सा शास्त्र में एक हल चल सी पैदा कर दी है ! इन कीटाणुओं द्वारा रोग के निदान में भी बहुत कुछ सुगमता हो गई है ! इसी कारण से मनुष्य ने मनुष्य को दूसरा जन्म दिया है। और उनके आरोग्य करने के विविध साधन निकाले। और इन्हीं आविष्कारों द्वारा मनुष्य ने मनुष्य जाति को संगठित कर ही तो दिया।

हवाई यातायात की उपयोगिता सभी देश समझ चुके हैं। और उसकी उन्नति सभी सम्भव उपायों से करना चाहते हैं। डाक पार्सल आवागमन आदि में ये चीज़ अत्यधिक सहायक सिद्ध हुई हैं। इन हवाई जहाज़ों के द्वारा अल्प काल में ही दूसरे देशों से सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। दो घन्टों में चमन के ताज़े टूटे हुए अंगूर कन्धार के अनार व काश्मीर के सेब हमारे हाथों में आ सकते हैं।

छोटी छोटी नौकाओं से बड़े से बड़े जल यान बनाये गये हैं समुद्र के भीतर पनडुब्बियाँ काम करती हैं। और समुद्री अन्तर्गत का भेद भी मनुष्य से अदृश्य नहीं रहा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मनुष्य ने जल, थल व नभ तीनों को पदाक्रान्त कर दिया।

दूरवीक्षण (Telescope) यंत्र हमें आकाश के तारागणों की सैर करा कर विश्व की अनंतता का भाव अनुभूत कराते हैं। ये ही घातक तोपों के सहकारी बनते हैं।

प्राचीन काल के धनुष बाण व ढाल तलवार के स्थान पर मनुष्य ने नई नई प्रकार की तोपें, बन्दूक, व भूमिसात् करने वाले टैंक व बड़े-बड़े लड़ाकू जहाज़ को नाम शेष करने वाली पनडुब्बियों का आविष्कार किया। इसने और कई प्रकार से अपने शत्रु को नाश करने के लिए विषैली गैस व एटम बाम्ब व हाईड्रोजन बाम्ब जैसी घातक अस्त्रों का निर्माण किया।

मनुष्य ने बेचारे बैलों को अवकाश देने के लिए ट्रैक्टर का निर्माण किया-यह एक प्रकार का हल है जो कि केवल एक मनुष्य के तनिक से इशारे में कई सौ बीघे खेत को बिना किसी बैल इत्यादि की सहायता से अल्प समय में जोत डालता है। यह है भारत की उन्नति की प्रथम सीढ़ी। किसान इसी के द्वारा अधिक से अधिक अन्न पैदा कर सकता है और वह भी बिना परिश्रम के।

सारांश यह है कि अगर प्राचीन मनुष्य एक बार पुनर्जीवित होकर

नवीन संसार को देखे तो भौंचक्का-सा रहजाय और यदि आज का मनुष्य प्राचीन लोक में चला जाय तो उसका जीवन दूभर हो जावे।

श्री मदनकुमार 'गुप्ता' बी० ई० (मैकेनिकल इन्जीनियर)

कलम और तलवार

कलम और तलवार विश्व की महान शक्तियों में से हैं। इस 'ऐटम युग' में भी इनके कार्य प्रशंसनीय हैं। इन दोनों में से ऊपरी दृष्टि से तो तलवार ही अधिक शक्तिशाली प्रतीत होती है। किन्तु लेखनी की ओर से इतना उदासीन होना उसके साथ अन्याय ही करना होगा। दोनों की तुलना करने से ही इनकी वास्तविकता का शुद्ध ज्ञान हो सकता है। यही है इस समस्या का हल।

तलवार की प्रसिद्धि केवल उसकी संहारिक शक्ति पर ही निर्भर है। जबकि लेखनी अपने प्रभावोत्पादकता के गुण से विश्व में नाम कमाती है। जहाँ तलवार में बड़े बड़े विशाल साम्राज्यों को जीतने की क्षमता है वहाँ कलम में भी ऐसी अद्भुत शक्ति विद्यमान् है। जिसने बड़े बड़े संगदिल राजाओं को मोम-हृदयक बना दिया और भीरु मनुष्यों को वीरता का पाठ पढ़ा कर सच्चे देश रक्षक बना दिया है। जहाँ तलवार से चन्द्रगुप्त, अर्जुन और राम-लक्ष्मण आदि वीरों ने अपने अपने समय में एक हलचल मचा दी, उसी प्रकार लेखनी के मतवाले कालीदास, प्रेमचन्द, और भारतेन्दु जैसे लेखकों ने साहित्य-गगन में कभी भी न समाप्त होने वाली क्रान्ति मचा दी है। यदि यह लेखक अपनी कलम से इतिहास न लिखते तो आज *अर्जुन, चन्द्रगुप्त आदि का नाम तक लेने वाला कोई न होता। यही हैं इसी छोटी सी वस्तु के गुण।*

यदि असि हमें शत्रु के प्रहार से बचा सकती है तो एक लेखनी के लिखे हुए दो शब्द किसी अभागे को फाँसी के तख्ते से उतार कर उसके प्राणों की रक्षा कर सकते हैं। इतना ही नहीं बिहारी के एक दोहे ने

भोग विलास में फँसे हुए बूँदी के महाराज जयसिंह को जो अपनी नव-विवाहिता पत्नि के पीछे राज्य की देख रेख करना भी छोड़ चुके थे। कुछ ही पत्रों में एक प्रजावत्सल राजा के रूप में परिवर्तित कर दिया। वह निम्नलिखित दोहा जो फूलों में छिप कर बिहारी ने राजा को भेजा था अब भी विश्व में अपना कोई सानी नहीं रखता है :—

नहीं पराग नहिं मधुर मधु, नहीं विकास इहि काल।
अलि कली ही सों बंध्यो, आगे कौन हवाल॥

राष्ट्र के मूले को ऊँचा सोचा करने वाली यह दोनों शक्तियाँ वैसे तो प्रशंसा की अधिकारिणी हैं। पर यह तो कहना ही पड़ेगा कि लेखनी का योद्धा 'लेखक' तलवार का धनी 'सिपाही' से अधिक मान पाता है। लेखक विद्वान होते हैं और 'विद्वान सर्वत्र पूज्यते'। जबकि तलवार के धनी का मान तो हिंसा के पुजारी ही करते हैं। दोनों में चाहे एक जैसे ही गुण हैं। एक लेखक का शस्त्र है उसकी कलम और उसका युद्धस्थल केवल उसके साहित्य का मैदान ही होता है जहाँ वह रक्त के स्थान पर स्याही का प्रयोग करता है और विजय की पताका सर्वदा लहराता है जबकि एक सिपाही अपने अस्त्र 'तलवार' को लेकर युद्धस्थल में रक्त की नदियाँ बहा कर ही विजय पा सकता है। जिसमें विनाश ही विनाश दृष्टिगोचर होता है।

कलम की असाधारण शक्ति वहाँ पहुँच जाती है। जहाँ कि तलवार क्या सूर्य भी नहीं पहुँच सकता जैसा कि किसी ने कहा है—

'जहाँ न पहुँचे रवि, तहाँ पहुँचे कवि।'

कहते हैं तलवार तो केवल काट ही सकती है, पर कलम काट कर जोड़ भी सकती है। वह अपने अद्भुत जादू से दो तड़पते हुए प्रेमियों को मिला देती है। और कभी कभी वियोग की धधकती हुई ज्वाला में भस्म भी कर देती है।

इस महान अन्तर को देख कर कलम का स्थान केवल इसलिए ऊँचा है क्योंकि तलवार केवल अत्याचार, विनाश, क्रूरता और अन्याय

का प्रचार करने में ही सफल हुई है? बापू जी जैसी महान शक्ति ने भी तलवार का आश्रय इसीलिए न लेकर अहिंसा के मत द्वारा ही अपनी मातृभूमि को स्वतन्त्र कराया। तलवार केवल क्रोध और रोष का विष पिला कर मनुष्य की पिपासा को शांत करने की चेष्टा करती है। जबकि कलम प्रेम और सहानुभूति का अमृत पिला कर हृदय पर शांति का साम्राज्य कर देती है। लेखनी केवल धर्म, दया, प्रेम और सुख की वर्षा करती हुई अपने जीवन-पथ पर अग्रसर होती रहती है। तलवार का उठाने वाला सर्वदा नाश की ओर बढ़ता है। जबकि कलम को उठाने वाला सफलता के अमर पथ पर चलता है। कलम की विजय प्रेम और बुद्धि के होने के कारण 'अमर विजय' को प्राप्त करने वालों में ही गांधी जी, विवेकानन्द, दयानन्द, और शंकराचार्य, बाल्मीकि तथा कालिदास के नाम उल्लेखनीय हैं। ऐसे महापुरुषों ने कलम का सहारा लेकर ही जगत में अपनी अमिट छाप स्थापित कर दी है। इसलिए कलम की महत्वता तलवार से कहीं अधिक हो जाती है।

किन्तु किसी भी राष्ट्र के लिये आज के 'ऐटम युग' में दोनों का सम्मिश्रण आवश्यक है। तलवार का प्रयोग शत्रु पर और कलम का प्रयोग जनता पर होना चाहिए। पहले तो कलम से ही प्रयोग लेना लाभदायक है, यदि सफल न हो तो तलवार की आवश्यकता पड़ ही जाती है। इस प्रकार दोनों ही अपने-अपने स्थान पर उच्च हैं।

(सुश्री सुदेश शरण 'रश्मि')

यशोधरा

विरहाग्नि से झुलसित पुतलियाँ, प्रियतम की राह में बिछी पीड़ित पलकें, अतृप्त उच्छ्वासों से मुरझाये ओष्ठ, विवशताओं से जर्जरित हृदय और कसक-वह्नि से जर्जर यौवन, विकल-ताप से तपित पीत-

धर्य सूखा सा कंकाल—एक ओर तो करुणा की साकार प्रतिमा। दूसरी ओर सबलता, सचेष्टता और सृजन की मूर्ति। यही उस अबला नारी का चित्र है जो नारीत्व का आदर्श, संयम की शक्ति, त्याग-तपस्या की उपमान और सहिष्णुता की देवी है।

अबला-जीवन हाय ! तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी॥

उपरोक्त पंक्तियाँ यशोधरा के जीवन पर पूर्ण घटित होती हैं। प्रियतम की विरहाग्नि में तिल तिल करके जलना उसकी दिन चर्या है और उसकी स्मृति में गल गल कर बहना उसका अर्घ्यदान है। अतृप्त-उच्छ्वासों कि झोंकों में उड़ी उड़ी सी रहना, उसका जीवन क्रम है और मानस मन्दिर में प्रीतम दर्शन की ज्योति जगमगाये रहना उसकी स्नेह साधना। कल्पनातीत विजन के उस पक्षी के चरणों में, जो उसे निद्रावस्था में छोड़ गया है, मानस-अरमान-सुमनों का निष्काम समर्पण ही उसकी पूजा है और उसकी शुभ-कामना 'जायें सिद्धि पावें वे सुख से' यही प्रार्थना ही उसकी वरदान-अभिलाषा है।

यशोधरा के सुनहरे स्वप्न परकटे पंछी से उसके सन्मुख ही पड़े छटपटे हैं और वह अभागी अपने अश्रुजल से उन्हें सुधि में लाने का निष्फल प्रयत्न करती रहती है। उसकी भीगी पलकें अरमान विहंगों पर लगी रहती हैं और उसके मग श्रवण तमिस्र राह में प्रियतम की पगध्वनि खोजते हैं। और तड़प उठती है अपनी विवशता से भरी परिधि में रहते कितनी करुणा है यशोधरा के इस सुमुख जीवन में—कौन पाषाण है? जो यशोधरा की इस करुण दशा पर न पिघल जाये।

विरह-ज्वाल से भस्म होने वाली नारी सृजन, निर्माण और पोषण करने वाली है। अपनी विकलता को छिपाकर पुत्र के भविष्य निर्माण के लिए संजीवनी सुधा का पान करती है। वियोगिनी के भेष में वह आदर्श माता है। धू-धू करके ज्वाला जलने पर भी राहुल के लिए उन शुष्क अधरों पर भी सुनहरी हास्य से पूर्ण रेखा है। अन्तर जलता है पर

अधरों को मुस्कराना पड़ता है। मानस देश में भयंकर झंझा उठी है। जीवन नौका डगमगाने लगी है पर यशोधरा शांत गम्भीर और कार्य-संलग्न है। जब कभी नयन निर्झर बारि को बहाने में लीन होते हैं तो उस अवस्था को राहुल से बहाना करना पड़ता है। 'कुछ आँख में गिर गया है। हाँ गिर गया है। प्रियतम की निष्ठुरता के पाषाण कण नयनों में गिर कर करक रहे हैं।' पर अबोध राहुल इसको क्या जाने ! वह दुख से पीड़ित होते हुए भी राहुल के मार्ग निर्माण की व्यवस्था करती है। जहाँ एक ओर उसके नयनों में सावन के मेघ बरसते हैं, वहाँ उसकी पुतलियों से राहुल के लिये बसन्ती पूर्णिमा की रजत ज्योत्सना भी बरसती है। ओठों के उच्छ्वासों की छाया में माता के आशीर्वाद भी सुरक्षित हैं। यह है 'आँचल में दूध' की पूर्णता का रूप।

इतना सब कुछ सहन करते हुए भी यशोधरा की पुतलियों में आशा का प्रकाश है। अभिलाषाओं में अपनी शक्ति पर गर्व है। उसकी शक्ति की महिमा से ही भव-भव के ईश स्वयं पुजारिन के द्वार पर आते हैं। उनको देखते ही नारी का स्वाभिमान जाग उठता है—'सोती छोड़ गये हैं, तो स्वयं मेरे द्वारे आवें'। मैं उनके पास क्यों जाऊँ ? और अन्त में उसके स्वाभिमान की विजय होती है।

यशोधरा वास्तव में त्याग की प्रतिमा है। वह अपने इष्ट को दक्षिणा के रूप में राहुल को भेंट करती है • क्यों कि इसके लिये उससे मूल्यवान वस्तु और कोई नहीं ?

वास्तव में यशोधरा आदर्श आर्य वधु और आदर्श आर्यमाता के रूप में विश्व के सम्मुख आती है। उसके सभी आदर्श अनुकरणीय हैं।

(सम्पादक)

हिन्दुओं का गौरव गुमान-शिवा

मुग़ल साम्राज्य सत्ता का अधिकारी औरंगजेब भारत गगन पर बबरता का तारडव नृत्य करा रहा था। अनीति राक्षसो की दुर्दम्य दाढ़ों हिन्दू-धर्म की सरल सुकुमार आत्मा निर्दयता पूर्वक चबाई जा रही थी। आतंक वाद की तप्त ज्वाला में नागरिकता झुलसी जा रही थी। जब कि यह सब होरहा था, दक्षिण में संवत् १६८४ वि० में माता जीजी बाई के कोख से शिवनेरि के दुर्ग में इस महान आत्मा का जन्म हुआ। उस समय उनके पिता बीजापुर दरबार में उच्चपदाधिकारी थे। दादाकोणदेव की शास्त्र धर्म शिक्षा ने और माता की धार्मिकता ने शिवा को कट्टर हिन्दू के रूप में विश्व के सामने खड़ा किया। समर्थ रामदास के उपदेशों के द्वारा उन्होंने हिन्दू-राष्ट्र की स्थापना की और बाल्यकाल, दक्षिण के बन-पर्वत, गिरि कन्दराओं में फिर-फिर कर बिता दिया।

यौवन का उभार उठा। बिखरी हुई मरहठा शक्ति को एकत्रित किया गया। और १६ वर्ष के इस युवक ने अपनी अल्प सैन्य शक्ति के द्वारा तोरण दुर्ग को अपने कब्जे में कर लिया। इस प्रकार उनकी शक्ति बढ़ती गई और उनके आक्रमण आस पास होने लगे। इस अवस्था को देख कर बीजापुर का शासन डगमगाने लगा। नवाब का ऐश्वर्य भंग होने लगा और अंत में उसने शिवा की इस आँधी को शान्त करने के लिये अफ़ज़लखाँ पाती को भेजा।

अफ़ज़लखाँ को पूर्ण विश्वास था कि वह युद्ध के द्वारा शिवा को परास्त नहीं कर सकता। अतः उसने भेंट के द्वारा उनको मारने का षडयन्त्र रचा। भेंट होने पर अफ़ज़लखाँ ने तलवार का वार करना चाहा। परन्तु शिवा पहले से ही तैयार थे। उन्होंने हाथ में पहने हुए बाघनख के द्वारा अफ़ज़लखाँ के प्राण ले लिये और छिपे हुए मरहठे सैनिकों ने यवन [illegible]

पराजय मे मराव के घुटने तोड़ दिये । शिवा का आतंक पूर्ण
में होगया, और वहां के राज्यों को महाराज शिवा से संधि करनी प

इसके उपरान्त और शक्ति को बढ़ाकर उन्होंने कितने ही क़िले
और फिर मुग़ल राज्य पर छापा मारना आरम्भ कर दिया। उनके
को देखकर औरंगजेब का हृदय कांप उठा। शिवा को परास्त
के हेतु अपने मामा शाइस्तख़ां को भेजा। रात्रि के समय उसने
विश्राम किया जहाँ उस शेर का लालन पालन हुआ था।

नीरव गगन, निस्तब्ध समीर, शांत दिशाएं, काजल
रजनी, निद्रा से लिप्त सारी नगरी, हाथ को हाथ नहीं सूझता,
गगन में टंगे आकाश-द्वीप ही महत्वाकांक्षियों का पथ-निर्देश क
हैं। ऐसे वातावरण में शाइस्तख़ां पूना के महल में विश्राम-विस्त
पड़ा सुख-स्वप्न देख रहा है।

तलवारों की झन्कार ने अंधकार को चीर डाला। सोता हुआ
वरण संभल भी न पाया था कि सिर धूल में लोटने लगे। आह! अ
मचने लगी। लाशों से महल भर गया। एक युवक का वार
विलास की मूर्ति शाइस्तख़ां पर होता है। परन्तु भेंट उसकी
को पड़ती है और वो खिड़की से कूद कर अपने प्राण बचा लेता है

भागने वाला शाइस्तख़ां शेर शिवा से बच ही गया।
आक्रमण में शिवा की पूर्ण विजय हुई।

× × × ×

शाइस्तख़ां की पराजय मुग़ल सत्ता के लिये भयंकर आघात
औरंगजेब इसको सहन न कर सका। उसने एक विशाल सेना के
राजा जयसिंह को शिवा से युद्ध करने के लिये भेजा। शिवा
विशाल सेना का सामना नहीं कर सकते थे और न ही वे हिन्दुओं
रक्त बहाना चाहते थे। अतः शिवा ने जयसिंह से सन्धि कर
और कुछ दुर्ग उनको दे दिये। सन्धि के अनुसार शिवा दरब

उपस्थित हुए। औरंगजेब ने उनका अपमान करने के लिये उनको पंच-हजारी सरदारों की सेना में खड़ा कर दिया।

शिवा इस अपमान को सहन न सके। उनकी भृकुटी तीव्र हो उठी, ओंठ फड़कने लगे, मुँह तमतमा उठा। और फिर शिवा ने भरे दरबार में कड़े शब्दों द्वारा औरङ्गजेब की बेइज्जती की। इसके फलस्वरूप शिवा को उनके पुत्र शम्भा जी के साथ नज़रबन्द कैद कर दिया गया। परन्तु यह शेर अपनी चतुरता से औरङ्गजेब के चंगुल से निकल भागा और अपने देश में पहुँच गया। वहाँ उनका नियमपूर्वक राज्याभिषेक हुआ और सितारा को राजधानी बनाया गया। राज्य-स्थापना के उपरान्त उन्होंने अपनी रणचतुरता से मुग़लों के छक्के छुड़ा दिये। उनको परास्त करने के लिये औरंगजेब का बहुत-सा धन, समय और बल क्षीण हो गया, पर वे परास्त न हो सके।

× × × ×

शिवा के दरबार में एक मरहटा युवक ने एक मुग़ल राजकुमारी को उपस्थित किया। उसको देखते ही उनकी आँखें क्रोध से लाल हो गईं, फिर भी उन्होंने शान्त चित्त से कहा—'क्या ही अच्छा होता यदि मेरी माता भी इतनी ही सुन्दर होती, तो मैं इतना कुरूप न होता?' इन शब्दों को सुनकर सारा दरबार विस्मय-विमुग्ध हो उठा। महिला का इससे अधिक सम्मान क्या हो सकता है? और फिर वह सम्मान सहित मुग़लों के हवाले कर दी गई। ये थी उनकी नारी-पूजा।

शिवा आदर्श के अवतार, सदाचारी, नीतिकुशल और सुयोग्य शासक थे; उनके राज्य में शान्ति थी और प्रजा सुखी थी।

महाराज शिवा हिन्दुओं के गौरव-गुमान, राष्ट्र के अभिमान और आर्य जाति की शान थे। उनके कार्य-कलाप, आदर्श वीरत्व, अलौकिक साहस इत्यादि सराहनीय हैं। हिन्दू-कुल-कमल-दिवाकर, प्राचीन आर्य गौरव, मार्तण्ड छत्रपति शिवा सम्वत् १७३७ ई० में स्वर्ग सिधारे।

(सम्पादक)

भारतवर्ष में सह-शिक्षा

'नारी का हृदय कोमलता का पालना है, शीतलता की छाया है,
दया का उद्गम है।'

'स्त्री कोमलता है, पुरुष कठोरता है।'

हिन्दी के अमर साहित्यकार कविवर स्वर्गीय 'जयशङ्कर प्रसाद' की
ऊपर लिखित दोनों पंक्तियों पर पाठक यदि विचार पूर्वक मनन करें, तो
उन्हें सृष्टि के नियामक की रचना का मर्म भली भांति विदित हो सकेगा
वस्तुतः ईश्वर ने स्त्री और पुरुष की रचना सोद्देश्य की है। बाह्याका
में ही नहीं, आन्तरिक रूप में भी दोनों की रचना में महान् अन्तर है
शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त भी दोनों का कार्य क्षेत्र पृथ
पृथक् ही है। दुर्भाग्य का विषय है कि पाश्चात्य देशों की भाँति भार
में भी आज सह-शिक्षा-प्रणाली प्रचलित है इससे स्त्री और पुरुषों
समुचित शिक्षा दीक्षा नहीं मिल पाती। जिसके अभाव में वे भावी जीव
में उन्नति पथ पर अग्रसर नहीं हो पाते साधारण सी बात है, पा
कोई ध्यान नहीं देता। जब स्त्री और पुरुषों की रचना में स्वयं प्र
महोदय ने ही इतना विशाल अन्तर समुपस्थित किया है, तो दोनों
लिए समान शिक्षा कैसे हितकर हो सकती है? मानव जीवन
साफल्य तो वास्तव में इस बात में है कि शिक्षा स्त्री को 'स्त्री'
पुरुष को 'पुरुष' बना सके। इसके प्रतिकूल हम देखते हैं कि सह-शि
के कारण दोनों का समुचित विकास नहीं हो पाता। एक विद्वान् ला
यक ने ठीक ही कहा है कि सह-शिक्षा का सबसे अधिक उग्र दोष
दृष्टि-पथ में आता है वह है कि पुरुष में स्त्रीत्व का तथा स्त्री में पुरु
की भावना का श्रीगणेश हो गया है जो राष्ट्र के लिए हानि कारक
वे कहते हैं कि—

'The first and formost outcome of educati
has been very ruinous. It is this. The boys h

become girlish and the girls have become boyish. This fact cuts at the root of country's progress.'

वास्तव में बात भी यही है। ऊपर लिखित उदाहरण नितान्त युक्ति युक्त है। आज का पुरुष सह-शिक्षा के कारण कायर हो चला है। आज वह पाउडर, क्रीम, शरीर के श्रृङ्गार आदि की ओर अधिक दत्त चित्त है जो देखा जाय तो स्त्रीत्व के आवश्यक गुण हैं। इन्हीं वर्तमान कायर पुरुषों पर व्यंग करते हुए श्री वियोगी हरि ने 'वीर सतसई' में लिखा है कि—

'कवच कहा ए धारिहैं, लचकीले मृदुगात ।
सुमन हार के भार जे, तीन तीन बलखात ॥
× × × ×
'किमि कोमल अंग ओदिहैं असहनीय असि घाय ।
जिनपै गड़त गुलाब की गाढ़ खरोंट पड़ि जाय ॥'

दूसरी ओर ज़रा स्त्रियों की ओर दृष्टि डाल लीजिये। आज पुरुषों की भावना स्त्रियों ने ग्रहण कर ली है। आज वे निर्भीक, निर्मम व सबल बनने का प्रयत्न कर रही हैं और बहुत कुछ सफल हो भी चुकी हैं। 'अबला' विशेषण अब स्त्रियों को अधिक उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। भारतीय नारी आज पारचात्य नारी का अनुकरण कर रही है। हमें अपने देश को इस विनाशक प्रवृत्ति से बचाना है। हमें भारत को भारत बनाना है, इङ्गलैंड नहीं। इस लेख के लेखक को भली प्रकार स्मरण है कि एक बार 'मैनचेस्टर गार्जियन' में उसने परचात्य नारी के अधः पतन सम्बन्धी लेख पढ़ा था जिसका उत्तरदायी एक अंग्रेज़ लेखक ने सह-शिक्षा को ही ठहराया था। भला सोचिये कि जो सह-शिक्षा पश्चात्य देशों को भी अधिक हितकर सिद्ध नहीं हो सकी, वह भारत में किस प्रकार हित-साधक हो सकती है? तात्पर्य यह कि सह-शिक्षा प्रणाली देश के लिये बिलकुल उपादेय नहीं। स्त्री और पुरुषों को

पृथक् पृथक् विद्यालयों में उनके व्यक्तित्व के अनुरूप ही शिक्षा-दीक्षा दी जानी चाहिए ताकि यह शिक्षा-दीक्षा भावी जीवन में उन्हें सफल बना सके तथा देश उन्नतिशील बन सके।

शिक्षा के उद्देश्यों की ओर भी यदि दृष्टिपात करें तो सिद्ध हो जाता है कि सह-शिक्षा पूर्णतः उपादेय नहीं। शिक्षा के तीन प्रधान उद्देश्य हैं—शारीरिक, मानसिक, व आत्मिक विकास। इन तीनों अङ्गों की समुचित उन्नति पर ही शिक्षा तथा मानव-जीवन का साफल्य निर्भर करता है। कुछ लोगों का विचार है कि शिक्षा-मन्दिरों में मानसिक विकास के लिए ही यथेष्ट प्रयत्न किया जाना चाहिए, शारीरिक व आत्मिक विकास के क्षेत्र शिक्षा-मन्दिर से बाहर की वस्तु हैं। सूक्ष्म विचार करने पर उक्त मत निरर्थक ही प्रतीत होता है। 'विद्यार्थियों से' नामक पुस्तक में महात्मा गांधी ने तीनों ही तत्वों पर समान रूपेण ज़ोर दिया है। यदि मनुष्य का शरीर रुग्ण है तो मानसिक रूप से वह स्वस्थ नहीं हो सकता, और यदि उसकी आत्मा कलुषित है तो निश्चित रूप से उसके विचार भी विकृत होंगे। इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षा के इन तीनों अङ्गों का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है। अस्तु, प्रश्न यह उठता है कि क्या सह-शिक्षा स्त्री और पुरुष को इन तीनों दृष्टिकोणों से समुन्नत एवं पुष्ट बनाती है?

सर्व प्रथम हम शारीरिक दृष्टिकोण को लेते हैं। कवि-कुल-गुरु कालिदास ने 'कुमार-सम्भव' में 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' कह कर शरीर के समुचित विकाश की ओर हमारा ध्यान ठीक ही आकृष्ट किया है। वास्तव में शरीर के रुग्ण होने पर हम कोई कार्य ही नहीं कर पाते। इस दृष्टिकोण से सह-शिक्षा नितान्त दोषपूर्ण है। प्रायः देखा जाता है कि लड़कियाँ लड़कों के कालेजों में शाम को खेलने आती ही नहीं। वे तो विद्यालयों के बन्द प्रकोष्ठों में मूक प्रतिमा की भांति बैठ कर अध्यापक के व्याख्यान को सुनकर घर लौट जाती हैं। बस यही उनकी शिक्षा है। स्पष्ट ही है, उनका शारीरिक विकास नहीं हो पाता।

दूसरे, स्त्री और पुरुष के लिए खेल भी तो समान नहीं हो सकते। स्त्री पुरुष की भाँति क्रिकेट, वाली बौल, हौकी आदि नहीं खेल सकती। इतना व्यायाम तो स्त्री को कठोर बना देगा, जो उसके भावी जीवन में घातक सिद्ध होगा। मातृत्व के लिए कोमल भावनाओं का होना अत्यावश्यक है। यदि पुरुष के समान स्त्री क्रूर एवं कठोर बन जायगी, तो यह निश्चित है कि बच्चों का पालन पोषण कदापि उपयुक्त नहीं हो सकता। राष्ट्र के भावी नागरिकों का निर्माण अच्छी माताओं पर ही निर्भर करता है। विधाता ने कठोरता एवं क्रूरता के लिए पुरुष को उत्पन्न किया है। स्त्रियों को पुरुष के ग्रहण करने की क्या आवश्यकता है जब उनके लिए अन्य गुणों का मनोरम भण्डार एकत्रित है? सारांश यह कि सह-शिक्षा मन्दिरों में शरीर का समुचित विकास नहीं हो पाता। स्त्रियाँ तो इस अधिकार से वञ्चित ही रहती हैं।

मानसिक दृष्टिकोण से दोनों का विकास अवश्य ही पर्याप्त मात्रा में हो जाता है। यदि यह कहा जाय कि सह-शिक्षा का साफल्य केवल इतना ही है तो मैं समझता हूँ कि अतिशयोक्ति न होगी इस सम्बन्ध में भी आलोचना आज विद्वज्जगत में प्रचलित है। वह यह कि मस्तिष्क के समुचित विकास के लिए स्त्री और पुरुषों के लिए पाठ्य-क्रम (Courses of Study) पृथक् पृथक् होने चाहिए। जो विषय पुरुष के लिए हितकर हो सकते हैं, वे स्त्रियों के लिए कदापि नहीं हो सकते। स्त्रियों को विशेष रूपेण गार्हस्थ्य-शिक्षा, मातृत्व-भावना आदि की शिक्षा दी जानी चाहिए ताकि उनके भावी जीवन में वह उन्हें उपादेय एवं सहायक सिद्ध हो सके।

धार्मिक दृष्टि-कोण से तो यह सह-शिक्षा अतीव विनाशक है। विद्वानों का मत है कि १२ वर्ष की अवस्था तक बालक-बालिकाओं के अध्यन का प्रबन्ध यदि एक साथ हो, तो कोई हानि नहीं है क्योंकि इस समय तक उनमें क्रमशः पुरुषत्व और स्त्रीत्व की भावनाओं का विकास नहीं आरम्भ होता। बारह वर्ष के उपरान्त सह-शिक्षा मन्दिरों में उनका

एक साथ अध्ययन करना मानो व्यभिचार को बढ़ावा देना है। पाश्चात्य देशों में व्यभिचार का जो बाजार आज गर्म है, उससे प्रत्येक शिक्षित भारतीय भली प्रकार परिचित है। हमारे यहाँ भारतीय मनीषियों ने आठ प्रकार का मैथुन माना है। अविवाहित स्त्री-पुरुषों का परस्पर सम्भाषण व हंसी-मजाक आदि भी एक प्रकार का मैथुन ही है। पाश्चात्य देशों में इसे 'कोर्टशिप' (Court ship) कहते हैं तथा नैतिक दृष्टिकोण से गर्हित नहीं समझते, परन्तु भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के यह सर्वथा प्रतिकूल है। इस सह-शिक्षा का कुप्रभाव आज हमारे देश में भी शीघ्रता से व्याप्त हो रहा है। यह हमारा दुर्भाग्य है। बड़े २ शहरों में नित्य प्रति गर्भपात आदि की घटनाएँ इस व्यभिचार की ज्वलन्त उदाहरण हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि यह सह-शिक्षा भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार सर्व-प्रकार से निषिद्ध एवं वर्जित है। पाठकों को यह जानकर सम्भवतः आश्चर्य होगा कि इस व्यभिचार को रोकने के लिए अब पाश्चात्य देशों में भी सह-शिक्षा-विरोधी आन्दोलन आरम्भ होने लगे हैं। इटली व जर्मनी में सह-शिक्षा-मन्दिरों की समाप्ति इस दिशा में एक सफल प्रयास है। अस्तु आज जब पश्चिम राष्ट्र अपने को सह-शिक्षा के कुप्रभाव के चंगुल से मुक्त करने में लगे हुए हैं, तो क्या कारण है कि हमारे देश में भी यह शिक्षा-प्रणाली पूर्णतः समाप्त न कर दी जाय? यदि इस दिशा में सरकार ने महत्त्वपूर्ण उपाय नहीं किया, तो यह देश का दुर्भाग्य ही होगा। कहाँ भारतीय उच्चतम आदर्श कहाँ भारतीयों का सह-शिक्षा से उत्पन्न यह अधः पतन! यह एक घोर विडम्बना है।

सह-शिक्षा के एक पक्ष पर विचार करना मैं परम आवश्यक समझता हूँ। सह-शिक्षा पर मेरा एक बार अपने कालिज की सहपाठिनियों से विचार-विनिमय हुआ। उन्होंने सह-शिक्षा के समर्थन में केवल यह दलील दी कि इसके द्वारा वे पुरुष से किसी प्रकार कम नहीं रहतीं। पुरुष को भी अपने को उच्चतर एवं श्रेष्ठतर समझता है, निरुत्तर करने

के लिए यह शिक्षा नितान्त आवश्यक है। ऐसा ही भ्रान्त मन प्रायः अन्य सदकियों का भी होगा, इसकी मुझे पूर्ण आशा है। इसका उत्तर में केवल यही दे सकता हूँ कि समाज में स्त्री और पुरुष दोनों समान रूपेण महत्वपूर्ण हैं। गृहस्थ-जीवन रूपी रथ के ये दो पहिए कहे जाते हैं। पुरुष यदि अपने को उच्च समझता है, नारी को दासी समझता है उसको उसके अधिकारों से वंचित करता है तो यह अवश्य ही उसकी भूल है। सारपूर्ण तथ्य तो केवल इतना ही है कि शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त स्त्री और पुरुष दोनों के कार्य-क्षेत्र भी पृथक्-पृथक् हो जाते हैं। पुरुष का क्षेत्र है घर के बाहर और स्त्री का घर के अन्दर। यही कारण है कि स्मृतिकारों ने नारी को 'गृह-स्वामिनी' कहकर सम्बोधित किया है, परन्तु आज भारतीय नारी को 'गृह-स्वामिनी' नाम से चिढ़ है। घर का प्रबन्ध सम्भालना, राष्ट्र के भावी नागरिकों का समुचित पालन-पोषण करना, भोजनादि की व्यवस्था करना आदि कार्यों को वह दासों का कार्य समझती है। यह मत पूर्णतः भ्रान्त एवं निराधार है। हाँ एक बात अवश्य है, वह यह कि जहाँ पुरुष और स्त्री में परस्पर संघर्ष एवं अधिकारों का अपहरण होने लगता है, वहाँ जीवन अवश्य नारकीय हो जाता है। पुरुष को चाहिए कि वह नारी के अधिकारों का अपहरण न करे। जहाँ नारियों की पूजा होती है, वहीं देवता निवास करते हैं—'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता !' स्पष्ट ही है कि सह-शिक्षा भावी दाम्पत्य जीवन के लिए एक घोर अभिशाप है। आज स्त्री और पुरुष में जो कलह तथा परित्याग की भावना (Divorce) दिखाई पड़ रही है, उसका मूल कारण सह-शिक्षा ही है, कुछ और नहीं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सह-शिक्षा वस्तुतः हानिप्रद ही है। इसके भीषण परिणामों की कल्पना मात्र से हृदय सशंक हो उठता है। भगवान करे, इंगलैंड, अमेरिका का दूषित वातावरण हमारे देश में प्रसारित न हो। वह राष्ट्र के लिए बड़ा ही शुभ दिन होगा, जिस दिन हमारे देश में सह-शिक्षा की समाप्ति के लिए यथेष्ट प्रयास किया जायेगा। भगवान ऐसा ही करें। (श्री श्रवण कुमार एम० ए० एल० टी०)

अधिकार नहीं, सेवा शुभ है।

सेवा मनुष्य के हृदय में जीवोपकार की पावन भावना भरकर उसे
ीन-हीन प्राणियों की पीड़ा दूर करने को प्रेरित करती है और अधिकार
नुष्य को दूसरों पर शासन करने तथा आज्ञा पालन कराने का अधि-
ार देता है। सेवा की प्रेरणा में मानव-हृदय में निष्काम-कर्म-भावना
ी जागृति होती है और मनुष्य दयार्द्र गद्‌गद् हृदय, छल-छल पुत-
ियों, शुभचिन्तना पूर्ण इच्छाओं, कुशल-क्षेम की अभिलाषाओं से
ीड़ित और दुखियोंकी सहायता सुश्रुसा करता है। और अधिकार पाकर
ुष्य अभिमान, दम्भ, सकामना-पूर्ण इरादों से दूसरों से कार्य
राता है।

सेवा स्वतः सम्पूर्ण और स्वाधीन है। इसे किसी अवलम्बन, सहा-
ता या आज्ञा की आवश्कता नहीं। सच्चा प्राणी-सेवक निष्काम और
ाधीन है। उसे सेवा करने के लिए किसी की प्रेरणा नहीं चाहिए,
ाज्ञा नहीं चाहिए और मूल्य नहीं चाहिए। वह अपनी सेवा का पुर-
ार, प्रसिद्धि, उपहार या पद के रूप में प्राप्त करने की अभिलाषा नहीं
रता, सेवा का पुरस्कार तो स्वयं सेवा है-वह आत्मानन्द है जो उसे
ियों की सेवा करने से प्राप्त होता है। सेवा का मूल्य तो यही है
उसके द्वारा पीड़ित की पीड़ा दूर हो जाय। सेवा के पैरों पर प्रसिद्धि
टती है, ख्याति उसकी चरण धूलि अपने मस्तक पर लगाती है,
ामाजिक उच्च पद उसके पदों से पवित होने के लिए उतावले रहते
। सेवा उनकी उपेक्षा नहीं करती। हाँ, स्वीकार करती है तो इसलिए
इनके द्वारा वह अपने शीतल वरद आशीर्वाद और भी विस्तृत क्षेत्र
ारसा सके।

सेवा तो स्वयं अपने में पूर्ण तथा स्वाधीन है, पर अधिकार बिना
के भयंकर दैत्य बन जाता है। सेवा के संकेत-चिन्हों पर चल कर
अधिकार अमृत कर सकता है। सेवा की संगति से अधिकार की

पूजा की जाती है। सेवा के आशीर्वाद से अधिकार मानव-हृदय का प्रिय बनता है। जहाँ अधिकार कोरा अधिकार हुआ, वहाँ दम्भी, दुराभिमानी, अपकारी बनकर विश्व का घृणा भाजन बन जाता है। प्राचीन घृणा भाजन बन जाता है। प्राचीन काल में अधिकार सेवा का सेवक था, आज्ञाकारी था अधिकारियों के हृदय में सेवा-भावना की प्रधानता थी और वे सदा के लिये अधिकार का अंजाल मोल लेते थे। राम अधिकारी नहीं सेवक थे। तभी तो मानव से देवता बन गये। अब अधिकार में सेवा की प्रेरणा नहीं, तभी तो वह आज आतंक का प्रतीक और अत्याचार का आधार बन गया है।

सेवा त्याग की जननी है और अधिकार प्राप्ति का पति। जो आत्मानन्द त्याग-प्रदान करने में है, वह क्या प्राप्ति में हो सकता है। देने वाला दाता और धनी है और मांगने वाला, प्राप्त करने वाला, एक भिक्षुक ही! दाता-त्यागी संसार की श्रद्धा-भक्ति, प्रेम और शुभ-चिन्तना का अधिकारी बनता है और चाहने वाला, प्राप्त करने वाला, उपेक्षा का पात्र। त्यागके कारण आज भी बलिदानियों के मुकुटमणि हैं और प्राप्त करने के कारण विष्णु आज भी 'वामन' कहलाते हैं।

संसार के उत्पीड़न, कष्ट, अत्याचार अन्याय सभी का जनक है अधिकार दैत्य और शान्ति, सुख, समृद्धि—समानता की माता है सेवा संसार में आज इतना संघर्ष क्यों? संसार आज अधिकार शैतान का उपासक बन उसे प्राप्त करने को पागल हो उठा है। विश्व के सिर पर अधिकार लिप्सा का भूत बुरी तरह सवार है। इसी अधिकार-दैत्य की प्राप्ति के लिए अबीसीनिया के काले मानव भून डाले गये। स्पेन में रण-चण्डी का खप्पर भर गया। पोलैंड में बर्बरता का नग्न नृत्य हुआ। इसी अधिकार के कारण देश-देश में संघर्ष है, स्थान-स्थान पर अशांति है, घर घर में कलह है। जो गृहस्थ त्याग और समर्पण सेवा और देन की भित्तिपर अचल खड़े थे आज अधिकारकी आँधीने उनकी जड़ें हिला दी हैं। इसी अधिकार ज्वाला में आधुनिक दम्पति भस्म हो रहे हैं।

अधिकार जब अपने नग्न रूप में आता है तो निर्धनों, निर्बलों
सूली ठठरियों पर गोलियों की वर्षा करता है, अस्थि-पंजरों को आति
से घुन देता है, सेवा के भूखे पीड़ित जन समूह को रौंद देता है
यही अधिकार अपने अभिमान और पागलपन की उन्मत्तता में संसा
इतिहास के पृष्ठों पर रक्त से रंगी कथाओं का चित्रण करता है
अधिकार का नशा ही तो है, जो मानव को राक्षस बना देता है।

और सेवा जब अपने वास्तविक रूप में आती है तो संसार
आशीर्वादों की वर्षा होती है। पीड़ितों के सिसकते उच्छ्वास इसक
शीतल स्निग्ध मुस्कान छूकर मुस्करा उठते हैं। आततायी और अत्या
चारियों द्वारा सताये दीन-हीन की भीगी—पलकें हँस देती हैं और
घबराये सांसों में सन्तोष और विश्राम की विश्रांति आ जाती है।
इसी अधिकार शैतान का सताया, अधिकार दैत्य का रौंदा हुआ मानव
सेवा के शीतल अंचल की छाया में विश्राम लेता है।

अधिकार विध्वंस का विधाता, सर्वनाश का स्रष्टा, अभिशाप का
आधार, उत्पीड़न का पिता और दुखों का भ्राता है। उधर सेवा दया
की देवी, शांति सुख की सृजनहारी, विश्व प्रेम की प्रेरक शक्ति, आशी-
र्वादों की अधिष्ठात्री और एकता समानता, मानवता की ममतामयी
माता है। जिस दिन संसार अधिकार की उपासना छोड़ सेवा के
श्रद्धास्पद चरणों में नत मस्तक होगा। इसकी आराधना करेगा। उस
दिन सेवा की देवी अपना वरद्-पाणि-पल्लव पसार कर सुख, शांति
तथा समृद्धि का वरदान देगी। तभी विश्व में हम स्वर्ग-युग के दर्शन
करेंगे। वसुधा पर स्वर्ग का निर्माण तभी होगा जब मानव अधिकार
को छोड़ सेवा में रत होगा। (सम्पादक)

सबै दिन जात न एक समान

हेमन्त आता है, सुमनों की क्यारियाँ, तुषार-आघात से झुलस
जाती हैं। वृक्ष पुष्प-पत्र-हीन होकर करुण उच्छ्वास लेने लगते हैं।

सृष्टि में क्षीणता, कुरूपता, करुणा दिखाई देने लगती है। प्रकृति-परी उजड़ी विधवा-सी दीखने लगती है। उसके अंचल में होते हैं मृत पत्र, उसकी साँसों में होते हैं करुण निश्वास, उसके मुख पर उड़ती है धूल-सी! पर यह क्या सदा ऐसा ही रहता है? नहीं; 'सबै दिन जात न एक समान!' जब बसन्त आता है, क्यारियों की गोद फूलों से भर जाती है। वृक्ष-लता-कुंज लहलहाने लगते हैं। प्रकृति-परी के उच्छ्वास में नशा ऊँघने लगता है, अञ्चल से पराग उड़ने लगता है, अधरों पर अरुण पर अरुण मुस्कान खेलने लगती है। और वह नव-यौवना, मुग्धाबाला-सी सज कर सृष्टि में पुनः माया की छाया बिखराने लगती है।

काली-काली कजरारी निशाएँ, नभ में गरजते घमण्डी घन, उनके आँचल में तड़पती चंचला, सायँ-सायँ करती पुरवैया और झम-झम बरसते मीठे नीर—सब बाधाएँ भयातुर हो काँप-काँप जाती हैं। घर आते बटोही कहीं शरण लेते हैं और उधर पथ हेरती वधुओं की आँखें सावनी अँधियारी में प्रवास-लोक गये प्रीतम की छाया खोजती और उनके कान पगध्वनि तलाश करते हैं। आतुर-उतावली, आकुल-व्याकुल रोमांचित-कम्पित!! यह सावनी अँधियारी सदा तो नहीं रहती। दुखदायी अभिमानी घन सदा तो नहीं गरजते और वियोगिनियों के उच्छ्वास सकम्प अन्धकार-पट की ओर, किसी को खोजते सदा तो परेशान नहीं होते! वह समय भी आता है, जब गुलाबी प्रभात और हंसत रजनियाँ आती हैं। वियोग की कम्पित कथायें, रोमांचित रातें, अलसकाल प्रयत्न भुला दिये जाते हैं। मिलन की बेला में फिर अतृप्त आकांक्षाओं का मेला लगता है और मादक विश्व की सृष्टि होती है। करुण अश्रु कण स्नेह-सीकर बन मुस्कराने लगते हैं।

दुख के बाद सुख, वियोग के बाद संयोग, सृष्टि का अचल नियम है। इसे तोड़ कौन सकता है। परिवर्तन सृष्टि का अटल नियम है। प्रतिक्षण सृष्टि का सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणु स्पंदित होता रहता है।

चाहे हमारे चर्म-चक्षु उसे न देख सकते हों। सब समय एक-सा नहीं रहता, यह अमर सत्य है।

यदि सदा दीन-दुखियों के उच्छ्वास अम्बर से टकराते रहें, करुण क्रन्दन क्षितिज के पार प्रतिध्वनित होते रहें, धुँधली आँखों से अश्रु-धाराएँ प्रवाहित होती रहें, हृदय-कम्पन से वातावरण आंदोलित होता रहे, तो जीवन में आशा ही क्या रह जाय ? और जीवन से निराश, फिर सुखी भविष्य प्राप्त करने में असफलता अनुभव करने वाला, वेदना के सघन तम-पट को चीर प्रकाश पाने में अयोग्य समझने वाला अपने दुर्भाग्य दुर्दैव को अमर साथी समझने वाला संसारमें किस अव-लम्ब से रहे। परिवर्तन ही-दुख के पश्चात् सुख की आशा ही अन्धकार के बाद प्रकाश की आशा ही तो उसे धीरज देते हैं और वह जीवन धारण करता है। यदि सब दिन एक समान रहें तो सृष्टि में निराशा का साम्राज्य हो जाय और सृष्टि-कर्त्ता के प्रति भयंकर विद्रोह तथा अराजकता भी आत्महत्या की एकमात्र औषधि रह जाय। उस परम शक्तिवान भगवान का यह अन्याय हो। सब दिन यदि एक से रहें तो बड़ा अस्वाभाविक हो।

विश्व का विकास इसी से होता है कि सभी दिन एक से नहीं जाते। दीन-हीन अभाव-पीड़ित मनुष्य तो सुख-समृद्धि की आशा में प्रयत्नशील रहते हैं और समृद्धि-शाली, ऐश्वर्यवान उसे स्थिर रखने के प्रयत्न में इस परिवर्तन से कितना धैर्य तथा सन्तोष मिलता है।

यदि ऐश्वर्यशाली सदा अपनी स्थिति में रहें और दीन-दुखी अपनी में, तो संसार में पाप ही अधिक हों। चाहे जितने अन्याय-अत्याचार किये जायँ, हमारा वैभव अमर है, यह विचार धनियों द्वारा पाप की सृष्टि कराएँ। सदा यही आँसू हैं, यही वेदना है, यही पीड़ा है तो उचित-अनुचित किसी प्रकार भी जीवन व्यतीत किया जाय, या प्रयत्न ही क्यों किया जाए, अब यह सब टलने वाला नहीं, यह विचार दुखियों को पाप की ओर या शिथिलता की ओर प्रेरित करें ? इससे

संसार की उन्नति या विकाश नहीं होगा। एक रस रहने से तो मानव का मानसिक विकास नहीं होता, उसका विकास तो भिन्न भिन्न परिस्थितियों की घाटी से पार होने में ही होता है।

इतिहास इस सत्य का साक्षी है कि 'सबै दिन जात न एक समान' भारत का वैभव-सूर्य कभी विश्व-गगन में पूर्ण तेज से तप रहा था। इसकी वीरता, विद्या, कला-सबका सिक्का संसार पर जमा था। इसकी वीरता तथा युद्ध-कला का आतंक यूनानियों के हृदय को दहला देता था, पर आज यह सब क्या हुआ?

एक समय जापान संसार की दृष्टि में पिछड़ा हुआ राष्ट्र था। आज वह समान शक्ति है। एक समय था जब जर्मनी को कोई जानता भी न था! प्रिंस बिस्मार्क ने उसको एक राष्ट्र बनाया और सन् १९१४ ईस्वी में उसने संसार के समस्त राष्ट्रों के विरुद्ध लोहा उठाया। उसको कुचला गया, पर आज फिर वही जर्मनी संसार का नक्शा बदलने वाला बना हुआ है। रूस में एक समय था, जब जार शाही के अत्याचारों से प्रजा 'त्राहि त्राहि' कर रही थी। युग-युग के पीड़ित मानव आज वहाँ के शासक हैं। भूत काल का रूस निर्धनों का नर्क था, आज का रूस निर्धनों का स्वर्ग है।

किसी विशेष व्यक्ति का नहीं, किसी देश का नहीं, समस्त विश्व का प्रत्येक व्यक्ति का, हरेक जाति का, हरेक देश और राष्ट्र का इतिहास इस अमर सिद्धान्त की पुष्टि कर रहा है, 'सबै दिन जात न एक समान।'

इस प्रकार इस वाक्य की अमरता और अचलता, परमसत्यता और अनिवार्यता को दृष्टि रखते हुए, मानव-मन निराश क्यों हो? धुँधली आँखें और भी अंधी क्यों हो जायें? पतित प्राणी शिथिल-प्रयत्न और उद्योग हीन क्यों बन जायें। जब यह दिन जाते ही हैं—अवश्य जाते हैं—तो जीवन का मूल्य क्यों न आँका जाय। क्यों न सबल प्रयत्नों, सचेष्ट उद्योगों और समस्त शक्तियों से अपनी प्रतिकूल परिस्थिति और विधाता के विपरीत विधान का वक्षस्थल तान कर सामना किया जाय।

अश्रु—गीली पुतलियो, न घबराओ, कभी तुम्हारे भी सफलता की स्वर्गा-मुस्कान की मोहक आभा क्रीड़ा करेगी। घुँधली आँखो, निराश न होना, शीघ्र ही तुम्हारे अन्दर एक प्रकाश की चमक फूट पड़ेगी और तुम भी किरणों के लिए मार्ग-दर्शक बनोगी। उच्छ्वसित सूखे अधरो, वह समय दूर नहीं, जब तुम्हारे कोनों में सफलता और आनन्द के नशीले गाने फूट पड़ेंगे। दीन-दुखियो, अभाव-पीड़ितो, परिस्थिति के सताए मानवो, आशा न छोड़ो। कभी फिर तुम्हारे लिए सोने के दि और चाँदी की रातें आयेंगी। क्योंकि 'सबै दिन जात न एक समान।'

(सम्पादक)

मानव विकास-प्रिय प्राणी है

स्वभाव से ही मानव विकास-प्रिय या परिवर्तन का अभिलाषी है। अपने स्वभाव के अनुसार समय-समय पर वह अपने रहन-सहन, खान-पान, सभ्यता संस्कृति और भाषा इत्यादि में हेर फेर करता रहता है। जिस प्रकार जीवन सुगमता तथा सुख से व्यतीत हो सके, वही उपाय मानव-द्वारा नित्य नूतन हेर फेरों की सृष्टि कराते रहते हैं।

मानव के आदि इतिहास पर यदि दृष्टि डालें तो हमको प्रतीत होगा कि आज के मनुष्य और उस समय के मनुष्य में आकाश-पाताल का अन्तर है।

आदिकाल में मनुष्य का रहन सहन, भोजन, भाषा-वेश सभी आज के मनुष्य से भिन्न थे। इतिहास कहता है, मनुष्य जंगलों में घूमते-फिरते आखेट करते, बिना घर-बार जीवन व्यतीत कर देते थे, नंगेबदन या पत्तों के वस्त्र धारण करते थे। मांस से क्षुधा को मिटाते थे। भाषा का भी विकास न हुआ था। कार्य सिद्धि के हेतु बनाये हुए संकेतों का प्रयोग करते थे। विवाह प्रथा भी न थी। समाज भी नैतिक नियमों से इतना संगठित न था।

धीरे-धीरे मनुष्य को ऐसे जीवन से कठिनाई, अरुचि तथा उकताहट हुई और उसने इसको सुगम तथा सुखप्रद बनाने का उपाय किया। गृह-हीन न रह कर, मनुष्य ने घर बनाने प्रारम्भ किये और झुण्ड के झुण्ड स्थान-स्थान पर बस गये। छोटे मोटे सामाजिक नियम भी बन गये आहार-विहार, आचार, भाषा आदि में भी विकास हो गया। आवश्यकता और परिस्थिति के अनुसार नये संकेत-चिन्ह बने। धीरे-धीरे कृषि करना और पशुओं के खाने का उपयोग कम करके उनके दूध-घी आदि को काम में लाना प्रारम्भ किया। नये-नये मंत्र भी बनाए गये, उनका प्रयोग भी किया जाने लगा।

आचार-विचार, अन्न-पान, घर-मकान को ही लीजिए। आज मनुष्य कितने सुन्दर और सुख प्रद ढङ्ग से रहता है। उसको सुख और सरलता देने के लिए कितनी ही वस्तुओं का आविष्कार हुआ है। सुन्दर वस्त्र, निराली बनावट और भली प्रकार फिट करना यह सब आज कपड़ा बनवाते समय देखे जाते हैं। उस काल की तो बात ही क्या, अब से ५० वर्ष पहले यह सब एक कल्पना की वस्तु थी। आज भी जहाँ विकास और सभ्यता की हवा नहीं पहुँची, कैसे ढीलम-ढाले ऊल जलूल चोगे से पहनते हैं।

भोजनमें कितनी भिन्नता आगई है। नवीन-नवीन भोजन, मिठाइयाँ, चाट तैयार होने लगी हैं और नवीन-नवीन उनके खाने का ढंग। बेचारे ग्रामवासी को किसी आधुनिक होटल में ले जाइये और उसके सामने आधुनिक भोजन की प्लेट रखिए। वह भौंचक्का हो उपस्थित जन-समूह का उपहास-भाजन बन जायगा।

आज का मकान भी कितना सुन्दर और सुख-सुविधा जनक है। नहाने, खाने, खाना बनाने, सोने, मित्रों से मिलने, वस्त्र पहनने-सभी के लिए अलग कमरे हैं। बैठक में अंगीठी भी है। वायु और प्रकाश के वातायन भी हैं। पहले कौन यह बातें सोच सकता था।

सामाजिकता का रूप भी अत्यन्त संगठित और नवीन है। व्यवहार

और सम्बन्ध स्थिर रखने, शान्ति और व्यवस्था के लिए, जीवन को सरल बनाने और उन्नति के लिए आज सहस्रों नैतिक नियम बनाये गये हैं। चोरी, व्यभिचार, झगड़ा, मद्यपान, जुआ आदि नैतिक अपराध माने जाते हैं।

सामाजिक विकास विवाह-संस्था मुख्य है। इसी पर विचार करें तो आज कितना अन्तर है। पहिले विवाह का कोई रूप ही न था, जैसा आज भी बहुत सी जंगली जातियों में पाया जाता है। फिर विवाह-युद्ध विजय का पुरस्कार बना, किसी भी प्रकार से लड़की मिल जाय, वही विवाह माना गया। मनु ने भी आठ प्रकार के विवाह बताये हैं। पर आज विवाह एक सुगठित और उच्च तथा धार्मिक संस्था है। गोत्र में विवाह नहीं हो सकता, लड़की की सम्मति भी आवश्यक है, आयु भी निश्चित कर दी गई है, चाहे पालन हो रहा हो अथवा नहीं।

मनुष्य ने भाषा और लिपि में भी कितना विकास किया है, जानकर आश्चर्यमय आनन्द होता है। आवश्यकता बढ़ने से भाषा का विकास हुआ। आवश्यकतानुसार नये-नये शब्द निर्मित किये गये। सरलता और उपयोगिता की ओर मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति होने से भाषा को अधिक से अधिक सरल और उपयोगी बनाया गया।

जिस लिपि में आज हम लिखते हैं, उसका यह रूप पहले न था। यदि आदि रूप लिया जाय तो बताना भी कठिन हो जायगा कि आज की सुन्दर, सर्वगुण-सम्पन्न, पूर्ण वैज्ञानिक लिपि, उसका विकास है। लिपि का यह विकास भी कम से कम १५०० वर्ष के परिश्रम का परिणाम है। और भी कौन जानता है कि भाषा और लिपि का भविष्य में कौन-सा विकसित रूप होगा।

साहित्य में भी आज कितना विकास हुआ है। एक समय था कि सभी देशों के साहित्य में वीर-गाथा का प्राधान्य था। शृङ्गार का बोल-बाला हुआ और महाकाव्य रचे गये। प्रत्येक साहित्य में काव्य की ही विशेषता थी और सुखांत साहित्य ही लोग पसन्द करते थे। धीरे-

धीरे विभिन्न धाराएँ वह निकलीं और आज तो साहित्य में सैकड़ों धाराएँ प्रचलित हैं। करुण रस का जोर है, गीति-काव्य की प्रधानता है और गद्य का विकास हो चुका है। कहानी, उपन्यास, नाटक, प्रहसन, यात्राएँ इतिहास, भूगोल, विज्ञान सभी-कुछ साहित्य के अंग हो गये हैं।

आविष्कारों की कथा भी मनुष्य की विकास-प्रवृत्ति का परिणाम है। आज नवीन आविष्कार ने मनुष्य को आश्चर्य में डाल दिया है। आने जाने के लिए कितनी सुखद, शीघ्रगामी सवारियाँ तैयार करदी गई हैं। पृथ्वी, आकाश, जल—कहीं प्राकृतिक बाधाएँ मनुष्यका मार्ग नहीं रोक सकतीं। न केवल मानव-सुख के लिए, अपितु उसके विध्वंस के लिए भी कैसी कैसी भयंकर, घातक, संहारिक वस्तुओं का निर्माण हुआ है। पल-भर में नगर के नगर भस्म करदिये जा सकते हैं। रोगीले कीटाणुओं से मृत्यु के ग्रास बनाए जा सकते हैं। ये सब मनुष्य की विकास-प्रियता के प्रमाण हैं। आज युद्ध-यंत्रों में जितना विकास हुआ है वह मानव-प्रतिभा की अत्यन्त विस्मय-जनक सृष्टि है।

आज हम प्रत्येक क्षेत्र में देखते हैं कि मनुष्य ने अपनी विकास-प्रियता के कारण नये-नये परिवर्तन शुभ-अशुभ किये हैं। राजनीति धर्म-नीति, समाजनीति, राष्ट्र-नीति और अन्तर्राष्ट्रीय नीति न जाने कितनी नीति, कितने नियमों का निर्माण किया गया है? यह सब उसकी प्रतिभा के द्योतक हैं और विकास-प्रवृत्ति के पक्के प्रमाण, पर भय इस बात का है कि मानव अपनी इसी प्रवृत्ति से प्रेरित होकर अपने लिए चिता चुन रहा है। और वह उसमें कूदने की तैयारी में है।

(सम्पादक)

दीपावली का शुभ पर्व

दीपावली हिन्दुओं का सबसे प्रमुख त्यौहार है जो प्रतिवर्ष कार्तिक की अमावस्या की रात्रिको मनाया जाता है। विशेषकर भारतवर्ष में इस पर्व

का स्वागत बड़े प्रेम और उत्साह से किया जाता है। 'दीपावली' का यह छोटा सा शब्द प्रत्येक प्राणी के हृदय में नवजीवन का संचार करता है। इसका अर्थ है दीपों की अवली अर्थात पंक्ति—जो कि इस अंधकारमयी रात्रि को जगमगा देती है। इस उत्सव का महत्व कई दृष्टिकोणों से माना जाता है। धार्मिक, ऐतिहासिक, सामाजिक और व्यौपारिक उपयोगिता के कारण दीपमाला का पर्व बहुत ही प्रसिद्ध है। प्राचीन काल से भारतीय जनता पूर्ण उल्लास व प्रसन्नताके साथ रात्रिको नन्हें २ टिमटिमाते हुए दीपों की माला बनाकर 'दीपावली' की शोभा को द्विगुणित करते हैं।

इस पर्व को इस लिये पवित्र माना जाता है कि इस दिन कई ऐतिहासिक घटनायें घटी हैं जो कितने ही वर्षोंसे इस दिवसके साथ सम्बन्धित हैं। लोग इस पर्व को इसलिये मनाते हैं। क्योंकि त्रेतायुग में भगवान राम लंका विजयी होकर लक्ष्मण, सीता सहित चौदह वर्ष के वनवास को पूर्ण कर पुनः अयोध्या लौटे और अवधवासियों ने अनेक प्रकार से इनका स्वागत किया ? दूसरी ऐतिहासिक घटना भगवान कृष्ण के सहयोग से देवी सत्यभामा द्वारा नरकासुर वध के दूसरे दिन दीपमाला मनाई जाती है। तीसरे भगवान वामन ने बलि के भूदान से प्रसन्न होकर उसको वर दिया था कि भूलोकवासी उसकी स्मृति में दीपावली का उत्सव मनायेंगे। चौथे तांत्रिक दृष्टिकोण से यह रात्रि अत्यन्त पवित्र है। इस रात्रि में जागरण करके कीर्तन, लक्ष्मीपूजन इत्यादि धार्मिक कार्यों में संलग्न रहना महत्व पूर्ण है। शास्त्र ने भी यह सन्देश "अर्धरात्रिनियाः" देकर इस उत्सव की पुष्टि की है। स्वामी शंकराचार्य के प्राणहीन शरीर की चिता पर रखने पर इस दिन उनके शरीर में पुनः प्राण-संचार हो आया था। इन किंवदन्तियों के अतिरिक्त आर्य समाज के प्रवर्तक श्री स्वामी दयानन्द जी की स्मृति में यह दिवस विशेष महत्व रखता है। दूसरी जैनियों के लिये इनके चौबीसवें तीर्थंकर श्री महावीर का निर्वाण दिवस कहकर मनाया जाता है।

जो त्यौहार इतने महापुरुषों का स्मृति चिन्ह हो वह क्यों न उत्साह और उल्लास के साथ अभिनन्दित हो ? प्रतिवर्ष यह दिवस सूर्यकी प्रथम किरण द्वारा प्रेम आशा और आनन्द का सुखद सन्देश लेकर आता है। और रात्रि का अंधकार दूर करने वाले छोटी छोटी दीपों की टोलियाँ भी मनुष्य मात्र के स्वार्थों को तिलाञ्जलि देकर प्रेम की ज्योति प्रज्वलित करने का आदेश देती है।

भारतीय जनता जिस धूम धाम से यह पर्व मनाती है अन्य कोई नहीं। कई दिन पूर्व लोग घरों को सजाना आरम्भ कर देते हैं। यहाँ के देशवासी इसके शुभागमन पर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। बच्चे से लेकर बूढ़े तक इस दिवस पर फूले नहीं समाते। सूर्यास्त होते ही बच्चे पटाखे आदि छोड़ कर मोमबत्ती या मिट्टी के छोटे २ दीप जला कर घरों को प्रकाशित कर आनन्द मनाते हैं। गृहलक्ष्मियाँ तो आज के दिन स्वादिष्ट भोजन बनाने से ही फुरसत नहीं पातीं। घरों को स्वच्छ करके धूप जला कर सुगन्धित बनाते हैं। रात्रि को प्रत्येक घर में लक्ष्मी की पूजा होती है।

दीपमालिका का शुभ अवसर व्यौपारियों के लिये भी कम महत्व नहीं रखता वह इस दिवस को शुभ मान कर अपने पुराने हिसाब को समाप्त कर नये व्यापार का आरम्भ करते हैं। इस प्रकार यह दीपावली का दिन समस्त संसार के लिये आनन्द का स्रोत बन कर आता है। इस दिन कई मूर्ख जुआ इत्यादि खेल कर न केवल देश को क्षति पहुँचाते हैं,बल्कि अपने सारे परिवारको तंग करके नष्ट कर देते हैं। इसलिये इस पवित्र पर्व पर ऐसे हेय कार्यों का परित्याग करना चाहिये। तब ही देश का कल्याण हो सकता है। यदि हम सब मिल कर इसी एक दिवस को सब सच्चे मनसे अच्छे कार्यों में व्यतीत करें तो देश के कष्टों को पूर्णतया दूर करनेमें सफल हो ही जायेंगे। हमारा तो इस दिन यही संगीत होगा—

आज आओ मुक्ति के प्रज्वलित दीपक को जलायें।
और मानव-दासता की शृंखलायें टूट जायें॥

(सुश्री सुदेश शरण 'रश्मि')

रामचरित मानस एक अध्ययन

तुलसी-लिखित १२ ग्रन्थों में 'मानस' ही सर्व श्रेष्ठ माना गया
इसे हिन्दी साहित्य को अमर निधि कहते हैं। तुलसी इसी के।
हिन्दी के सर्व महान् कलाकार समझे जाते हैं। अकबर जिस का
खड्ग द्वारा न कर सका-उसे तुलसी ने लेखनी द्वारा प्रस्तुत किया।
हिन्दी साहित्य का यदि तुलसी को 'शेक्सपियर कह दें तो अत्यु
होगी।' रामचरित मानस की विशेषता इससे बढ़कर और क्या हो स
है कि इसे पढ़कर जहाँ विद्वान साहित्य के मर्मों को जान जान कर
हो जाते हैं वहाँ जनपद जनता भी उस प्रेम के साथ इससे रसा
प्राप्त करती है। यह विशेषता विश्व के गिने चुने ग्रन्थों में पाई जाती

तुलसी ने इसकी रचना नाना प्रकार के धर्म शास्त्रों के आधार
की है। अतः इसमें गीता की निष्कर्म उपासना, बौद्धों की अहिं
वैष्णवों का प्रेम, शैवों का वैराग्य, राजनैतिक, सामाजिक और
पारिक सम्बन्ध, सभी कुछ इस कुशलता से व्यक्त कर दिया गया है
तुलसी का 'स्वांतः सुखाय' लिखा हुआ यह ग्रन्थ केवल तुलसी के अ
करण को सुख पहुँचाने के लिये न होकर 'लोकहित' के लिये भी
गया है। इस ग्रन्थ के द्वारा तुलसी की वाणी विश्व वाणी बन चुकी

रामचरित मानस में तुलसी ने राम की सगुण उपासना का प्र
किया है। यद्यपि आप 'ज्ञानहिं भक्ति नहीं कछु भेदा' कहते हैं कि
'ज्ञान के पंथ कृपाण की धारा' बता कर राम की उपासना पर ही ज
देते हैं। आपका राम वाल्मीकि के राम से भिन्न है। वह संस्कृति
रक्षक नर ही नहीं नारायण भी है। इन्होंने राम को सत्य, शील औ
सौंदर्य की मूर्ति माना है।

रामचरित मानस में सभी पात्रों का चरित्र चित्रण बड़ी कुशल
से किया गया है। आदर्श पिता, आदर्श राजा, आदर्श भाई आदर्श पत
और आदर्श पति-पुत्र आदि सर्वत्र आदर्श की स्थापना करके तुलसी
राम को लोक रक्षक एवं मर्यादा पुरुषोत्तम रूप ही सामने रखा है।

प्रबन्ध काव्य की दृष्टि से संवाद अपूर्व बन गये हैं, मंथरा कैकेयी संवाद, लक्ष्मण परशुराम संवाद, हनुमान रावण संवाद आदि अनेक सुन्दर स्थल 'मानस' में बिखरे पड़े हैं। कथा प्रवाह मधुर गति से बढ़ता है। सभी प्रकार के जीवन के चित्र इसमें उपस्थित हैं। कवि की भावुक दृष्टि ने अनेक ऐसे स्थल ढूँढ लिये हैं, जहाँ उसकी लेखनी का चमत्कार स्पष्ट हो जाता है। राम का वन - गमन, दशरथ-मृत्यु, भरत-मिलाप, सीता-हरण, लक्ष्मण-मूर्छा आदि घटनायें सजीव बन पड़ी हैं। सीता-विरह में राम का वन के फूल पत्तों से यह पूछना—

हे खग मृग, हे मधुकर श्रेनी।
तुम देखी सीता मृग नैनी॥

मार्मिक वेदना का कितना सुन्दर उदाहरण है वन गमन करते हुए मार्ग में ग्रामीण नारियों के प्रश्न और सीताका लजाते हुए अपने पति का संकेत से परिचय देना हृदय को मोह लेता है।

मानस में सभी रस और छन्द व अलंकारों का उत्तम तथा यथा स्थान प्रयोग सोने पर सुहागा बन गया है। संस्कृत-निष्ट अवधी में लिखा हुआ अवध-पति का यह काव्य तुलसी को उन्नति की पराकाष्टा पर ले जाने में सफल हो गया-वास्तव में रामचरित मानस मिसरी की एक डली है जिसे जहाँ से भी चखा जाये मधु रसका आस्वाद मिलता है।

भारतीय ग्राम और उनकी सुधार योजना

भारतवर्ष एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ नव्वह प्रतिशत निवासी भूमिमाता की अराधना करते हुए ग्रामों में वास करते हैं। इसीलिए हमारे देश में ग्रामों का आधिक्य है। नगरों की संख्या बहुत कम है और वे उंगलियों पर गिने जा सकते हैं। देश का भाग्य ग्रामों के साथ बंधा है, उन्हीं की स्थिति पर देश का उत्थान पतन निर्भर है। इसी कारण ग्रामों की समस्या अपना निजी महत्व रखती है।

भारत के ग्रामों की दशा, वहाँ का वातावरण बड़ा विचित्र और करुणोत्पादक है। जंगल-जंगल, हरे-भरे खेतों में फैली सर्पाकार, लहराती पगडंडियों और मेंड़ों पर होते चले जाओ। जहाँ खेतों में से मल-मूत्र की तीव्र दुर्गन्ध आने लगे समझ लो किसी ग्राम के समीप आ पहुँचे। कुछ ही आगे बढ़ने पर घूरों से उठकर मक्खियों के झुंड के झुंड आगंतुक का स्वागत करते हैं, और दिन-रात के प्रहरी श्वान देख चिल्ला-कर उसके आगमन की सूचना ग्राम वासियों को दे देते हैं। सामने गाँव है, लंबे-चौड़े परन्तु कच्चे और टूटे-फूटे घरों और झोंपड़ों का समुदाय। घरों की दीवारों में न खिड़कियाँ हैं, न वातायन। मार्ग ऊँचे-नीचे और धूलभरे, गन्दे हैं। घरों के गन्दे पानी के लिए नालियाँ नहीं हैं। वह घर के बाहर किसी गढ़े में एकत्र होता रहता है या मार्ग में बह कर दलदल उत्पन्न करता है। सीमा पर किसी वृक्ष के नीचे कूँआ है, जिसमें वृक्ष के पत्ते और पक्षियों की बींट गिर कर जल को गन्दा करती रहती है। जो कमी रह जाती है उसे ग्रामवासी कूँए की मोघी जगत पर स्नान करके और कपड़े धोकर पूरा कर देते हैं। इस कूँए से युवतियाँ और वृद्धाएँ मिट्टी के घड़ों में जल भर ले जाती हैं। गाँव के बाहर एक ताल है जिसमें मैला पानी भरा रहता है इसमें दोपहरी में सूअर और भैंसे लेट-लेट कर कीचड़ घोलते हैं। और गरीब चमारों के बच्चे स्नान और जल क्रीड़ा का आनन्द लेते हैं।

इन ग्रामों के निवासियों की दशा भी ऐसी ही है। वे परिश्रमी हैं, परन्तु पेट के लिए पूरा भोजन और तन के लिए पर्याप्त वस्त्र नहीं जुटा पाते। उनके स्त्री-बच्चे आधे भूखे और आधे नंगे रह कर दुख पूर्ण जीवन बिताते हैं। किसी ग्रामीण की करुणा पुकार है।

> सिसक-सिसक कर बच्चे रोते, बाहर होता हमें तुषार।
>
> किसे सुनावें कष्ट कहानी, कौन सुनेगा कौन पुकार॥

अविद्या और अज्ञान का यहाँ अटल राज्य है। अन्ध विश्वास और व्यभिचार का बोल बाला है। भूत-प्रेत, जादू-टोने में सबका विश्वास है।

किसी के बीमार पड़ने पर उसकी दवा-दारू के स्थान पर झाड़-फूँक कराना उन्हें अधिक पसन्द है। महामारी का प्रकोप होने पर वे स्वच्छता और शुद्धि करने के स्थान पर दान-कथाओं की ओर दौड़ते हैं। तेली के बैल की तरह का कठोर और एक रसता से परिपूर्ण उनका जीवन है, जिसमें कहीं नवीनता नहीं, कोई उत्साह नहीं, कोई उल्लास नहीं। वर्ष भर में होली, दिवाली इत्यादि धार्मिक त्योहार या सगाई-विवाह आदि सामाजिक उत्सवों पर ही उन्हें आमोद-प्रमोद मनाने के अवसर प्राप्त होते हैं। खेल-कूद, सैर-सपाटा आदि मनोरंजन का कोई भी साधन उन्हें उपलब्ध नहीं है।

ग्रामों की सुधार-योजनाओं का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। अंग्रेजी शासकों ने उनकी दशा सुधारने की ओर कभी ध्यान नहीं दिया। सबसे पहले काँग्रेस का ध्यान इस ओर गया। उसे स्वतंत्रता-संग्राम में ग्रामवासियों का सहयोग प्राप्त करना था। महात्मा गाँधी ने बताया था राष्ट्र की आत्मा झोंपड़ों में वास करती है। काँग्रेस के इस क्षेत्र में उतरते ही अंग्रेजों के कान खड़े हुए और उन्होंने ग्राम-सुधार के अफ़सर नियुक्त किये। पर यह योजना ग्राम संबन्धी आँकड़े एकत्र करने और भाषण देने तक सीमित रही और कोई रचनात्मक कार्य न हो सका। ग्रामों को सेवकों की आवश्यकता थी, अफसरों की नहीं। ग्राम सुधार का थोड़ा बहुत ठोस कार्य कांग्रेसी सरकार द्वारा ही हो पाया है। उसने स्वतन्त्रता मिलने पर सन् १९४७ में पंचायत राज्यएक्ट पास किया, जिसके अनुसार ग्रामों में ग्राम सभाएँ, ग्राम पंचायतें और अदालती पंचायतें स्थापित की गई जिन्होंने प्रशंसनीय कार्य किया है। ज़मींदारी प्रथा के अन्त से भी कृषकों ने सुख की साँस ली है। कस्तूरबा कोष की स्थापना इसी पावन उद्देश्य के लिए की गई है।

ग्रामों की सबसे बड़ी आवश्यकता शिक्षा की है। शिक्षा का अभाव उनकी अवनति का मूल कारण है। इसी से ग्रामीण जीवन दुख पूर्ण बना हुआ है। किसी कवि ने बिल्कुल ठीक कहा है—

जगती कहीं ज्ञान की ज्योति, शिक्षा की यदि कमी न होती।
तो ये ग्राम स्वर्ग बन जाते, पूर्ण शान्ति रस में सन जाते॥

निरक्षर होने के कारण ग्रामीण आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक सभी क्षेत्रों में पिछड़े हुए हैं। वे माल बेचते हैं, पर यह नहीं बता सकते कि उन्हें कितना रुपया मिलना चाहिये। वे ऋण चुकाते हैं पर उन्हें यह पता नहीं लगता कि वे कितना रुपया दे चुके और कितना देना शेष है। यह दोहरी मार उन्हें सदा विकल रखती है। विद्या के प्रकाश की कमी के कारण वे अतीत के अन्धकार में भटकते रहते हैं। पुराने अन्ध विश्वास और रुढ़ियाँ उनका पीछा नहीं छोड़तीं। अनभिज्ञता के कारण वे अपने कर्त्तव्य और अधिकार से नितान्त अपरिचित रहते हैं। ग्रामों में पाठशालाओं की संख्या बढ़ाई गई है, परन्तु अब भी वे विशाल मरुस्थल में गिने चुने मरुद्यानों के सदृश हैं। प्रत्येक ग्राम में एक प्रारम्भिक पाठशाला होनी आवश्यक है। ग्रामीणों के लिए शिक्षा न केवल अनिवार्य और निःशुल्क होनी चाहिये, अपितु जिन्हें आवश्यकता हो उन्हें पाठशाला की ओर से पुस्तक, लेखनी आदि भी मिलनी चाहिये। धनाभाव के कारण शिक्षा में थोड़ा भी व्यय करना उनके लिए कठिन है। धन की प्राप्ति के लिए आय-कर के समान लोगों पर शिक्षा कर लगाया जा सकता है। वर्तमान प्रारम्भिक शिक्षा में भी परिवर्तन की आवश्यकता है। यह शिक्षा उनके कृषि कार्य में सहायक सिद्ध नहीं होती। उनके लिए वर्धा-योजना कल्याणकर हो सकती है। उससे एक ओर व्यय में कमी होगी, दूसरी ओर कुटीर-धन्धों की उपयोगी शिक्षा मिलेगी। शिक्षा के उपयोगी और लाभ दायक होने पर अभिभावक भी बच्चों को सहर्ष पाठशाला भेजने लगेंगे।

प्रारम्भिक शिक्षा के बाद उच्च शिक्षा का भी समुचित प्रबन्ध होना चाहिए। प्रति पच्चीस ग्रामों के बीच एक बड़ा विद्यालय होना चाहिए, जिसका पाठ्यक्रम कृषि और ग्रामीण उद्योग धन्धों से सम्बन्धित हो। इसमें भाषा, गणित, नागरिक शास्त्र, कृषि, वनस्पति विज्ञान,

पशु-पक्षी पालन अनिवार्य विषय हों। बढ़ईगीरी, लुहारगीरी, कपड़ा बुनना, रंगाई-छपाई इत्यादि विषय ऐच्छिक हों, जिनमें से दो का पढ़ना आवश्यक हो। इस विद्यालय के फार्म, प्रयोगशाला, क्रीड़ाक्षेत्र, छात्रावास निजी हों। इन विद्यालयों में नवीन ढंग के औज़ार काम में लाये जाँय, परन्तु मशीनों का प्रयोग बिल्कुल न किया जाय, क्योंकि मशीनें बेकारी की समस्या को और जटिल बनाने वाली हैं। प्रौढ़ व्यक्तियों के लिए रात्रि पाठशालाएँ खोली जाँय। इन पाठशालाओं में ग्रामीणों को साक्षर बनाने के साथ साधारण ज्ञान भी कराया जाय। रेडियो इसका सर्वश्रेष्ठ साधन है। मैजिक - लालटैन, कथा, व्याख्यान भी उपादेय सिद्ध होंगे। प्रौढ़ों की शिक्षा के लिए सचल पुस्तकालय होने चाहियें, जो ग्राम-ग्राम घूम कर निश्चित दिनों पर पुस्तकें ग्राम-वासियों को, ग्राम सभा के प्रधान की अनुमति से, मुफ्त मिलनी चाहिये। ग्रामीणों को जो पुस्तकें दी जाँय वे उपयोगी, मनोरंजक और सरलतम भाषा में लिखी हों।

यह शंका की जा सकती है—की जाती है कि इस योजना के लिए इतने अध्यापक कहाँ से आवेंगे? अध्यापकों की ट्रेनिंग के लिए प्रत्येक जिले में एक दीक्षा विद्यालय खोला जाय, जैसा उत्तर प्रान्त में किया गया है। सचल शिक्षा दल भी स्थान-स्थान पर जाकर शिक्षकों को अध्यापन-कला का ज्ञान करा सकते हैं। फिर भी यदि कमी रहे तो कालिज और विद्यालयों के छात्र अवकाश के दिनों में पर्याप्त सहायता दे सकते हैं। हमारे देश में एक करोड़ से अधिक विद्यार्थी हैं। यदि वे सब उत्साह और हार्दिक प्रेरणा से इस कार्य में जुट जाँय तो देखते-देखते देश की ऋतु बदल दें। प्रश्न उठता है उनकी उदरपूर्ति का। इसका उत्तर सरल है। ऐसे निष्काम, त्यागी नवयुवकों के लिए अशिक्षित पर निष्कपट और सरल हृदय ग्रामवासी कुछ भी न करेंगे, ऐसा मानना मानव-हृदय और मानव-मस्तिष्क का अपमान करना है।

ऐसे युवक और उसके परिवार को ग्रामीण
पर बैठावेगी।

ग्रामवासियों की आर्थिक अवस्था बहुत
पर नगरों से अधिक गिरी हुई है। इसका
नवीन ढंग से अनभिज्ञ होना है। वे आज
भूमि जोतते हैं, उसी प्रकार की खाद देते हैं,
खेतों को सींचते हैं, जिस प्रकार की चीज़ों का
उनके पूर्वज करते थे। विज्ञान के नवीन आविष्क
वे आज भी दो फसल उत्पन्न कर संतुष्ट हैं,
फसलें तैयार की जाती हैं। आज देश में जो
कारण यही है कि जहाँ जनसंख्या कई गुना बढ़ ग
ही है। हमारे कृषक नवीन साधनों का प्रयोग
सरकार की ओर से सिंचाई के साधन, बिजली के
संख्या बढ़ा दी जाय तो हमारे खेतों में भी कंचन
के अतिरिक्त अन्य उद्यम भी अपनाये जा सकते हैं।
कपड़ा बुनना, दरियाँ बनाना, खिलौने बनाना, मधुमक्ख
अनेक साधनों से धनोपार्जन कर सकते हैं।

किसान को पग पग-पर लूटा भी जाता है। इसका
उसकी अनभिज्ञता, और भोलापन। बाज़ार के दाँव
समझता। इसलिए उसके उत्पादन की बिक्री का प्रबन्ध
तियों या सरकार द्वारा होना चाहिये, जिससे उसे माल
मिल सके। उसकी दरिद्रता के लिए ज़मींदार और महाजन
सीमा तक उत्तरदायी रहे हैं। इनकी झोली में बेचारे कृषक
रक्त की अन्तिम बूँद तक अर्पण करनी पड़ती है। ज़मींदारी
समाप्ति धीरे-धीरे की जा रही है। महाजन के चंगुल से
छिड़ाने के लिए सहकारी बैंक खुलने चाहिये, जो कम सूद पर
को रुपया दे सकें। पशु-उन्नति के लिए भी योजना

है ; पशु कृषि के मुख्य साधन हैं और किसान की सम्पत्ति का मुख्य अंश हैं। वन कट जाने से, चरागाह न रहने से पशुओं को न भरपेट चारा मिलता है, न घूमने-फिरने और कुलेल करने के लिए पर्याप्त स्थान। ग्राम सभाएँ इसका प्रबन्ध कर सकती हैं। उचित दूरी पर पशु-चिकित्सालय भी खुलने चाहिएँ, जिससे उन भयंकर रोगों की रोक-थाम हो सके जो एक बार में सहस्त्रों पशुओं की जानें लेकर टलते हैं।

ग्रामवासियों की सामाजिक और राजनैतिक स्थिति भी शोचनीय है। उनमें अस्वच्छता चरम सीमा पर पहुँची हुई है। उनके घर-बार, कपड़े-लत्ते, खाने-पीने में सर्वत्र गन्दगी का राज्य रहता है। यह सच है कि इसका एक कारण धनाभाव है, पर साथ ही उनका गन्दा स्वभाव भी इसके लिए उत्तरदायी है। स्वास्थ्य रक्षा और गृह परिचर्या का उन्हें तनिक ज्ञान नहीं होता। इसका परिणाम होता है अकाल मृत्यु और वे महामारी जो गाँव के गाँव को साफ कर देती हैं। फिर एक तो करेला, दूजे नीम चढ़ा। ग्राम में चिकित्सा का प्रबन्ध नहीं होता। अतः यह आवश्यक है कि एक ओर मैजिक लालटेन, भाषण आदि से रोगों की उत्पत्ति और उनकी रोकथाम के उपाय समझाये जाँय, दूसरी ओर गाँवों में कम से-कम दूरी पर चिकित्सालय खोले जाँय और सचल चिकित्सक मंडलों का निर्माण किया जाय। इन लोगों को छुआछूत, बाल विवाह, मृतकभोज, मदिरापान, धूम्रपान आदि की हानियों से भी अवगत कराना आवश्यक है। वे कूपमंडूक का जीवन बिताते हैं। उन्हें राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का मोटा ज्ञान कराना नेता वर्ग का कर्तव्य है जब तक वे चीज़ों को न समझें तब तक उन्हें भेड़-बकरियों की तरह हाँक कर मतदान केन्द्र तक ले जाना और किसी पक्ष में मत दिला देना प्रजातन्त्र का उपहास करना है।

ग्राम सुधार समस्या पर जनता और शासक वर्ग सभी का ध्यान है। इस विषय में पर्याप्त कहा जा चुका है और लिखा जा चुका है। सुधार योजनाएँ बनी हैं और कुछ भागों में उन्हें कार्यान्वित भी किया

गया है। पर मंजिल अभी दूर है। इस आन्दोलन के लिए निष्का
त्यागी और पुरुषार्थी लोगों की आवश्यकता है, जो केवल देश से
की भावना से प्रेरित होकर इस कार्य के लिए अपना तन, मन, ध
उत्सर्ग करने को तत्पर हों। स्वतन्त्र भारत में ऐसे लोगों का अभाव
होगा। आज या कल अतीत के इन खंडहरों पर निश्चय ही नई सभ्यत
के पृष्ठ लिखेंगे।

(श्री पं० हरिदत्त शर्मा एम० ए०)

नैपाल समस्या

हिमालय पर्वत की घाटियों से आच्छादित भारत के उत्तर में और तिब्बत दक्षिण में स्थित नैपाल हिन्दू राज्य है। इस राज्य का क्षेत्रफल पैंसठ हजार वर्गमील है। जन गणना एक करोड़ के लगभग है। शिक्षा देने के लिए यहां पर १ कालिज व ४ हाई स्कूल हैं। उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति केवल पचास हैं और बी० ए० पास लगभग २०० है। इस रियासत की रेलवे लाइन ४७ मील लम्बी है और २० मील मोटर की सड़क है। रोगियों को स्वस्थ करने के लिए एक अस्पताल खोला है और राज्य भर में केवल दो कारखाने हैं। अपने देश की इस अविकसित अवस्था को आधुनिक नवयुवक सहन नहीं कर सके। इसी कारण से यहां भी क्रांति की नींव रखी जाने लगी।

तिब्बत के विस्फोट को देखकर नैपाल भी शांत न बैठ सका। अतः इसमें भी विस्फोट हो गया। इस विस्फोट को कार्यान्वित करने के लिये बहुत दिनों से तयारियाँ हो रही थीं। वहां के शासक नैपाली प्रजा को आधुनिक वातावरण से सदा ही दूर रखना चाहते थे। अंग्रेजों की इच्छा भी इसी प्रकार की थी। नैपाल भारतका पड़ौसी और मित्र होते हुए भी इससे अधिक सम्बन्ध नहीं स्थापित कर सकता था। और न ही नैपाल की प्रशंसा को भारत अपने पत्रों में छाप सकता था।

नैपाली नागरिक लड़ने में प्रवीण हैं। सन् १८४२ में द्वितीय सिख युद्ध में अंग्रेजी सरकार की ओर से ८ गोरखा रेजीमेंट लड़ी थी। सन् १८५७ की राज्य क्रांति को कुचलने में गोरखों ने अंग्रेजों की सहायता की थी। यह कहना भी अतियुक्त न होगा कि गोरखा सेना के कारण ही भारत की परतन्त्रता की जंजीर शीघ्रता के साथ कट सकी हैं।

नैपाल के शासक

इस राज्य में दो वंश शासक हैं। एक महाराजा का वंश जिसका उत्तराधिकारी गद्दी पर बैठता है, दूसरा राणा का वंश जो कि राज्य का प्रधान मन्त्री, सेनापति और सर्वेसर्वा होता है। प्रथम शासक को कोई वैधानिक अधिकार प्राप्त नहीं हैं वहां तो प्रधान मन्त्री ही निरंकुश शासक होता है। इसी के परिवार सदस्य उच्च पदों पर रहते हैं। प्रथम शासक को सामयिक प्रकाश से वंचित रखने की सर्वदा चेष्टा की जाती है।

नैपाल के द्वितीय शासक के वंश के इस समय ४० सदस्य शासनाधिकारी हैं जिनमें प्रत्येक के पास ४०-५० करोड़ की सम्पत्ति है। प्रधान मंत्री का वेतन २ करोड़ रुपये वार्षिक है। पर वहाँ के जन समाज में ४००) रु० मासिक लेने वाले ६० से अधिक व्यक्ति नहीं हैं और यहाँ का जन समाज अपने साधारण अधिकारों से भी वंचित हैं। इस राज्य का कोई भी नागरिक न तो सवारी पर चल सकता है, न अखबार पढ़ सकता है और न प्रजातन्त्र शब्द का उच्चारण ही कर सकता है। इस राज्य में निर्धनता का राज है यहाँ के लगभग १२ लाख नैपाली भारत में मजदूरी करके पेट भरते हैं।

यह सब उपरोक्त कारण नैपाली विस्फोट के प्राण हैं। द्वितीय शासक के आधीन ४० हजार सशस्त्र सेना है। इधर नैपाली कांग्रेस के नेताओं के पास भी किसी प्रकार की कमी नहीं है। १२ लाख नैपाली के लगभग तो भारत में ही हैं जिनकी सहानुभूति महाराज (प्रथम

शासक) और कांग्रेस के साथ है पर शस्त्रों से हीन। नैपाल के द्वितीय शासक राणा को इंग्लैंड और अमेरिका से भारत होकर अस्त्र-शस्त्र मँगाने का भी अधिकार है। अतः हमें विश्वास है कि मेरी सरकार यहाँ की कांग्रेस को कुचल देगी और इस विस्फोट का अन्त कर देगी। पर वास्तव में जन समाज की शक्ति की ही विजय होगी।

इस रियासत के आधुनिक महाराजा का नाम "महाराजा-धिराज त्रिभुवनवीर विक्रम जंगबहादुरशाह बहादुर शमशेर जंग" है। इनको सन् १९११ में गद्दी पर बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था और ७ नवम्बर १९५० को आपने राणा की चाल से बचने के अभिप्रायः से काठमण्डू के भारतीय दूतावास में आश्रय लिया था और ११ नवम्बर १९५० को आप सकुशल देहली आ गये थे। भारत के कर्णधारों ने इनका स्वागत बड़ी रुचि से किया। ७ नवम्बर १९५० को नैपाल सरकार ने इन्हें राज्य गद्दी से पृथक कर दिया और उनके ३वर्षीय पोते को गद्दी की बागडोर सौंप दी।

इसी बीच में भारत और नैपाल की सरकार में शांति स्थापन के लिए समझौता हो गया। ८ जनवरी १९५१ को नैपाल के द्वितीय शासक ने निम्न प्रकार की घोषणा की।

१. राजा त्रिभुवन ही इस नैपाल के महाराजा होंगे और उनको गद्दी पुनः सौंप दी जायेगी।

२. अपनी अनुपस्थिति में राजा एक एजेन्ट नियुक्त कर सकेंगे।

३. १९५२ तक एक विधान परिषद् बुलाई जायेगी और शीघ्र ही १४ मन्त्रियों के एक अन्तरिम मन्त्रि-मण्डल का निर्माण किया जायेगा, इनमें से ७ जनता के प्रतिनिधि होंगे।

४. नये विधान के बनने तक वर्तमान विधान ही जारी रहेगा।

५. शीघ्र ही शासन को न्याय-विभाग से पृथक कर दिया जायेगा।

६. राजनैतिक दलों की स्थापना पर कोई पाबन्दी नहीं लगाई जायेगी।

महाराज ने भी इस घोषणा और इन वैधानिक सुधारों का स्वागत किया। और नैपाल जाकर अपनी रियासत का कार्य सुचारु रूप से करने लगे।

राणा-दल और कांग्रेस दल के अन्तरिम मन्त्रि-मण्डल में शीघ्र ही फूट पड़ गई और कांग्रेस-दल ने स्तीफा दे दिया। फलस्वरूप राणाओं को भी त्यागपत्र देना पड़ा और इस प्रकार राणाओं के १०२ वर्ष पूर्व के शासन का अन्त हो गया। अब श्री मातृका प्रसाद कोईराला नैपाल के प्रधान मन्त्री हैं और नैपाली शासन की समस्त बागडोर कांग्रेस ने सम्भाल ली है। नैपाल में कांग्रेस की विजय मानव की स्वतन्त्रता-प्रिय भावना की विजय है।

[सुश्री सुदेश शरण 'रश्मि']

एटलांटिक पैक्ट—एक दृष्टि में

ऐंग्लो-अमेरिकन देशों ने रूस की शक्ति को दिन पर दिन बढ़ता देख कर 'एटलांटिक पैक्ट' नाम द्वारा संधि की, और सन् १६४६ की ४ अप्रैल को वाशिंगटन में १२ पश्चिमी देशों ने २० वर्ष की लम्बी अवधि के लिए इस पर हस्ताक्षर कर दिये। इसके सदस्य निम्न देश हैं—मेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, बेलजियम, कनेडा, लक्सम्बर्ग हालेण्ड, नारवे, ।इसलैण्ड, डेनमार्क, पुर्तगाल तथा इटली।

एटलांटिक पैक्ट की सन्धि विश्व की आजतक की सन्धियों में मुख है। उपरोक्त देशों पर किसी अन्य देश के द्वारा किये गये आक्रण को इसके सदस्य मिलकर रोकेंगे और आक्रमण से घिरे हुए देश ो हर प्रकार से सहायता करेंगे। इसके सदस्य विचार-विमर्श के लिए ौर अन्य राजनैतिक समस्याओं को हल करने के अभिप्राय से समय-मय पर मिलते रहा करेंगे।

इसके उपरान्त इस सन्धि के सदस्यों ने यह घोषणा करदी कि वे

कभी भी राष्ट्रसंघ के कार्यों में बाधक नहीं बनेंगे। इस सन्धि को राष्ट्रसंघ का तनिक भी हस्तक्षेप न होने के कारण रूस ने मानने से इन्कार कर दिया और यह स्पष्ट कह दिया कि यह सन्धि राष्ट्रसंघ के क्षेत्र में गुटबन्दी के रूप में आई है।

इस सन्धि के अन्तर्गत देशों और साम्यवादी देशों की शक्ति की निम्न प्रकार से तुलना की गई।

१. जन संख्या में साम्यवादी गुट से १९१० अधिक।

२. संघर्षों के लिए सामग्री तथा स्टील पैदा करने की तीन गुना शक्ति।

३. कोयला दुगुना।

४. मिट्टी का तेल आठ गुना।

५. लारी, बस और कारें इत्यादि तीस गुना।

६. सामान को लेजाने वाले जहाज चौबीस गुना।

इसका परिणाम यह हुआ कि रूस ने बर्लिन को तो घेर लिया परन्तु योरुप में उसकी बढ़ती हुई शक्ति को रुक जाना पड़ा।

नेहरू-लियाकत संधि

कुछ कारणों के कारण जब लाखों की संख्या में लोग दोनों देशों को छोड़कर भागने लगे तो इन देशों की स्थिति गंभीर होगई। इस समस्या को सुलझाने के लिये श्री जवाहरलाल नेहरू ने पाकिस्तान प्रधानमंत्री लियाकतअली को देहली बुलाया। दोनों में इस विषय पर एक सप्ताह तक वार्तालाप होता रहा-और उसके उपरान्त अप्रैल १९५ को नेहरू-लियाकत संधि हुई।

कारण—

सन् १९४० में हुए अत्याचारों को पश्चिमी पाकिस्तान के अल्प संख्यक भूलने भी न पाये थे कि सन् १९५० के आरम्भ में वैसे ही वैसे ही अत्याचार पूर्वी बंगाल में भी होने आरम्भ होगये।

इस कारण से पूर्वी बंगाल में रहने वाले हिन्दुओं का रहना असम्भव सा होगया और वे वहाँ से बड़ी भारी संख्या में भागकर पश्चिमी बंगाल और आसाम में जा बसे। भारत में रहने वाले मुसलमानों को भी यह डर होने लगा कि कहीं पूर्वी बंगाल के अत्याचार का बदला उनसे न चुकाया जावे वे भारत को छोड़ पाकिस्तान जाने लगे। इस दशा को देखना जब दोनों देशों के लिये असह्य होगया तो उन्होंने उपरोक्त संधि की।

संधि की शर्तें

१. दोनों देशों के जान, माल तथा संस्कृति की रक्षा की जावेगी।

२. एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने की स्वतन्त्रता होगी और रास्ते में जाते हुए उनकी हर प्रकार से रक्षा की जावेगी।

३. चल सम्पत्ति (धन, जेवरात और सामान इत्यादि) को अपने साथ ले जाने का अधिकार होगा।

४. बैंकों में जमा किया हुआ धन, आभूषण इत्यादि दूसरे स्थान पर भेजा जा सकेगा।

५. यदि कोई व्यक्ति ३१ दिसम्बर १९५० तक अपने स्थानको वापस आजायेगा, तो उसकी अचल सम्पत्ति उसको वापस दिला दी जायेगी।

६. यदि कोई व्यक्ति वापस न आना चाहे तो उसको अचल सम्पत्ति बेचने का अधिकार होगा।

७. दोनों देशों में अल्पसंख्यकों की ओर से मंत्री नियुक्त होंगे जो अल्पसंख्यकों के अधिकारों की हर प्रकार से रक्षा करेंगे।

८. संधि को कार्यान्वित करनेके लिये पूर्वी बंगाल, पश्चिमी बंगाल और आसाम में अल्पसंख्यक कमीशन की गई।

इस संधि के उपरान्त दोनों देशों के मंत्रियों ने एक दूसरे के देश में जाकर स्थिति का अवलोकन किया और इस संधि को सफल बनाने का भरसक प्रयत्न किया गया। इस संधि के हो जाने से पारस्परिक संघर्ष के छिड़ जाने की आशंका समाप्त होगई। (श्री योगेशचन्द्र)

स्वतंत्र भारत और उसकी समस्यायें

स्वतंत्रता के पथ के रूप में भारत को झाड़ झंकाड़ से घिरे हुए पथ में चलना पड़ा। कितनी साधनाओं और बलिदानों के उपरान्त १५ अगस्त १९४७ के दिवस को भारत को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। परन्तु उसे क्या पता था कि आजादी के ये चमकीले वस्त्र उसके शरीर में कांटों के समान चुभने लगेंगे। और अब अनेक समस्यायें कटि बनकर उसके सम्मुख आईं तो वह उन्हें देखकर दंग रह गया—

१ रियासतों की समस्या

भारत के विभाजन से पूर्व ५६२ ऐसी रियासतें थीं जोकि भारत को विष का प्याला पिला सकती थीं। भारत की महान आत्मा सरदार वल्लभ भाई पटेल ने इन रियासतों का विलीनीकरण निम्न प्रकार से करके भारत को खतरे से बचा दिया।

क. छोटी २ रियासतों को पास वाले प्रान्तों में मिला दिया गया।

ख कई २ रियासतों को मिला कर संघ बना दिये गये।

ग. कुछ रियासतों की शासन व्यवस्था को केन्द्रीय सरकार के आधीन कर दिया गया।

घ. बड़ी रियासतों में उत्तरदायी सरकारों की स्थापना करदी गई।

२ शरणार्थी-समस्या

भारत-विभाजन क उपरान्त १ करोड़ से अधिक शरणार्थी भारत में आये। इनके रहने और पालन की समस्या भारत की सरकार के सम्मुख उपस्थित होगई। सरकार ने लगभग इसको हल करने के लिये ३० करोड़ रुपया व्यय कर दिया गया है। इतने पर भी यह समस्या पूर्ण रूप से हल नहीं हो सकी है। इसने इसकी अचल सम्पत्ति की हानि को पूर्ण करने का भी भरसक प्रयत्न किया। भारत में आये हुए शरणार्थियों की अचल सम्पत्ति पाकिस्तान

में लगभग ५० अरब रुपये की थी और भारत से गये हुए मुसलमानों की सम्पत्ति भारत में केवल १० अरब के ही लगभग थी। इसलिये पाकिस्तान इस समस्या को हल करने के लिये कदापि तैयार नहीं इतने पर भी भारतीय सरकार इसको सुलझाने के लिये उपाय सोच रही है।

३ नई सीमाओं की रक्षा

चीन के प्रभाव को तिब्बत में बढ़ता हुआ देखकर, नेपाल और बर्मा के सीमान्त देशों में अराजकता के कारण भारत सरकार को बहुत सतर्क रहना पड़ रहा है। आसाम की ओर भी साम्यवादी दूसरे देशों की शक्ति के भरोसे उपद्रव मचा रहे हैं। इन सबों को सामने रखते हुए सरकार इस समस्या को सुलझाने का भरसक प्रयत्न कर रही है।

४ अन्न संकट

इस विभाजन से अधिक उपजाऊ ग्राम पाकिस्तान में चले गये हैं जिसके कारण अन्न संकट भारत को चारों ओर से घेरे खड़ा है। इसका मुकाबला करने के लिये प्रत्येक वर्ष हमारी सरकार करोड़ों रुपयों का अनाज विदेशों से मंगा रही है। इसके अतिरिक्त अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलनों के द्वारा वह अन्न-संकट का सामना कर रही है। अतः आशा है कि भारत शीघ्र ही इससे स्वावलम्बी हो जायेगा।

५ शिक्षा-स्वास्थ्य

इसके लिए भारतीय सरकार रचनात्मक कार्य कर रही है योजनाओं को पूर्णरूप से कार्यान्वित करा रही है। इसका सम्बन्ध भारत की आर्थिक अवस्था के साथ है। यदि आर्थिक अवस्था अच्छी होती गई तो यह समस्या भी भली भांति से सुलझ जावेगी।

६ आर्थिक दशा

स्वावलम्बी न होने तक किसी भी देशकी आर्थिक अवस्था ठीक नहीं हो सकती है। कृषि के सम्बन्ध में तो भारतीय सरकार हर प्रकार से प्रयत्नशील है और उद्योग के बारे में हर प्रान्त में नदियोंमें बाँध बनाकर

बिजली पैदा करने के लिए भरसक प्रयत्न हो रहे हैं। इस प्रकार के यन्त्रों के आविष्कार के अभिप्राय से बड़ी २ फैक्टरियाँ खुल चुकी हैं। और शेष योजनाओं को पूर्ण करने की चेष्टा की जा रही है। इसके लिए योजना आयोग के कार्यालय की भी स्थापना कर दी गई है।

७ राजनैतिक दशा

[क] देश के अन्दर की दशा।

[ख] बाहरी देशों के साथ भारत का सम्बन्ध।

[क] भारत सरकार ने सरदार पटेल के नेतृत्व में कई समस्याओं को सुलझाया। भारत-विभाजन के उपरान्त कम्यूनिस्टों की हलचलें खतरनाक सीमा तक पहुँच चुकी थीं। हैदराबाद, मद्रास और बंगाल तो उपद्रवों का केन्द्र बने हुए थे। इनको सुधारने के लिए भारत को कठोर नीति का सहारा लेना पड़ा। आकालियों, सोशलिस्टों और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के साथ जिस नीति का प्रयोग किया, वह भारत के प्रत्येक नागरिक के सामने है। इस समय भारत में शांति की स्थापना हो चुकी है फिर भी कम्यूनिस्टों से सरकार को सतर्क रहने की आवश्यकता है।

[ख] विश्व की अन्तर्राष्ट्रीय नीति इस समय बहुत विकट है। विश्व में इस समय दो दल बन चुके हैं। एक का नेतृत्व अमेरिका के हाथ में है और दूसरे का रूस के हाथ में। भारत सरकार की नीति इस समय दोनों में मेल करवाने की है। इसके अलावा भारत ने कई विदेशों में अपने राजदूत भेजकर अपने देश के मान को ऊँचा किया है।

८ साम्प्रदायिकता तथा प्रांतीयता

भारत की यह समस्या नये संविधान के बन जाने से कुछ सुलझ सी गई है और आशा है कि फिर आने वाले समय में कोई भी भेद-भाव न रह सकेगा। (सम्पादक)

युद्ध अनिवार्य क्यों ?

प्राणि शास्त्र वेत्ताओं ने जब अन्य प्राणियों का अध्ययन आरम्भ किया तो उसके साथ साथ मनुष्य का भी अध्ययन आरम्भ हुआ। डारविन तक पहुंचते पहुंचते यह बात पूर्ण रूप से निश्चित हो गई कि मनुष्य भी अन्य प्राणियों की तरह विकास के मार्ग में पड़ा हुआ, किसी विशेष प्रकार के बन्दर का ही रूप है। इस सिद्धान्त ने एक बड़े विचित्र सिद्धान्त को जन्म दिया और वह था 'सरवाइ-वल ऑव दि फिटेस्ट' जिसके अनुसार वही प्राणी अपने को इस संसार में रख सकता था जो सबसे अधिक जीवन के योग्य हो। योग्यता का अर्थ अन्त में बल के रूप में परिवर्तित हुआ और यह माना जाने लगा कि जो शक्तिशाली हैं वह निर्बलों को नष्ट करके संसार में बने रहेंगे। इसको प्रमाणित करने के लिए प्रकृति के जंगली जानवरों का उदाहरण दिया गया जो निर्बलों को मार कर जीवित रहते हैं। जंगलों का उदाहरण दिया गया जिसके अनुसार शक्तिशाली वनस्पति निर्बल को कुचल कर बढ़ जाते हैं। इस सिद्धान्त का परिणाम यह हुआ कि मानव समाज ने भी 'स्वतन्त्र प्रति स्पर्धा' के बल पर मानव उन्नति का मार्ग अपनाया। इस 'स्वतन्त्र प्रति स्पर्धा' के मूल में ही व्यक्तिवाद की प्रधानता तथा समाज में निर्बलों को कुचल कर बढ़ने की भावना भी छिपी हुई थी।

इस सिद्धान्त के स्वीकृत होने का परिणाम यह हुआ कि मानव समाज में संघर्ष और तज्जन्य युद्धों की प्रधानता हो गई। युद्धों तथा संघर्ष को देख कर यह जानते हुए भी कि युद्ध के मूल में 'स्वतन्त्र प्रति स्पर्धा' तथा उसके कारण उत्पन्न परिस्थितियाँ ही हैं, कुछ विद्वानों जो एक विशेष व्यवस्था से प्रभावित हो गये थे, युद्ध के नवीन कारणों पर प्रकाश डालना प्रारम्भ किया। बहुत विद्वानों ने कह दिया कि युद्ध मानव स्वभाव में भी उसी प्रकार निहित है जिस प्रकार अन्य जानवरों में। जर्मनी के विद्वान निशे महोदय ने संसार की बुराइयों को दूर करने

तथा वीरता आदि गुणों की सृष्टि के लिए युद्ध को मानव के लिए अत्यावश्यक तथा कल्याण कर बताया। मनोविज्ञान के विद्वानों के अनुसार भी जंगली जानवरों के संस्कार मनुष्य के मस्तिष्क में होने के कारण युद्ध की प्रेरणा देने वाले प्रमाणित हुए।

यदि विचार किया जाय कि इन विद्वानों ने ऐसा क्यों कहा तो हमें यही कहना पड़ेगा कि उनकी परिस्थितियों ने उन्हें ऐसा कहने को बाध्य किया। यह सत्य है कि कोई भी विचार परिस्थितियों की उपज होता है। बात यह थी कि पश्चिम में पूंजीवादी सभ्यता सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही मानो आरम्भ हो गई थी। पूंजीवाद के मूल में 'स्वतन्त्र व्यक्तिगत स्पर्धा' को उचित नियम के रूप में स्वीकार कर लिया गया था। इस नियम के अनुसार जनता की बड़ी संख्या को तो नहीं पर शासक वर्ग की एक बड़ी संख्या को अवश्य बहुत लाभ था। पूंजीवाद पहले व्यापार के रूप में आया। व्यापार—बाज़ार के लिए संघर्ष अनिवार्य था। भिन्न-भिन्न देशों को बाज़ार बनाने के लिए भिन्न व्यापारियों में संघर्ष अनिवार्य था। पहले एक देश के व्यापारियों में भी संघर्ष रहा जैसे ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने बहुत समय तक इंग्लैंड के व्यापारियों को भारत तथा चीन आदि में व्यापार नहीं करने दिया। इंग्लैंड में जब सरकार पर प्रभाव डाला गया तब अन्य लोगों को भी व्यापार करने को आज्ञा मिल सकी।

यह संघर्ष जो केवल एक देश के व्यापारियों में ही था दूसरे देश के व्यापारियों से स्पर्धा के कारण दब गया और आवश्यकता के अनुसार राष्ट्रीयता का जन्म हुआ। सबसे पहले राष्ट्रीयता की भावना ब्रिटेन में १५८८ ई० में एलिज़ा बेथ के काल में लक्षित हुई जिस समय स्पेन के आरमेडा का विरोध करना था। यह पूंजीवादी सभ्यता की सामन्तवादी श्रद्धा तथा धर्म प्रधान सभ्यता पर बौद्धिक विजय थी। इसके पश्चात् तो पूंजीवाद के विकास के साथ हालैंड, अमरीका, फ्रांस तथा स्पेन में राष्ट्रीयता प्रधान होती गई। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त

होते होते वहाँ संसार के सभी देशों में परिव्याप्त हो गई।

पूंजीवाद में भी धीरे धीरे विकास हो रहा था। पहले व्यापार की प्रधानता रही फिर बैंकों की हुई तत्पश्चात् उद्योगों की प्रधानता हो गई। उद्योगों की प्रधानता के साथ एक देश में इसका रहना असम्भव हो गया। पूंजीवाद में व्यापार, बैंक तथा उद्योग साथ साथ चलते हैं। जब तक व्यापार की प्रधानता रहती है तब तक संघर्ष कुछ कम रहता है। जैसा कि सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में रहा। बैंकों की स्थापना के साथ साधनों पर अधिकार करने की लालसा तीव्र होने से संघर्ष कुछ और तीव्र होता है। उन्नीसवीं शताब्दी में इसकी प्रधानता रही। इसके साथ ही बड़े बड़े उद्योगों का विकास हुआ जिससे श्रम का शोषण अधिक होने लगा तथा पक्के माल की खपत के लिए बाज़ारों पर एकाधिकार की आवश्यकता बढ़ने लगी। इस तरह हम देखते हैं कि पूंजीवाद किसी एक देश में नहीं रह सकता। यह एक अन्तर्राष्ट्रीय वाद है जो एक स्थान पर बन्द करके नहीं रक्खा जा सकता।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है युद्ध को स्वाभाववद्ध मानने वाले विद्वानों ने तथा आवश्यक कल्याणकर समझने वाले ने संघर्ष की अनिवार्यता को देख कर ऐसा कह दिया था। एक बच्चा बचपन से ही अत्यन्त लड़ाकू नहीं होता उसकी परिस्थितियाँ ही उसको लड़ाकू बनाती हैं। यह देखा जाता है कि माता पिता जिस प्रकार के होते हैं उसी प्रकार के स्वभाव आदि के बच्चे भी हो जाते हैं। यदि उनमें अन्तर पड़ता है तो कुछ तो उत्तराधिकार में पाये संस्कारों के कारण तथा कुछ वातावरण के कारण। मनुष्य के जीवन में वातावरण का बहुत अधिक हाथ है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मनुष्य स्वभावतः युद्ध प्रिय नहीं है प्रत्युत परिस्थिति वश वैसा बना हुआ है। यदि यह मान लिया जाय कि कुछ लोग प्रबल संस्कारों के कारण वैसे हों भी तो यह नहीं माना जा सकता कि उन कुछ व्यक्तियों के कारण

युद्ध अनिवार्य हो जायेगा क्योंकि युद्ध एक पूर्ण सामाजिक घटना है
केवल व्यक्ति के ऊपर इसको आधारित नहीं किया जा सकता।
कुछ ही व्यक्ति ऐसे हों जो युयुत्सु प्रकृति के कहे जा सकते हैं
उनको वातावरण के प्रभाव शिक्षा आदि के प्रभाव से उस प्रवृत्ति
हटाया जा सकता है। प्रत्येक देश की शासन व्यवस्था ही यह प्रमाणि
करती है कि व्यक्ति की युयुत्सु प्रकृति तब तक युद्ध नहीं कर स
जब तक समाज उसको अवसर न दे।

यह देखा जा चुका है कि युद्ध में एक व्यक्ति के स्वभाव
विशेष महत्व नहीं रखता। इसके अतिरिक्त यह भी देखा जा चुक
कि पूँजीवाद के आगमन ने ही ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न कर दीं
युद्ध अनिवार्य से हो गये और उनके पक्ष में तरह तरह के तर्क
जाने लगे। प्रश्न यह होता है कि क्या युद्ध का कारण पूँजीवा
केवल प्रतिस्पर्द्धा ही है अथवा और कोई अन्य बात?

कार्ल मार्क्स तथा एंथिन्ज़ के अनुसार युद्ध का एक दूसरा ही
कारण है। यह कारण कि पूँजीवाद संसार का अध्ययन करके
बनाया गया है प्रत्युत मानव समाज के सम्पूर्ण इतिहास के अ
के पश्चात् निकाला गया है जिसको कोई भी यथार्थवादी अस्वीका
कर सकता है। उनका कथन है कि समाज में द्वन्द्व है अर्थात् वर्ग
है। एक बार आदिम साम्यवाद था उसके पश्चात् आर्थिक कार
उसमें वर्ग बन गये और वे वर्ग अपने स्वार्थों के लिए लड़ते आ र
वे समाज में दो ही वर्ग मानते हैं एक शोषक तथा दूसरा शो
उनका कथन यह है कि जिस समय व्यक्ति अपने भरण पोषण से
रिक्त सामग्री अपने आर्थिक साधनों द्वारा उत्पन्न करने में सक्षम
उसी समय से समाज में दो वर्ग हो गये। एक वर्गश्रम करने
तथा दूसरा उस श्रम का उपभोग करने वाला हुआ। इस प्रक
विभाजन हो गया। इस वर्ग विभाजन के अनुसार ही जैसी प
बनती गई वैसे ही विचार भी मानव समाज के बनते गये। सम

भिन्न-भिन्न युगों में यह संघर्ष शोषण के आधार पर घटता बढ़ता रहा। पूँजीवादी व्यवस्था में शोषण के साधन बढ़ते जाने से यह संघर्ष बहुत तीव्र हो गया है। दूसरी बात यह है कि इसके कारण एक ऐसा श्रम जीवियों का वर्ग उत्पन्न होगया है जो केवल श्रम ही पर आधारित हैं। ये श्रम पर आधारित रहने वाले शोषण की तीव्रता के कारण बढ़ते चले जा रहे हैं तथा एक साथ कार्य करने के कारण संगठित भी होते चले जा रहे हैं। पूँजीवाद यह विशेष वर्ग उत्पन्न करके अपने पैरों में ही कुल्हाड़ा मारा है। पूँजीवाद इसके बिना रह नहीं सकता। अतः यह असम्भव नहीं कि इस वर्ग को बिना उत्पन्न किए ही यह व्यवस्था चल जाय।

शोषित वर्ग में दो भाग है एक मजदूर तथा दूसरा किसान। किसान को पहले नेता सदा ही शोषक वर्ग से ही मिला करता था, क्योंकि किसान संगठन न होने के कारण नेतृत्व नहीं कर सकता था अब उसे नेतृत्व के लिए मजदूर वर्ग मिल गया है जो शक्ति में आने पर उसके स्वार्थों को भी हल कर सकेगा। आज यही कारण है कि किसी देश में शान्ति नहीं है। क्रान्ति की बातें सर्वत्र सुनाई देरही हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि जिस प्रकार पूँजीवाद एक अन्तर्राष्ट्रीय वाद है उसी प्रकार साम्यवाद भी। यह निश्चित है कि जहां कहीं पूँजीवाद होगा वहां साम्यवाद अवश्य आ जायेगा।

जिस प्रकार पूँजीवाद का विकास ब्रिटेन से हुआ उसी प्रकार साम्यवाद का विकास जर्मनी से हुआ। जर्मनी में ही ऐसी परिस्थिति पहले उत्पन्न हुई कि कार्ल मार्क्स और ए. लिंगल्स जैसे विद्वान पुरुष उत्पन्न हो सके। ब्रिटेन में भी 'लेबर पार्टी' की प्रभुता का भी रहस्य इसी वर्ग के निर्माण में ही है। यह वर्ग फिर भी साम्यवाद की स्थापना करने में असमर्थ इसलिए था कि अन्य देशों में श्रमिकों के शोषण से वह भी पल रहा था। सबसे प्रथम साम्यवाद के आधार पर सरकार रूस में ही बन सकी। क्योंकि वहां के आन्दोलन का नेतृत्व मजदूरों के हाथमें रहा

गया। रूस के पश्चात् इस वाद की गति और तीव्र हुई और यह
के कई देशों में भी स्वीकृत हुआ तथा चीन जैसे महान देश में
इसको समानता मिली। इसकी बढ़ती हुई गति ही यह प्रत्यक्ष
है कि पूँजीवाद की तरह से यह भी किसी एक देश में बन्द न
सकता।

पूँजीवाद तथा साम्यवाद के संघर्ष को देखते हुए यह क
बाध्य होना पड़ा है कि ये द्वन्द्व एक साथ नहीं चल सकते। जिस
सत्य असत्य-प्रकाश अन्धकार एक साथ नहीं रह सकते इसी प्र
दोनों का साथ रहना, इनके बीच समझौता होना असम्भव
परिणाम पर पहुँचने के आधार आधुनिक घटनायें हैं। कोरिया
इस प्रकार के समझौते पर प्रकाश डालने में बहुत सहायक हो स
कितने दिनों से समझौते की बात चल रही है पर यह सम्भव
सका। चीन में जनता के चुने प्रतिनिधियों की सरकार प्रतिनि
उसके प्रतिनिधि यू० एन० ओ० में नहीं रक्खे जाते। कोरिया
में भारत के प्रधान मंत्री की राय की जैसी व्याख्या की गई
प्रमाणित करती है कि स्वार्थ के आधार पर ही पूँजीवादी दे
में समझौता करने के पक्ष में हैं। आज ईरान में तेल का प्रश
'स्वेज़' का प्रश्न इतना दबाव डाल रहा है कि पूँजीवादी देश
में समझौता करने के पक्ष में केवल इसलिए हैं कि उन्हें इन्हें
की समस्याओं को अपने मनोनुकूल अवसर मिले। ईरान त
जनता अपनी सम्पत्ति का दूसरे के पास जाना नहीं देखना च
दशा में उनको अपने अधिकार में रखकर उस सम्पत्ति का उ
के पक्ष में देश सेना का दबाव डालना चाहते हैं। हम
कोरिया के समझौते का कारण केवल यही दबाव है नहीं
लाल नेहरू का पत्र जो ता० १६-७-५० को जे० वी० स्टालि
गया था। शान्ति स्थापित करने के अच्छे आधार को घोषि
उसमें कहा गया है। भारत का उद्देश्य युद्ध को एक

सीमित रखना और सुरक्षा परिषद के वर्तमान गतिरोध को दूर करने उसके शान्ति पूर्ण हल को शीघ्र निकालने में सहायता देना है जिससे कि चीन की लोकशाही का प्रतिनिधि सुरक्षा परिषद में अपना स्थान ग्रहण कर सके, सोवियत संघ उसमें वापिस आ सके और परिषद के भीतर अथवा उसके बाहर गैर सरकारी सम्पर्क के द्वारा सोवियत संघ अमरीका और चीन दूसरे शांति प्रिय राज्यों की सहायता और सहयोग से लड़ाई बन्द करने और कोरिया की समस्या के आखिरी हल के लिए कोई आधार निकाल सकें।

श्री नेहरू का पत्र

जे० वी० स्टालिन ने इसका उत्तर इस प्रकार दिया था—"मैं आपका शांति के लिए उठाये गये कदम का स्वागत करता हूँ। मैं आपके इस दृष्टिकोण से पूर्णतः सहमत हूँ कि कोरिया के प्रश्न का सुरक्षा परिषद द्वारा जल्दी शान्तिपूर्ण हल निकाला जाय जिससे पाँच बड़े देशों के प्रतिनिधि, जिनमें चीनी लोकशाही सरकार का प्रतिनिधि भी शामिल हो, उसमें भाग ले सकें।

ये दोनों पत्र यह प्रकट कर रहे हैं कि ये लोग शान्तिपूर्ण समझौता चाहते हैं पर इन्हीं पत्रों के विषय में यह कहा गया कि जवाहर लाल स्टालिन के चाल में आ गये और भूल कर गये। जब कोई भी ईमानदारी से पूर्ण बात कही जायेगी और यदि किसी के स्वार्थों के विरुद्ध पड़ने से ही वह भूल हो जायेगी उस दशा में दोनों सिद्धान्तों में समझौता होना कठिन है। अधिकांश लोगों की धारणा युद्ध की अनिवार्यता की ओर ही झुकती जान पड़ती है। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो विश्वव्यापी विराट-संघर्ष से बचने की आशा लगाये हैं। उनका अनुमान है कि अब युयुत्सा नामक प्रवृत्ति का शासन किया जा सकता है तो सामाजिक व्यवस्था में समुचित संशोधन हो जाने पर युद्ध की अनिवार्यता नहीं बनी रह सकती। वे विश्व-मानववाद में विश्वास रखते हैं। सरलता पूर्वक इस विकट गुत्थी के सुलझाने की चेष्टा भी उनकी ओर से

हो रही हैं। भारतवर्ष के अधिकांश आचार्य और राजनैतिक नेता इसी शान्तिपूर्ण मार्ग से समस्या का समाधान ढूँढते हैं। राजनीति और समाज व्यवस्था के अहिंसात्मक परिवर्तन में उनको दृढ़ आस्था है। पिछले दिनों भारत में आये हुए चीनी सांस्कृतिक मंडल ने एक वक्तव्य में कहा था कि भारत और चीन सम्मिलित रूप से विश्व में शान्ति स्थापित करने का महान् अनुष्ठान सम्पन्न कर सकते हैं। रूस के विदेश मंत्री श्री विशिस्की ने पिछले वर्ष वाशिंगटन में एक प्रति-प्रतिनिधि सभा में भाषण करते हुए यह कहा था कि समाजवादी और पूंजीवादी दोनों ही व्यवस्थायें समान भाव से नहीं रह सकती हैं। पूंजीवादी को समाजवाद के लिये स्थान रिक्त करना ही पड़ेगा, परन्तु यह अनिवार्य नहीं कि एक भयंकर युद्ध के फल स्वरूप ही परिवर्त्तन सम्भव हो सके। शान्तिमय उपायों से भी मनुष्य समाजवादी व्यवस्था का निर्माण कर सकता है।

प्रश्न यह है कि क्या समाजवाद की स्थापना से युद्ध की आशा सर्वदा के लिये समाप्त हो जायेगी। इस सम्बन्ध में विनम्र निवेदन इतना ही है कि किसी भी वस्तु में शाश्वतता नहीं है। युद्ध का अभाव भी इसका अपवाद नहीं। समाजवाद की स्थापना के उपरान्त नयी समस्या उठ खड़ी होंगी जिनकी कल्पना भी आज हम नहीं कर पाते। बहुत संभव है कि मानव जब उनके समाधान में तत्पर हो तो कभी उसे युद्ध की शरण लेनी पड़े। मनुष्य के आज तक के सांस्कृतिक विकास में कोई भी युग ऐसा नहीं गुजरा जब युद्ध न हुआ हो, और कुछ लोगों के अनुसार, आगे भी युद्धकी सम्भावना बनी ही रह सकती है। परन्तु जो मानव वृत्तियों के उदात्ती करण में विश्वास रखते हैं उनके लिये सोचना स्वाभाविक है मनुष्य किसी दिन अवश्य इस प्रवृत्तिका शमनकर लेगा। ऐसे लोगों का मार्ग कल्याण कारी है।

(प्रो० जयचन्द्र राय, एम० ए०)

भारत और पाकिस्तान

इस वैज्ञानिक युग में धर्म का राजनीति के साथ सम्बन्ध न रह
र मानव की आत्मा के साथ रह गया था। विश्व के सभी राष्ट्रों ने
परोक्त राह पर अपने को तथा राष्ट्र को डालना आरम्भ कर दिया था
योंकि वे गुलामी की जंजीरों से कोसों दूर स्वतन्त्रता की सुगन्धी को
ूंघ रहे थे। परन्तु अंग्रेजों के पंजों में जकड़ा हुआ भारत स्वतन्त्र
ाह पर न चल सका। इसके बर्बर शासकों ने हिन्दुत्व और यवनत्व के
ोजोरोपण से भारत को वंचित न रखा! इसका मुख्य कारण यही था
के धार्मिक सिद्धान्तों पर चलने वाले भारत पर Divide and
Rule का सिद्धान्त लागू नहीं किया जा सकता था। इंग्लैंड की
नता के नेता क्रिप्स ने जिस का स्वागत भारत में कभी अवहेलना की
ष्टि से किया गया था, जिन्हा को विघातमक प्रवृत्ति को शक्ति देकर
भारतीयों के अहित में पाकिस्तान की भावना का सूत्रपात किया।
पाकिस्तान के नेता स्वर्गीय जिन्हा का विचार था कि पंजाब, बंगाल
और सिन्ध में यवनों का बहुमत होने के कारण पाकिस्तान बनने में
दुर्लभता न होगी और फिर बाहरी मुसलमानी शक्तियों के संगठन के
आधार पर भारत पर आक्रमण सुगमता से हो सकेगा। परन्तु जिन्हा
अपनी कामुकता में असफल ही रहे और भारत विजय के स्वप्न स्वप्न-
मात्र ही रह गये। अंग्रेजों और अमेरिका की चालों से भारत न बच
सका जिसके कारण उसको दो भागों में विभक्त हो जाना पड़ा।

आज के सक्रान्ति काल में राज्य विस्तार से धर्म विस्तार की
कल्पना करना मूर्खता ही है। क्योंकि आज धर्म का राजनीति के साथ
कोई सम्बन्ध नहीं है? कुछ विद्वानों का विचार है कि भारत के टुकड़े
हो जाने से इसकी उन्नति में रुकावटें आ गई हैं, परन्तु मैं इनके मत से
सहमत नहीं होता। मेरे विचार से तो पाकिस्तान बन जाने के पश्चात्
ही भारतीय सरकार को अपने कार्यक्रम पर चलने का अवसर उचित

प्रकार से प्राप्त हुआ। यदि ऐसा न हुआ होता तो भारत का हरिजन-वर्ग जो कि आज हिन्दुओं का ही एक अंग है सदैव के लिए इनसे पृथक होकर राज के प्रलोभन में आकर यवनों से मिल जाता और इस प्रकार से अवश्य हिन्दुओं का नाम सदैव के लिए लोप हो जाता। पाकिस्तान के बन जाने से मुसलमान वर्ग की सीमा बन गई और भारत में मुसलमानों की अवस्था शोचनीय हो गई। भारतीय सरकार की सहायता को लेने वाला मुसलमान आत्मग्लानि के कारण मस्तिष्क को ऊंचा करके कभी नहीं चलता। पाकिस्तान के बन जाने से इस्लामधर्म का बहता हुआ स्रोत प्रायः रुक सा गया है और निकट भविष्य में उस के प्रसार की कोई सम्भावना दृष्टिगोचर नहीं होती।

पाकिस्तान के बन जाने से भारत को एक सबसे बड़ी समस्या जो सामने आई वह थी खाद्य-समस्या। क्योंकि खाद्य को उपजाने वाला अधिक भाग उसके हाथ से निकल कर पाकिस्तान की ओर चला गया जिससे चावल, कपास, गेहूँ, चना और पटसन के लिए भारत को अन्य देशों की ओर ताकना पड़ रहा है। इन सभी अभावों को भारतीय सरकार शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण करने की चेष्टा कर रही है। कोयले के लिए पाकिस्तान को भारत की ओर निहारना पड़ता है। पाकिस्तानी नदियों का पानी भारत में होकर जाने वाली नदियों से जाता है यदि भारतीय सरकार आज ही पाकिस्तानी भूमि को ऊसर बनाना चाहे तो वे नदियों में बांध लगाकर बना सकता है।

मुसलमान शिल्प के कामों में दक्ष थे। जिस प्रकार उनके भारत से चले जाने पर शिल्प को काफ़ी क्षति उठानी पड़ी उसी प्रकार हिन्दू व्यापारीवर्ग के पाकिस्तान से चले आने पर वहाँ का व्यापार कम हो गया। शरणार्थियों के परिश्रम ने भारत की गिरी हुई दशा को शीघ्र ही सम्भाल लिया। परन्तु पाकिस्तान अपनी आर्थिक स्थिति को ठीक प्रकार से सम्भालने में अबतक असमर्थ रहा।

१५ अगस्त १९४७ के विभाजन से दोनों देशों में रहने वाली

जनता के आपसी मतभेद अवश्य बढ़ गये हैं। अहिंसा के अवतार बापू ने हिन्दू-मुस्लिम एकता का जो सूत्र पिरोया था वह नष्ट हो गया और आज के भारत के आदर्श के साथ जनता के आंशिक सहानुभूति मात्र ही है। इस विभाजन में जो नर-संहार हुआ है वह युग-युग तक भुलाने वाली बात नहीं। यह जो कुछ भी हो चुका है और कभी होने की सम्भावना बन जाती है वह सब सामाजिक पतन की पराकाष्ठा है। निरीह बच्चों का भाले की नोक से बेधकर आग में झोंकना, अबला नारी समाज पर बलात्कार करना। यह सब हिन्दू-मुस्लिम एकता के मध्य दीवार बनकर खड़ी हो गई है। दोनों वर्गों के बीच एक गहरी खाई खुद चुकी है जिसको पाकिस्तान की हिन्दू-निर्वासन नीति ने उसे और भी बलवती बना डाला है।

राजनैतिक क्षेत्र में भी पाकिस्तान ने जो विदेशी नीति को लेकर टांग अड़ाई थी वह भी उसकी टूट चुकी है। जिसके फलस्वरूप अब उसे गुण्डागर्दी रूपी लकड़ी का सहारा लेकर चलना पड़ रहा है। जिन-जिन समस्याओं को लेकर वह भारत के सामने आया, उनमें उसे असफलता के सुनहरे ताज को ही पहनना पड़ा। काश्मीर-समस्या, हैदराबाद की समस्या, जूनागढ़ और भूपाल के नवाब का पतन, खाद्य समस्या आदि इन सब में सत्य के अवतार भारत की ही विजय हुई। इस विभाजन से पूर्व जिन नगरों में मुसलमानों का प्रभुत्व पूर्ण रूप से था उनमें से इसके विभाजन के उपरान्त आधा भाग भारत को मिल गया जिसके कारण सभी मुसलमानी रियासतें स्वाहा हो गई हैं। इस प्रकार से पाकिस्तान हिन्दुओं के लिए श्रेयस्कर ही हुआ है। पाकिस्तान इस समय पठानिस्तान की समस्या से घबड़ा रहा है जिसका सुलझाना उसके लिये टेढ़ी खीर है। जहाँ तक मुझे आशा है कि उसमें ज्वाला उठने वाली हैं जिसमें समस्त पाकिस्तान को ही भुनना पड़ेगा।

यह सत्य है कि पाकिस्तान ब्रिटिश साम्राज्यवाद की जननी और अमेरिकी राजनीति का एक प्रमुख अंग है। क्योंकि उनको विश्वास

था कि जो सहायता भारत नहीं कर सकता है, वे सभी पाकिस्तान के द्वारा हो सकती हैं ? अतः उन्होंने अपने शत्रु रूस के विरुद्ध अपनी शक्ति का संगठन करने के लिए भारत के उत्तर पश्चिम में ऐसे स्थान की आवश्यकता थी जहाँ पर कि वह अपनी हवाई सेना का पूरा प्रबन्ध कर सके। उसी उद्देश्य को पाकिस्तान ने पूर्ण किया। बेचारे भोले भाले मुसलमान अंग्रेजों और अमेरीकी चालों में कुचले जा रहे हैं। पाकिस्तान आज बहुत सी समस्याओं के बीच में घिरा पड़ा है, उनको सुलझाये बिना उसके भविष्य का निर्माण नहीं हो सकता है। पाकिस्तानी नेताओं ने भोली भाली मुसलमान जातियों को उकसा-उकसा कर अपने मनोरथों को सफल बनाया है। जिसके फलस्वरूप पाकिस्तान को सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। इनको इसने शीघ्र ही न हल कर लिया तो यह शीघ्र ही मृत्यु की सुखद गोद में सो जायेगा। आज भारत भी अपनी समस्याओं को सुलझाने में संलग्न है। सफलता की शक्ति भारत का हाथ पकड़े हुये है। भारत के योग्य कर्णधारों ने भारत को सुसंगठित और सुव्यवस्थित कर लिया है और आज समस्या को सुचारु रूप में लाने के लिए वह अपनी समस्त केन्द्रित शक्ति को लगा रहा है। आशा है भारत शीघ्र ही इसमें सफल होगा। (सम्पादक)

जमींदारी उन्मूलन

सैकड़ों युगों से चली हुई प्रथा ज़मींदारी निरंकुशता एकतंत्रता का प्रतीक है। इसका प्रसार भारत में ही नहीं बल्कि सारे विश्व भर में है। ज़मींदार का अपनी ज़मींदारी में वही स्थान है जो किसी राज्य में राजा का है। परन्तु परिस्थितियों ने परिवर्तन दिखाया। साधनों के सीमित होजाने से मानव समाजमें संघर्ष और असामञ्जस्यता का उदय हुआ इस दरिद्र संघर्ष ने ज़मींदारी निरंकुशता के विपरीत विद्रोह कर दिया

जो कि ज़मींदारी उन्मूलन के नाम से समाज के सम्मुख आया। यवन-काल में भी ज़मींदारी प्रथा का भारत में वैसा ही प्रसार रहा। अंग्रेजी काल में भी इसको कुछ न कुछ बढ़ोतरी ही हुई। इस प्रथा के परिणाम-स्वरूप भारत में ज़मींदारों का एक ऐसा वर्ग उत्पन्न हो गया जो ब्रिटिश सरकार का इस समय हितैषी रहा और भोग विलास के अतिरिक्त उसका कोई उद्देश्य नहीं था। ज़मींदारी की बागडोर ऐसे अत्याचारी मानवों के हाथ में रही जो कि मानवता को चन्द चाँदी के टुकड़ों के पीछे बेच चुके थे।

सरकारी पदाधिकारियों को ज़मींदारों की ओर से भेंट और डालियों के रूप में लम्बी-लम्बी रकमें मिलती चली गईं। और उन्हें दौरे पर स्वर्ग का नशा और यौवन की मादकता का रस चखने को मिला। पदाधिकारियों की मादकता में ज़मींदारों की निरंकुशता बढ़ चली। निर्धन किसानों का क्रन्दन होता रहा, पर उन तक आवाज़ न पहुँच सकी। क्योंकि चाँदी के मज़बूत जूते ने उनके कानों को बहरा और आँखों को अन्धा कर दिया था। निस्सहाय होकर ग्रामीण जनता बर्बरता की चक्की में पिसती रही। परन्तु यह अधिक न चल सका पूँजी का आवागमन हुआ; कलाओं का जन्म हुआ, मिलें खुलीं, मिल मज़दूरों का संगठन हुआ और विश्व की व्यापक लहर में इस सोये हुये भारत में भी अपने हाथ फैलाये। कृषकों में चेतना आई। उन्होंने निश्चय किया कि वे पसीने की गाढ़ी कमाई से ज़मींदार समाज को नहीं खाने देंगे। यह विचार आते ही समाज और जनता का ढांचा बदल गया, और एक दिन वह आया कि अंग्रेजी राज्य का सूर्य भारत से सदा के लिए लोप होगया। अब ज़मींदारों का भी बिस्तरा बंध चुका है।

आज भारत में प्रजातन्त्र राज्य है। राज्य के कर्णधार अपने परिचित नेतागण हैं। परन्तु वे भी ढांचे को धीरे-धीरे बदल रहे हैं। परन्तु आज का वैज्ञानिक युग इसमें शीघ्रता का रूप देखना चाहता है।

वह तो बंधनों और बाधाओं से दूर रहना चाहता है। यह सब ज़मींदारी उन्मूलन से हो सकता है जिसके लिए समय की आवश्यकता है। आज का भारत बेकारी को पसन्द नहीं करता है। वह चाहता है उसका बच्चा या बूढ़ा बिना परिश्रम के न कुछ खावे और न कुछ पहने। उसकी इच्छा है कि भूमि उसकी होनी चाहिए जो उसमें परिश्रम करे, जो अनाज उत्पन्न करे। केवल दूसरों के परिश्रम पर घर बैठ कर खाने के लिए भूमि का उपयोग नहीं किया जायेगा।

ज़मींदारी उन्मूलन से भारत की सम्पत्ति में उन्नति होगी। प्रत्येक कृषक अपनी भूमि को तन मन धन से श्रेष्ठ बनाने की चेष्टा करेगा। और समाज की जोंक जो कि उसे ही चूस चूस कर खोखला कर रही है निकाल कर बाहर फेंक देगा। इसी जोंक (शोषक वर्ग) ने विदेश में जा जा कर भारत की पसीने की कमाई को भोग विलास की सामग्रियों में फूंका है। इस प्रथा के नष्ट हो जाने से जनता का सीधा सम्बन्ध अपने राज्य के कर्णधारों से हो जावेगा। जनता में एकता की भावना और स्थिति पैदा हो जायेगी। देश की निर्धनता तुरन्त ही दूर हो जायेगी। और भारत का निर्धन वर्ग सम्पन्न हो जावेगा और मानवता के मस्तिष्क पर लगा हुआ वह अभिशाप का टीका एक न एक दिन अवश्य दूर हो जायेगा।

ज़मींदारी उन्मूलन से सैकड़ों लाभ के साथ साथ एक बड़ी हानि भी है वह यह है कि कुछ समय के लिए भारत की पूंजी कुछ ऐसे मनुष्यों पर चली जायेगी जो कि उत्पादक कार्यों में पैसे को ठीक प्रकार से न लगा सकेंगे। क्योंकि कृषक वर्ग अधिकतर अशिक्षित है वे तो जमाये हुए धन को ज़मीन में गाड़ना ही जानते हैं। इस प्रकार से सरकार को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। आज कृषकों की हाथ की हुई वस्तुओं का मूल्य बहुत ऊँचा है। और जो रुपया उनके पास पहुँच गया है उसका आवागमन रुक सा गया है। जिसके कारण भारत के व्यापार में कुछ शिथिलता आ गई है इससे

का रुक जाना स्थायी नहीं है। ज्यों ज्यों कृषक वर्ग में शिक्षा का प्रसार होगा त्यों त्यों परिस्थिति ठीक होती जायेगी और देश की जागृति के साथ इनमें भी जागृति का संचार होगा जिससे पैसे का आवागमन समाज क्षेत्र में निकल आयेगा।

उपरोक्त सभी बातों से ज़मींदारी उन्मूलन भारत के लिए अत्यन्त आवश्यक है। (सुश्री सुदेश शरण 'रश्मि')

भारतीय लोक का तारा 'पटेल'

भारतवर्ष के इतिहास के सुनहले पृष्ठों पर जब दृष्टि पड़ती है तो देश की कीर्ति को सुरक्षित रखने वालों में सरदार पटेल का भी नाम आता है। केवल भारत ही नहीं वरन् संसार भर के महापुरुषों में सरदार जी का स्थान आदरणीय है। अपनी मातृभूमि पर प्राण न्यौछावर करने वाले वीरों में से ये एक हैं। देश के स्वाधीनता संग्राम में एक कुशल सेनापति और एक तेजस्वी योद्धा के रूप में जो महान कार्य इन्होंने किया वह सराहनीय है। सरदार जी की स्मृति उन महान विभूतियों का स्मरण कराती हैं जिन्होंने अपने सुखमय जीवन की बलि देकर भारत माता के दुखों को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया है।

स्वर्गीय सरदार झेवर भाई वल्लभ भाई पटेल का जन्म काठियावाड़ जिले के करमसाद नगर में ३१ अक्टूबर १८७२ ई० को हुआ। इनके पिता झेवरभाई पटेल एक साधारण कृषक थे। वह भी स्वतन्त्रता के पुजारी होने के कारण ब्रिटिश राज्य द्वारा नज़र बन्द कर लिये गये थे। योग्य बाप के दोनों पुत्र विट्ठल भाई पटेल और सरदार वल्लभभाई पटेल भी देश के परम-भक्तों में अपना नाम अमर कर गये। माता-पिता की आर्थिक दशा का ध्यान करते हुए सरदार पटेल जी ने दशम श्रेणी उत्तीर्ण करने के पश्चात् ही मुख़्तयार बनकर गोधरा और बोरसद में कार्य करने लगे। अपने भाई के इंग्लैंड से बैरिस्ट्री पढ़कर आनेके पश्चात

इन्होंने भी अपना पासपोर्ट बनवाया और वहां से बैरिस्ट्री का डिप्लोमा प्राप्त करके अहमदाबाद में अपनी प्रैक्टिस करने लगे। इनके जीवन में महान परिवर्तन तो गांधी जी के संसर्ग में रहने से हुआ। और विलायत से जो विलासिता का चोला ओढ़ कर आये थे वह इन्होंने अहिंसा के पुजारी गांधी जी का भक्त बनने पर पूर्णतया उतार दिया।

इसके पश्चात् तो प्रत्येक कार्य में सरदार जी गांधी जी के देशहित कार्यों में हाथ बँटाते रहे। आगे चलकर इनके जीवन के महान् त्याग का प्रथम पृष्ठ उस समय आरम्भ होता है जब इन्होंने वकालत त्याग कर ग्राम्य-जीवन धारण कर भारत के पीड़ित कृषक वर्ग करके दरिद्रता-पन को दूर करने का प्रयत्न किया। १९२७ ई० में गुजरात के बाढ़ पीड़ित लोगोंकी जो सहायता आपने की वह वास्तवमें ही प्रशंसनीय है। १९२८ ई० में बारदोली सत्याग्रह में इन्होंने इस कार्य का नेतृत्व कर सरदार जी की उपाधि गांधी जी से प्राप्त की। तबसे इनका नाम सरदार वल्लभ भाई पटेल के नाम से भारत के कोने २ में फैलने लगा। इसी प्रकार स्वतन्त्रता का वह दीवाना स्वतन्त्रता-संग्राम की भड़कती हुई अग्नि में कूद पड़ा। समय २ पर इन्हें ब्रिटिश राज्य ने अपना मेहमान भी बनाया। पर इस शेर की दहाड़ को सुनकर विदेशियों के पैर भारत की भूमि से उखड़ गये। १९४७ ई० में भारत का बंटवारा हो जाने पर खण्डित भारत को सम्भालने का भार इन्हें सौंपा गया। थोड़े ही समय में इन्होंने ५६२ रियासतों को भारत राज्य में मिलाकर अपनी अपूर्व योग्यता, अद्भुत व्यक्तित्व और असाधारण कार्यक्षमता का जो परिचय दिया वह चिरस्मरणीय रहेगा। एक साधारण घराने में जन्म लेकर इतना गौरव प्राप्त करने का श्रेय इनके उन अपाधारण गुणों से पूर्ण जीवन को मिला जो कर्मठता सहनशीलता और कर्तव्यपरायणता से ओत-प्रोत है।

इनके अथक परिश्रम में व्यस्त रहने के कारण इनका स्वास्थ्य बिग-ड़ने लगा और इसका कुपरिणाम हमें १५ दिसम्बर १९५० ई० को

६ बजकर ३७ मिनट पर देखना पड़ा। जब हमारा यह महान नेता विधाता के करों द्वारा हमसे छीन लिया गया। ऐसे संकटमय दिनों में जबकि भारत को ऐसे ही वीर हृदय और यशस्वी महापुरुषों की आवश्यकता थी। सरदार पटेल हमसे सर्वदा के लिए बिछुड़ गये। इनका शरीर चाहे हमसे अलग हो गया पर इनकी आत्मा अमर है। इनका त्यागमय जीवन हम सब के लिए एक सुन्दर उदाहरण है। जिसका अनुकरण करके हम अपने जीवन को सफल बना सकते हैं।

(सुश्री सुदेश शरण 'रश्मि')

भारत कोकिला सरोजिनी नायडू

भारत-कोकिला सरोजिनी नायडू की मधुर ध्वनि का गुंजार अब भी समस्त विश्व में व्याप्त है। भारत के कानन-कुंजों में सर्वदा कूकने वाली यह कोकिला सन् १८७९ में हैदराबाद दक्षिणमें प्रकट हुई। इनकी वाणी का रसास्वादन केवल भारतवासी ही बल्कि अन्य देशवासी भी कर चुके हैं और कर रहे हैं। इनके अमर गीतों में उत्साह, सेवा सहानुभूति और एकता तथा विश्वप्रेम का संदेश मिलता है। यह शांति और प्रेमका राग अलापने वाली वीणा ने अपने सुरीले रागों से अब भी संसार के अगणित प्राणियों को मोहित कर रखा है। नारी जगत में इस बुलबुल की चहचहाहट ने एक हल चल सी मचा दी। भारत में नारी जाति की जागृति का श्रेय केवल सरोजिनी नायडू को ही प्राप्त है।

यह सौभाग्यशालिनी नारी बाल्यकाल से ही सब गुणों में युक्त थी और प्रत्येक नारी सुलभ विशेषता इनमें पाई जाती थी। केवल ग्यारह वर्ष की आयु में ही इनकी मन वीणा की झंकार कविताओं के रूप में सुनाई देने लगी। इन्होंने अपनी शोध प्रतिभा से अधिकतर कवितायें अंग्रेजी में लिखीं। अपनी लोकप्रियता के कारण उनका अनुवाद समस्त भाषाओं में हुआ। कविता रचने की इस अद्भुत शक्ति पर बड़े२ कविगण मुग्ध हो जाते थे।

उच्च शिक्षा पा जाने के कारण इनकी असाधारण प्रतिभा और भी द्विगुणित हो गई और अपनी ज्योति से समस्त संसार को प्रकाशित कर दिया। निज़ाम हैदराबाद ने इनकी अनुपम काव्यरचना पर मुग्ध होकर इन्हें योरुप में अधिक शिक्षा प्राप्त करनेको भेज दिया। वहाँ से लौट कर इन्होंने अपनी कविता शक्ति से भी बढ़कर अपनी वक्तृत्व-शक्ति का जो दिग्दर्शन भारतवासियों को कराया उससे वे मंत्र मुग्ध होकर गर्व से उन्मत हो उठे। यह अपने व्याख्यानों में देश हित सभी विषयों पर कहती थीं। इनके भाषणों में क्या धार्मिक, क्या सामाजिक और क्या राजनी तक कोई भी समस्या ऐसी न थी जिसके विषय को यह अछूता छोड़ देती थी

भारत में कुचली हुई नारी पुनोंत्थान के लिये इन्होंने सारे नारी-सम्बन्धी आन्दोलनों का नेतृत्व कर उन्हें सफल बनाया। इतना ही नहीं राजनीतिक क्षेत्र में यह गांधी जी को भी सहयोग दिया करती थी। इनकी कार्यदक्षता तो तब देखनेयोग्य थी जब इन्हें भारत राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रधान पद प्राप्त हुआ। इसके पश्चात गोल-मेज सामेनि की सदस्या भी बनी भारत माता की सच्ची वीर पुत्री जिसने अपने कर्त्तव्यपालन के लिये अपना सारा जीवन देश हित के लिये अर्पण कर दिया है। यह केवल श्रीमती नायडु ही हैं। भारतकी समस्याओंको हल करने के लिये इन्होंने देशों में घूम २ कर अपनी योग्यता का परिचय दिया। वहाँ भी इन्होंने अपनी भाषण कला का चमत्कार जनता को दिखाया। इनकी वक्तृत्व शक्ति से मुग्ध होकर ही बापूजीने इन्हें भारतीय-कोकिला के नाम से अभिनन्दित किया। इनके जीवन-चरित्र का प्रत्यक्ष प्रमाण तो तब मिला जब भारत विभाजन के पश्चात सर्वप्रथम इनको भारत में उत्तर-प्रदेश का गवर्नर बनाकर अपनी कार्यप्रवीणता का परिचय देने का सुअवसर दिया गया.

धन्य है ऐसी नारी! जिसने वर्तमान युग में यह प्रमाणित कर दिया कि अभी भी संसार में ऐसी शक्तियाँ है जिन्होंने सीता, सावित्री, और

रानी झांसी जैसी वीर नारियों के पक्ष को सुरक्षित रखने की समता शेष है। आज वह कोकिला मौन हो चुकी है किन्तु उसके असाधारण गुणों ने उसके गीतों को अमर कर दिया है। अब तो यही ईश्वर से याचना है कि भारत के दुख मिटाने के लिये ऐसी ही देवियों को इस भूमि पर उत्पन्न करें जिससे यह भारत सर्वदा पल्लवित होता रहे।

[सुश्री सुदेश शरण 'रश्मि']

हिन्दू कोडबिल

मूल प्रवृत्ति—भारत की प्रत्येक वस्तु चाहे वह किसी भी जाति से सम्बन्ध रखती हो अपने सम्पूर्ण कार्य स्वतन्त्रता के साथ करना श्रेयकर समझती है। ऐसे भाव जब उसके हृदय में उद्दीप्त हो उठते हैं तो वो विवश हो जाती है और वो सीधा उल्टा, उत्थान पतन की चिन्ता में न पड़ कर अपनी इच्छाओं को पानी के प्रवाह के समान पूर्ण कर ही डालती है। यही वृत्ति भारत में स्त्री जाति की हो गई है। ऐसी वृत्ति क्यों बनी जब यह प्रश्न मस्तिष्क में घूमता है, तो इसका हल इसी प्रकार हो सकता है कि वो पुरुष वर्ग द्वारा सताई गई है। उसका आदर मनुष्य के हृदय में उतना ही है जितना कि पैर की जूती का। उनकी शिक्षा और उन्नति को महत्व नहीं दिया। उनको सामाजिक अधिकारों से वंचित रखा। पुरुष की उग्र भावनाओं को अपने शरीर पर अत्याचार करा कर सहन किया। उसके पश्चात् भी उसको पिशाचिनी कलंकिनी आदि मान पत्र लेकर घर से निकल जाना पड़ा। इस पर पुरुष समाज तो विवाहित होते हुए भी अनेक विवाह कर सकता है और अबला नारी! उसको पति मान कर पतिव्रता बनी रहती है। इन्हीं प्रवृतियों ने आज स्वतन्त्र भारत में एक प्रस्ताव को जन्म दिया। जो कि हिन्दू कोड बिल के नाम से जनता के सन्मुख आया स्त्री समाज ने उसे उन्नति मार्ग का प्रकाश समझ कर उसे अपनाने की

चेष्टा की। शूद्र जातियों ने पुराने का सहारा समझ कर उसे अपनाने की चेष्टायें की। और उसे पुष्टि करने की योजनायें बनाई।

हिन्दू कोड बिल की मुख्य धारायें—

१. लड़की भी लड़के की भांति अधिकारिणी समझी जाये।

२. किसी भी अयोग्यता के होने पर, या पारस्परिक कलह होने पर पति-पत्नि का सम्बन्ध विच्छेद न्यायाधीश की अनुमति से सम्पन्न होना चाहिए। इससे विषमता का नाश और समता की वृद्धि हो सकेगी।

३. विवाह सम्बन्धी धारायें:—

१. यदि दोनों पक्षों में विवाह के समय पर कोई पक्ष भी पति या पत्नि नहीं रखता हो।

२. यदि दोनों पक्षों में विवाह के समय पर कोई जड़, बुद्धि या पागल न हो।

३. यदि विवाह के समय पर वर अठारह वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो और वधू १४ वर्ष की पूरी हो चुकी हो।

४. यदि दोनों पक्ष परस्पर निषेधात्मक सम्बन्ध की कोटियों के अन्तर्गत नहीं आते हों।

५. यदि दोनों पक्ष आपस में परस्पर सपिण्ड नहीं हो और यदि पारस्परिक आचार और परम्परा के अन्तर्गत दोनों पक्षों में ऐसा संस्कार वैध मानने की प्रथा न हों।

६. जहाँ वर या वधू १६ वर्ष की आयु पूरी न कर चुके हों उसके संरक्षक की स्वीकृति प्राप्त की जा चुकी हो।

यदि उपरोक्त बातें पूर्ण हो जाती है तो किन्हीं भी दो हिन्दुओं में शास्त्रीय रीति के अनुसार विवाह सम्पन्न हो सकेगा।

हिन्दू कोड बिल के गुण व दोष—

इस बिल पर बहुत से विद्वानों का आक्षेप तो यही हो सकता है

कि ऐसी जातियां भारत पर शासक के रूप में रहीं जो हिन्दू जाति को उसकी संस्कृति सहित विश्व से समाप्त करना चाहती थी। वे भी उसकी धार्मिक भावनाओं को किसी भी नियम में न बांध सकी फिर आज यह क्यों है ?

जिस वस्तु में दोष हैं तो उसमें कुछ अंश गुण भी हुआ करते हैं। इसी हेतु हिन्दू कोड बिल यदि दोषों से भरपूर है तो उसमें कुछ गुण भी हैं अब हमें देखना है कि दोष क्या है और गुण क्या ?

स्त्री को अबला कहा गया है। इस शब्द के पोषक होने के कारण से धन और सम्पत्ति की रक्षा करने के लिए अयोग्य और असहाय समझी गई है। अतः वह पुत्र के समान दायाद की अधिकारी नहीं हो सकती। यदि वो अधिकारिणी बन भी जाती है तो उसका स्वरूप यह होता है कि वो अपने भाईयों के सच्चे प्रेम से वंचित हो जाती है। दूसरे उसके बच्चों के विवाह अवसरों पर जो भाईयों द्वारा सामग्री आती है वो बिल्कुल नहीं मिल सकती है। तीसरे पिता के ऋणी होने पर उसके भाग के अनुसार वह भी ऋणी रहेगी। जब तक वह उसे अदा न करेगी तब तक उससे कोई भी शादी नहीं करेगा। ऐसी अवस्था में क्या वो आजन्म अविवाहित रह सकेंगी ? ऐसा रहने पर पेट की समस्या को किस प्रकार हल कर सकेगी ? क्या इसे पापाचार का प्रसार न हो सकेगा ? क्या वो अपनी चंचल वृत्तियों का वेश्या का पथ अनुसरण करे बिना अन्त कर सकेगी ? इन सब बातों से लड़की को पैतृक सम्पत्ति का अधिकारिणी बनना उसके तथा समाज के लिए हानिकारक है।

दूसरी समस्या जो जनता को बेचैन किए है वो यह है कि विवाह होने के उपरान्त सम्बन्ध विच्छेद का होना। यदि ऐसा हुआ तो भारत वैसा ही बन जायेगा जैसा आज अमेरिका अन्य यवन प्रदेश है। साधारण सी बातों के लिए पुरुष का तथा उस स्त्री जाति का जो पुरुष की परछाई भी देखना पाप समझती थी न्यायालय में न्यायाधीश के सन्मुख उपस्थित होना हिन्दू समाज के लिए कलंक है। पारस्परिक कलह के

कारण एक वर्ग के मनुष्यों का दूसरे वर्ग के मनुष्यों के साथ झगड़ा होना आवश्यक सा हो गया है। जैसा कि मुगल साम्राज्य में होता आया है। इस प्रथा का सबसे भयंकर परिणाम यह होगा कि जब तक शरीर कोमलांगी और सौंदर्य की प्रतिमा है। तब तक तो पत्नि और पति में स्नेह रहेगा और उसकी कांति के लुप्त हो जाने पर दोनों एक दूसरे को त्याग सकेंगे। और वे लोग वृद्धावस्था में या रुग्णावस्था में दुख के भागी बनेंगे। और हिन्दू जाति में विवाह, विवाह न होकर व्यभिचार का एक अंश होगा।

उन दोषों के होते हुए इसमें कुछ लाभ भी हैं कि विवाह ऊपर लिखित बातों के पूर्ण होने पर होंगे तो आपसी त्याग की भावनायें किसी के हाथ में भी जन्म न ले सकेंगी। अल्प आयु में विवाह न होने से सन्तान हृष्ट पुष्ट उत्पन्न होगी। स्त्री पुरुष का परस्पर आदर होगा एक दूसरे के दुख-सुख के वे भागी बनेंगे। यही हमारी प्राचीन संस्कृति थी। इसका पुनः जन्म होना निरर्थक नहीं। ऐसी पद्धति पर विवाह होने के उपरान्त यदि कोई घटना ऐसी त्याग की हो जाये तो मानने योग्य नहीं—क्या हमारे पूर्वजों ने ऐसा नहीं किया? क्या रामचन्द्र जी ने एक प्रजा वर्ग के तनिक से कहने मात्र से अपनी धर्म पत्नी को वनों में भटकने के लिये असहाय अवस्था में नहीं छोड़ दिया? क्या महाभारत यह नहीं बताता कि हमारे पूर्वज एक स्त्री के होते हुए भी कितनी शादियाँ क्यों करते थे? जब प्राचीन ऐतिहासिक खोजें इस नियम को पहले से ही सम्बन्धित बताती हैं तो आप उसके मानने में इतनी रुकावटें क्यों? इसलिये कि अब इसके मनाने से स्त्री पतिव्रता न रह सकेंगी। समाज उन्नत न हो सकेगा। यह तो केवल कहना मात्र है वास्तव में हम इस विल को स्पष्ट इसलिये नहीं करना चाहते कि यह नारी जाति इतनी प्रबल न बन जाये जो हमारे अधिकारों को न मान सके। यह सर्वदा दबती आई है और उसी दूर में वह रहे यही हमारी कामना उसकी जाति के प्रति सर्वदा रही है।

यदि आज हम देश को उन्नत बनाना चाहते हैं और उससे सम्बन्धित महिला समाज को उसके आदेश के रूप में देखना चाहते हैं या उसे मान प्रदान करना चाहते हैं तो हमें चाहिये कि हम इस बिल को पूर्ण शक्ति से स्पष्ट करें ताकि यह स्त्री जाति मनुष्य मात्र के अत्याचारों से बचकर अपना कदम तथा देश की उन्नति की ओर बढ़ा सकें।

हिन्दू कोड बिल भारतीय अबलाओं के लिये सबलाओं का रूप लेकर आया है। (सम्पादक)

काश्मीर-समस्या

भारत विभाजन नीति के अन्तर्गत भारतीय रियासतों को अधिकार दिया गया था कि वे अपने भविष्य का निर्णय स्वयं करें। इससे कुछ रियासतें तो भारत में शामिल हो गईं और कुछ ने पाकिस्तान का पल्ला पकड़ा। काश्मीर अपनी विकट परिस्थिति के कारण अपनी उलझन को न सुलझा सका। क्योंकि जन-समाज का नेता शेखअब्दुल्ला तथा उसके साथी लगभग ३ वर्ष से कारागार में ठूंस दिये गये थे और महाराजा हरीसिंह प्रधानमन्त्री श्री रामचन्द्र 'काक' के बल पर तानाशाही चला रहे थे। मुस्लिम आबादी की अधिकता के कारण यह रियासत किसी में भी इतनी विलम्ब तक न मिल सकी थी।

पाकिस्तान का प्रथम कदम

पाकिस्तान इस देरी को सहन न कर सका और उसने आवश्यक वस्तुओं को न भेजकर अपनी क्रूरता का परिचय दे दिया। यहीं तक ही नहीं इसके साथ साथ ही सशस्त्र आक्रमण आरम्भ कर दिये। पाकिस्तानी कबाइली काश्मीर की राजधानी की ओर बढ़ने लगे। शत्रु को अपनी ओर बढ़ता देख काश्मीर महाराज ने शेख अब्दुल्ला और उसके साथियों को कारागार से रिहा कर दिया।

भारत का सहायता देने का फैसला

शेख अब्दुल्ला ने काश्मीर की समस्या को समझा और यह निश्चय

किया कि इसे कबाइलियों से बचाने के लिये भारत की सहायता की आवश्यकता है। अतः शेख अब्दुल्ला की अस्थायी सरकार ने तुरन्त ही भारत में सम्मिलित होने की घोषणा करदी और सशस्त्र सहायता की याचना की। भारत इस प्रस्ताव को ठुकरा न सका। भारत ने अपने सैनिकों को वायुयानों द्वारा काश्मीर सीमा पर भेजना आरम्भ कर दिया। भारतीय सेना ने हिम-जल को शीतल पवन से उत्पन्न होने वाले शीत की परवा न करके १९४८ के अन्त तक काश्मीर के अधिकांश भाग पर अपना अधिकार जमा लिया।

काश्मीर समस्या राष्ट्र संघ में

जब भारतीय सरकार की लिखित प्रार्थना पर भी पाकिस्तान ने ध्यान नहीं दिया तो विवश होकर इस समस्या को संयुक्तराष्ट्र संघ के सम्मुख रखा गया। संघ के अध्यक्ष ने दोनों पक्षों से वार्तालाप करने के उपरान्त यह घोषणा की कि भारत और पाकिस्तान ने शांति पूर्ण समझौता करने का निर्णय कर लिया है। काश्मीर में संयुक्त राष्ट्रीय कमीशन की स्थापना एक मत से हो गई।

कमीशन की नियुक्ति

संयुक्त राष्ट्रीय कमीशन में १ सदस्य भारत की ओर से, १ पाकिस्तान की ओर से १ भारत और पाकिस्तान दोनों की ओर से और दो सदस्य सुरक्षापरिषद की ओर से नियुक्त किये गये। भारत ने जेकोस्लोवेकिया, पाकिस्तान ने अर्जेंटाइन और सुरक्षापरिषद ने बेलजियम तथा कोलम्बिया को नाम बद कर दिया। परन्तु पांचवें सदस्य पर भारत और पाकिस्तानमें मतभेद रहा। अतः सुरक्षा परिषद ने संयुक्त राष्ट्र अमेरीका की नामजदगी रिक्त स्थान पर कर दी।

मुख्य बातें

१. भारत पाकिस्तान व कमीशन के सहयोग से जनमत संग्रह करना।

२. पाकिस्तान द्वारा युद्ध में गये हुए सैनिकों को वापस बुलाना और उन जैसे व्यक्तियों को अपनी सीमा से नहीं गुजरने देना। इसके साथ ही पाकिस्तान उनको किसी प्रकार भी सहायता न दे सकेगा।

३. कबाइली सैनिकों के काश्मीर सीमा छोड़ने के उपरान्त भारतीय सेना काश्मीर में कम करदी जाये। वहाँ केवल शांति के लिए उतनी ही सेना रक्खी जाये जितनी की आवश्यक हो।

४. जनमत संग्रह का काम 'जनमत संग्रह प्रशासक' द्वारा भारत और पाकिस्तान के पूर्ण सहयोग द्वारा करवाना।

संयुक्तराष्ट्र संघ का कार्य आरम्भ

८ जौलाई १९४८ को कमीशन करांची पहुँचा वहाँ पाकिस्तानी सरकार से बातचीत करने के उपरान्त १०.जौलाई को भारत में आया। १४ अगस्त को कमीशन ने यह सुझाव दिया कि भारत और पाकिस्तान को युद्ध विराम संधि कर लेनी चाहिये।

कमीशन निराशा में

भारत के प्रधान मन्त्री श्री जवाहर लाल नेहरू ने निम्न बातों को स्पष्ट करा कर युद्ध विराम प्रस्ताव पर हस्ताक्षर कर दिये।

१. तथाकथित स्वतन्त्र काश्मीर सरकार को मान्यता प्रदान करने का कोई इरादा नहीं किया जा रहा है।

२. काश्मीर में भारतीय सेनाएँ इतनी संख्या में रखी जायेगी जो कि 'बाहरी' आक्रमण तथा आन्तरिक गड़बड़ के लिए पर्याप्त हों .

३. प्रस्तावित जनमत संग्रह के कार्य में पाकिस्तान कोई भाग नहीं लेगा।

मुहम्मद ज़फ़रुल्लाखां ने कमीशन को यह स्पष्ट उत्तर दिया कि—स्वतन्त्र काश्मीर सरकार को किसी भी बात के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है।

युद्ध विराम की आज्ञा चालू तथा युद्ध विराम संधि की बात स्वीकार करने का अधिकार स्वतन्त्र काश्मीर सरकार को ही है।

स्वतन्त्र काश्मीर की सेनायें बहाल रहें और भारत की सेनाएँ पूर्णतः वापस हट जायें।

उपरोक्त शर्तों को सुलझाने में कमीशन को निराशा का घोखा पहनना पड़ा और वह वापस जेनेवा चला गया। और कमीशन ने यह रिपोर्ट पेश की कि पाकिस्तान ने विराम सन्धि को असम्भव बना दिया है।

संघर्ष समाप्ति की घोषणा

कमीशन के सदस्य डाक्टर अल्फर्ड लोजानो ने साहस न छोड़ा और उसके प्रयत्नों से दोनों सरकारों ने स्वेच्छा पूर्वक युद्ध विराम पर सहमति प्रदान की और ३१ दिसम्बर १६४८ तथा १ जनवरी ४६ को अर्धरात्रि को युद्ध विराम (समाप्ति) की घोषणा करदी गई। १२ मार्च को कराँची में स्थाई रेखा निश्चित करदी गई।

१७ मई १६४६ को शेख अब्दुल्ला ने काश्मीर को भारत में मिलने की घोषणा की। २० मई के भारतीय विधान ने एक संकल्प स्वीकार किया और चार सीटों की पूर्ति काश्मीर सदस्यों द्वारा पूरी करदी।

पंच की नियुक्ति

२१ मार्च को लेकसक्सेस से ५८मिरल चेस्टर निमिन्त्र को जनमत संग्रह प्रशासक की नियुक्ति की गई है। 'पंच का निर्णय दोनों सरकारों पर लागू होगा।' इस बात को पाकिस्तान की सहमति के उपरांत भी भारत न मान सका। इस प्रकार पंच स्थापित करने का प्रयास विफल हुआ।

मध्यस्थ की नियुक्ति

कमीशन की रिपोर्ट पर मेकनाटन ने आपसी ढंग पर भारत पाकिस्तान से बातचीत की परन्तु निराशा ही हाथ लगी। १० मार्च को सुरक्षा परिषद् ने ब्रिटेन, नारवे, अमेरीका तथा क्यूबा द्वारा संयुक्त संकल्प को स्वीकार किया और सर ओवन डिक्सन को मध्यस्थ नियुक्त कर दिया।

डिक्सन का प्रयत्न

२८ मई को डिक्सन ने आकर दोनों सरकारों के अधिकारियों से बातचीत की और स्थिति की जाँच के लिये काश्मीर का भ्रमण किया। उनके कितने ही सुझाव रखने पर भी दोनों सरकारें एक मत न हो सकीं। इस पर २० जौलाई को दोनों देशों के प्रधान मंत्रियों की बैठक बैठी—पर परिणाम व्यर्थ ही निकला। कितने ही प्रयासों के उपरान्त भी दोनों देश एक मत न हो सके।

डिक्सन का कथन था कि दोनों देश काश्मीर वैली को छोड़कर शेष क्षेत्रों को अपने २ देशों में सम्मिलित करलें और काश्मीर वैली में जनमत करलें। परन्तु इस फैसले को किसी ने भी न माना। इस पर जब उनके सारे प्रयत्न बिल्कुल असफल होगये तो २२ अगस्त १९५० को सर ओवन डिक्सन ने मध्यस्थता के प्रयासों में असफल रहने की घोषणा करदी।

१५ सितम्बर की डिक्सन की रिपोर्ट से स्पष्ट होगया कि पाकिस्तान ने अनधिकार चेष्टा की है और इस समस्या को ठीक ढंग से सुलझाने का प्रयत्न नहीं किया।

रिपोर्ट के पश्चात

जब संयुक्त राष्ट्र ने इस समस्या पर विचार करने में ढील आरम्भ करदी तो पाकिस्तान के प्रधान मंत्री श्री स्वर्गीय नवाब ज़ादा लियाकतअली ने इस समस्या को जनवरी में होने वाली कामन-वेल्थ कांफ्रेंस के सामने लाने का प्रयत्न किया था।

पर काश्मीर समस्या न सुलझ सकी। अब नाज़िमुद्दीन खां जो कि पाकिस्तान के नये प्रधान मंत्री नियुक्त हुए हैं शांति के साथ भारत के सहयोग से काश्मीर समस्या को सुलझाना चाहते हैं। इसलिये उन्होंने भारत के प्रधान मंत्री श्री नेहरू को निमन्त्रण दिया है। अब देखिये किस करवट ऊंट बैठता है। (सम्पादक)

कोरिया समस्या

कोरिया आज युद्ध की ज्वालाओं में धधक रहा है। यह समाम विश्व की दो महान शक्तियों के पारस्परिक संघर्ष का प्रतिबिंब है। जो अब शीत युद्ध से उष्ण युद्ध में परिवर्तित हो चुका है।

दूसरे महायुद्ध के समय मास्को के दूसरे सम्मेलन में मित्र राष्ट्रों ने कोरिया को स्वतन्त्र करने का निश्चय कर लिया था। परन्तु उसके सैनिक महत्व के कारण रूस और अमेरिका की उस पर कुदृष्टि बनी रही दोनों देशों ने मिलकर यह निश्चय किया कि ३८ अंश उत्तरी अक्षांश के उत्तर में तो रूसी सेना जापानी सेना का आत्म समर्पण स्वीकार करे और दक्षिण में अमेरीकी सेना। इस प्रकार को कोरिया रूसी अमेरीकन क्षेत्रों में विभक्त हो गया।

दोनों देशों के आपसी तनाव के कारण उत्तरी और दक्षिणी कोरिया में भी तनाव बढ़ गये। दिसम्बर १९४७ में संयुक्त राष्ट्र संघ ने ११ सदस्यों का एक कमीशन नियुक्त किया और उसे सम्पूर्ण कोरिया में आम चुनावों के संचालन का उत्तर दायित्व सौंपा गया। परन्तु रूस ने उक्त कमीशन से इस आधार पर सहयोग करने से इन्कार कर दिया कि उस में अधिकांश सदस्य अमेरिका के पक्ष के हैं, जिससे निष्पक्ष चुनावों की आशा करना व्यर्थ था। बाद में विवश होकर संयुक्त राष्ट्र संघ ने अमेरिका अधिकृत कोरिया में ही आम चुनाव कराने के लिये कमीशन को आदेश दिया और चुनावों के अनुसार वहां सिंगमेनरी के नेतृत्व में अमेरिका के पक्ष की ही सरकार बनी।

उधर रूस ने भी आम चुनाव कराकर अपने क्षेत्र में साम्यवादी सरकार स्थित कर दी, रूस ने अपने क्षेत्र में एक सुदृढ़ सरकार और सुशिक्षित सेना तैयार करके अपनी सेना को उत्तर कोरिया से दिसम्बर १९४८ में हटा लिया। ६ मास पश्चात् कोरिया भी जून १९४९ में अपनी सेना हटाने के लिये विवश हुआ।

रूस बराबर पर्दे के पीछे से एक ओर उत्तरी कोरिया की सरकार और सेना को अधिक से अधिक शक्तिशाली बनाता रहा तो दूसरी ओर दक्षिणी कोरिया में कम्युनिस्ट क्रांति के लिए अनुकूल भूमि तैयार करता रहा। उसने उत्तरी कोरिया समाजवादी अर्थ नीति के आधार पर आर्थिक विषमता को दूर करने तथा जनता के जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने का प्रयत्न किया। फलस्वरूप वहाँ की सरकार अधिक लोक प्रिय बन गई। उधर अमेरिका ने भी पानी की तरह डालर बहाना शुरू कर दिया"। अस्त्र शस्त्र की पर्याप्त संख्या में सहायता की गई किन्तु वहाँ की जनता के जीवन-स्तर पर इसका कोई प्रभाव नहीं।

अमेरिका के संकेत पर सिगमैनरी की सरकार ने स्थानीय कम्युनिस्टों पर दमनचक्र चलाया। कितनों को ही फाँसी के फूले में झुला दिया। बीसों को देश निकाला दे दिया। और सैकड़ों को कारागार में ठूस दिया। उधर उत्तर कोरिया के कम्युनिस्ट दक्षिणी कोरिया में आकर स्थानीय कम्युनिस्टों से मिल कर स्थान २ पर उत्पात और विद्रोह करने लगे। इधर रूस और अमेरिका दोनों हो अपने २ पोषित क्षेत्रों को धन और हथियार की सहायता द्वारा दृढ़तर बनाने लगे। परन्तु अमेरिका ने रूस की भाँति दक्षिणी कोरिया को यथेष्ट युद्ध सामग्री नहीं दी क्योंकि उसे भय था कि कहीं च्यांग की सेना की भाँति सिगमनरी की सेना गुप्त रूप से मिलकर उसके हथियारों को शत्रु के पास न पहुँचा दे।

कोरिया युद्ध होने के कुछ सप्ताह पूर्व परस्पर एक करने के सम्बन्ध में उत्तरी कोरिया की सरकार ने तीन राजदूत दक्षिणी कोरिया भेजे। जो लौट कर नहीं आये। सुना जाता है कि एक राजदूत को मार डाला गया और दो दक्षिणी सरकार से मिल गये। इस घटना की उत्तरी कोरिया में बड़ी प्रतिक्रिया हुई।

समय की परिस्थिति को देखकर उत्तरी कोरिया की सेना ने गत २५ जून को प्रातःकाल दक्षिणी कोरिया पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण के विषय में दो विरोधी मत हैं। अमेरिका गुट के देश उत्तरी

कोरिया को आक्रान्ता बतलाते हैं। और रूस के गुट के देश दक्षिणी कोरिया पर सीमावर्ती आक्रमण द्वारा पहल करने का दोष मढ़ते हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् ने उत्तरी कोरिया को आक्रान्ता घोषित करके उसे ३८ अंश उत्तरी अक्षांश के उत्तर में लौट जाने का आदेश दिया। पालन न करने पर २८ जून को सं० राष्ट्र संघ के समस्त देशों को दक्षिणी कोरिया को सक्रिय सहायता देने के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव स्वीकृत किया। संयुक्त राज्य अमेरीका ने उक्त प्रस्ताव के स्वीकृत होने के पूर्व ही दक्षिण कोरिया को प्रत्यक्ष सैनिक सहायता देना आरम्भ कर दिया था। इस प्रत्यक्ष सैनिक हस्तक्षेप को अमेरिका ने पुलिस कार्यवाही का नाम दिया है। बाद में संसार के लगभग ४४ राष्ट्रों ने दक्षिणी कोरिया को यथायोग्य सहायता देने का आश्वासन दिया और आज अमेरीका की जल, स्थल और नभ सेना कोरिया के रण क्षेत्र में उपस्थित है।

दक्षिण कोरिया की सेना शक्तिशाली न थी। अतः रणक्षेत्र में अमेरीकी सेना को ही लड़ना पड़ा, और उसे आशाके विपरीत बराबर हारना पड़ा। तमाम युद्ध का भार अमेरिका के कन्धों पर आगया, उत्तरी कोरिया विजय पर विजय करता हुआ आगे बढ़ा।

कोरिया के साथ-साथ फामूंसा और हिन्द चीन की रक्षा की अमेरीका ने जो घोषणा की है, उससे प्रतीत होता है कि वे अपने असली साम्राज्यवादी रूप में प्रकट हो गया है। उसे भय है कि यदि कोरिया, फामूसा तथा हिन्द चीन आदि देश उसके प्रभाव से निकल गये तो उसे समस्त एशिया तथा प्रशान्त द्वीपों से हाथ धोना पड़ेगा। अब इङ्गलैंड, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, टर्की, स्याम आदि ने भी स्थल सेना भेजनेका आश्वासन दिया है। यदि ऐसा हुआ तो अमेरिका उत्तरी कोरिया की भांति आक्रांता बन जायेगा।

आज विश्व के समक्ष यह ज्वलन्त प्रश्न है कि कोरिया का युद्ध स्थानीय ही रहेगा या विश्व व्यापी बनेगा ? रूस ने कोरिया के प्रश्न

मामलों में हस्तक्षेप न करने की घोषणा करके अभी तो तीसरे महायुद्ध को टाल दिया है। और यदि अमेरीकी सेना कोरिया पर अधिकार कर लेती है तो रूस अवश्य आगे बढ़ेगा। इससे रूस की नीति का पता लगता है कि वह 'साम्यवाद' का प्रसार पर्दे के पीछे से करना चाहता है। परन्तु अमेरीका रूस की इस नीति से अत्यन्त परेशान है। अतः वह रूस को शीघ्र से शीघ्र युद्ध में घसीटने के लिये आतुर हो रहा है। ऐसी अवस्था को देखकर ब्रिटिशमंत्री-मंडल ने भी संयुक्त राष्ट्रसंघ की प्रतिनिधि समिति के समक्ष निम्न बातों की एक योजना रखी!

१—एक संयुक्त और स्वतन्त्र कोरिया स्थापित किया जावे।

२—संयुक्त राष्ट्रसंघ की देख रेख में कोरिया में स्वतन्त्र चुनाव हो।

३ संयुक्त राष्ट्र संघ पर एक दृढ़ कमीशन कोरिया के युद्ध से शांति की ओर लाने का कार्य करे।

४ कोरिया की आर्थिक पुनः रचना के लिये संयुक्त राष्ट्र संघ उत्तरदायी रहे।

इनके अतिरिक्त अमेरिकन राजनैतिक केन्द्रों ने यह स्वीकार किया कि संयुक्त राष्ट्र संघ की सेनायें तभी तक कोरिया में रहें जब तक कि उसकी स्थापना न हो जाये। संयुक्त राष्ट्र संघ मन माने प्रस्तावों को पास करवा हुआ रूसी प्रस्तावों को अस्वीकृत कर रहा था। ऐसी अवस्था में चीन ने उत्तरी कोरिया को सहायता देने का पूर्ण निश्चय कर लिया। और अपनी सेनाओं को मंचूरिया में एकत्रित करने लगा। और घोषित कर दिया कि वह इन शर्तों पर कोरिया की सीमा से सेनाएं हटाने को तयार है अन्यथा तो वह उत्तरी कोरिया की ओर से युद्ध में प्रवेश करेगा।

१ कोरिया और मंचूरिया के सीमांत पर ऐसा प्रदेश बनाया जाये जिसका शासन उत्तरी कोरिया के संरक्षकों के हाथ में हो।

२ फार्मूसा से अमेरिका के सातवें बेड़े को हटा लिया जावे।

३ च्यांग-काई शेक की सरकार को अमेरिका अस्वीकार करदे।

४ स्पष्टता के साथ घोषित करदे कि अमेरिका च्यांग काई शेक की सरकार की किसी प्रकार की सहायता नहीं करेगा।

अमेरिका ने उपरोक्त शर्तों को मानने से इन्कार कर दिया। जिसके फलस्वरूप चीन की सेनाओं ने उत्तरी कोरिया में प्रवेश किया। और युद्ध के स्वरूप को अन्तर्राष्ट्रीय का रूप दे डाला। अमेरिका अपने गर्व में चूर रहा। उसे स्वप्न में भी आशा न थी कि अफीमची राष्ट्र चीन भी अमेरिका की नवीन युद्ध सामग्री में सामना कर सकेगा। उत्तरी कोरिया ने चीन की सहायता से पुनः ३८ अक्षांश को पार कर दक्षिणी कोरिया की राज धानी सिओल पर अधिकार कर लिया।

इस कोरिया युद्ध ने विश्व को संकट में डाल दिया है। अमेरिका अपनी पराजय को स्वीकार करना नहीं चाहता है। क्यों कि वह कम्यूनिस्ट शक्ति को पसंद नहीं करता। इससे तीसरा विश्व युद्ध होने की आशंका है इसको तो तभी रोका जा सकता है जब कि दोनों सेनाएं ३८ वीं अक्षांश से पीछे हट जावें। यदि ऐसा न हुआ तो तीसरा महा युद्ध होकर रहेगा।

(सुश्री विद्यावती जैन)

महात्मा गाँधी और भारतीय शिक्षा

महात्मा जी हमारे युग के निस्संदेह महानतम व्यक्ति थे। उनकी मृत्यु को दुर्घटना ने उन्हें और अधिक महान् बना दिया। वह शहीद की मौत मरे हैं, इसमें ज़रा भी शक नहीं है। उसका शरीर क़ातिल की गोलियों से घायल तो ज़रूर हुआ मगर हमको यकीन है कि उनकी आत्मा उस समय भी अपने क़ातिल के लिए प्रेम और क्षमा का भाव ही रखती रही। उन्होंने मरते-मरते भी अपने सिद्धान्त को साबित करके दिखा दिया। उनका शरीर आज जल कर भस्म हो गया पर हमें इसका शोक एक हद से बढ़कर नहीं करना चाहिए। हमारे काम तो

उनका सन्देश अनन्त काल तक अमर रहेगा। शरीर की कैद से रिहा होकर उनकी आत्मा सारे विश्व में छा गई है। उनकी ईश्वर-श्रद्धा देख कर बड़े-बड़े योगी भी आश्चर्य-चकित हो जाते थे, क्या ऐसे महान् पुरुष की आत्मा नष्ट हो सकती है? यह हमारी भूल है। हमको तो उनके जीवन के हर एक पहलू से सबक लेना है और अपने जीवन में उसी श्रद्धा-भाव से काम करना है, जिससे उनकी आत्मा को शान्ति मिल सके। भारत की सेवा जैसे उन्होंने निष्काम धर्म से सारी उम्र की, उसी मार्ग पर हमको चलना है। इसी में हमारा और भारत का कल्याण है। आज भी वह हमारे साथ हैं और सदा ही अमर रहेंगे और हमको समय-समय पर रास्ता दिखाते रहेंगे।

आज मैं महात्मा जी की भारत-सेवा के एक पहलू पर नज़र डालता हूँ। ऐसे अनेक पहलू हैं। मैंने भारतीय शिक्षा का प्रश्न उठाया है, इसलिए कि आज हमारे देश में स्वराज्य होने के कारण यह चर्चा फैली हुई है कि शिक्षा-विभाग में सुधार करना जल्दी से जल्दी आवश्यक है। महात्माजी का ध्यान इस ओर १९१९ से तो निस्सन्देह ही था, उससे पहले भी रहा ही होगा। हमको याद है कि १९१९ ई० में जब एक बड़ा जलसा बनारस में हिन्दू विश्वविद्यालय के उद्‌घाटन के समय हुआ था वहाँ उन्होंने एक ऐसी वक्तृता दी थी कि स्व० मालवीय जी महाराज, मिसेज़ बेसेन्ट, इत्यादि नेता सभी घबरा गये थे। राजा, महाराजा जो इकट्ठे थे उन्हें भी उलझन पड़ गई। शोर मचा, मगर महात्मा जी तो सत्य बोलने में कभी हिचकते नहीं थे। उन्होंने केवल इतना ही कहा था कि हमको विदेशी भाषा के द्वारा तालीम नहीं देनी चाहिए। जब तक हम कालिजों और यूनीवर्सिटियों में अंग्रेज़ी के द्वारा शिक्षा देते रहेंगे हमारी गुलामी की जड़ मज़बूत ही होती जायेगी। १९२१ के आन्दोलन में इसी सिद्धान्त को मानते हुए उन्होंने जब अहिंसात्मक असहयोग शुरू किया तो स्कूल और कालिज के विद्यार्थी भी इसमें शामिल हुए। मैं भी उस समय एफ० ए० क्लास में था,

व स्पष्टता के साथ घोषित करदे कि अमेरिका च्यांग काई शेक की सरकार की किसी प्रकार की सहायता नहीं करेगा।

अमेरिका ने उपरोक्त शर्तों को मानने से इन्कार कर दिया। जिसके फलस्वरूप चीन की सेनाओं ने उत्तरी कोरिया में प्रवेश किया। और युद्ध के स्वरूप को अन्तर्राष्ट्रीय का रूप दे डाला। अमेरिका अपने गर्व में चूर रहा। उसे स्वप्न में भी आशा न थी कि अफीमची राष्ट्र चीन भी अमेरिका की नवीन युद्ध सामग्री में सामना कर सकेगा। उत्तरी कोरिया ने चीन की सहायता से पुनः ३८ अक्षांश को पार कर दक्षिणी कोरिया की राज धानी सियोल पर अधिकार कर लिया।

इस कोरिया युद्ध ने विश्व को संकट में डाल दिया है। अमेरिका अपनी पराजय को स्वीकार करना नहीं चाहता है। क्यों कि वह कम्यूनिस्ट शक्ति को पसंद नहीं करता। इससे तीसरा विश्व युद्ध होने की आशंका है इसको तो तभी रोका जा सकता है जब कि दोनों सेनाएं ३८ वीं अक्षांश से पीछे हट जावें। यदि ऐसा न हुआ तो तीसरा महा युद्ध होकर रहेगा।

(सुश्री विद्यावती जैन)

महात्मा गांधी और भारतीय शिक्षा

महात्मा जी हमारे युग के निस्संदेह महानतम व्यक्ति थे। उनकी मृत्यु की दुर्घटना ने उन्हें और अधिक महान् बना दिया। वह शहीद की मौत मरे हैं, इसमें ज़रा भी शक नहीं है। उसका शरीर क़ातिल की गोलियों से घायल तो ज़रूर हुआ मगर हमको यक़ीन है कि उनकी आत्मा उस समय भी अपने क़ातिल के लिए प्रेम और क्षमा का भाव ही रखती रही। उन्होंने मरते-मरते भी अपने सिद्धान्त को साबित करके दिखा दिया। उनका शरीर आज जल कर भस्म हो गया पर हमें इसका शोक एक हद से बढ़कर नहीं करना चाहिए। हमारे पास तो

-उनका सन्देश अनन्त काल तक अमर रहेगा। शरीर की कैद से रिहा होकर उनकी आत्मा सारे विश्व में छा गई है। उनकी ईश्वर-श्रद्धा देख कर बड़े-बड़े योगी भी आश्चर्य-चकित हो जाते थे, क्या ऐसे महान् पुरुष की आत्मा नष्ट हो सकती है ? यह हमारी भूल है। हमको तो उनके जीवन के हर एक पहलू से सबक लेना है और अपने जीवन में उसी श्रद्धा-भाव से काम करना है, जिससे उनकी आत्मा को शान्ति मिल सके। भारत की सेवा जैसे उन्होंने निष्काम धर्म से सारी उम्र की, उसी मार्ग पर हमको चलना है। इसी में हमारा और भारत का कल्याण है। आज भी वह हमारे साथ हैं और सदा ही अमर रहेंगे और हमको समय-समय पर रास्ता दिखाते रहेंगे।

आज मैं महात्मा जी की भारत-सेवा के एक पहलू पर नज़र डालता हूँ। ऐसे अनेक पहलू हैं। मैंने भारतीय शिक्षा का प्रश्न उठाया है, इसलिए कि आज हमारे देश में स्वराज्य होने के कारण यह चर्चा फैली हुई है कि शिक्षा-विभाग में सुधार करना जल्दी से जल्दी आवश्यक है। महात्माजी का ध्यान इस ओर १९१९ से तो निस्सन्देह ही था, उससे पहले भी रहा ही होगा। हमको याद है कि १९१२ ई० में जब एक बड़ा जलसा बनारस में हिन्दू विश्वविद्यालय के उद्घाटन के समय हुआ था वहाँ उन्होंने एक ऐसी वक्तृता दी थी कि स्व० मालवीय जी महाराज, मिसेज़ बेसेन्ट, इत्यादि नेता सभी घबरा गये थे। राजा, महाराजा जो इकट्ठे थे उन्हें भी उलझन पड़ गई। शोर मचा, मगर महात्मा जी तो सत्य बोलने में कभी हिचकते नहीं थे। उन्होंने केवल इतना ही कहा था कि हमको विदेशी भाषा के द्वारा तालीम नहीं देनी चाहिए। जब तक हम कालिजों और यूनीवर्सिटियों में अंग्रेज़ी के द्वारा शिक्षा देते रहेंगे हमारी गुलामी की जड़ मज़बूत ही होती जायेगी। १९२१ के आन्दोलन में इसी सिद्धान्त को मानते हुए उन्होंने जब अहिंसात्मक असहयोग शुरू किया तो स्कूल और कालिज के विद्यार्थी भी इसमें शामिल हुए। मैं भी उस समय एफ० ए० क्लास में था,

मेरे ऊपर गांधीवाद के सिद्धान्तों का तभी से गहरा असर हो गया था। दो बातें तो मेरी समझ में आगईं—(१) उनका खादी का प्रचार, (२) सत्याग्रह और अहिंसा धर्म। मगर 'स्कूल, कालिज की पढ़ाई का त्याग' इसके अर्थ न समझ पाया ऐसा मालूम होता था कि इसमें कुछ महात्मा जी की भूल है, शायद कुछ इसमें गुस्सा, लड़ाई और तोड़-फोड़ शामिल है। मुझको यह बिलकुल विध्वंसात्मक दीखता था। छोटे-छोटे बच्चे स्कूल कालिज के बाहर आकर क्या करेंगे, सिवा इसके कि जो कुछ शिक्षा से लाभ हो रहा है वह भी हाथ से जायगा और सिवा देश में हलचल और अनियन्त्रण फैलने के कुछ भी नतीजा न होगा। यह शंका मेरे मन में बराबर रही। मेरे मित्र श्री बाल कृष्ण शर्मा जी ने तभी कालिज छोड़ दिया। वे बी० ए० क्लास में पढ़ते थे, मुझसे दो-एक साल आगे थे। उम्र में भी बड़े थे और हम लोगों के लीडर भी थे। मैंने बहुत चाहा कि मैं भी उनके साथ कालिज छोड़ दूँ। मगर कुछ समझ में नहीं आता था कि उसके बाद अपनी उन्नति किस प्रकार हो सकेगी? इस शंका का समाधान खुद ही १९२७-२८ ई० में हुआ जब कि मैं इङ्गलैंड गया, और वहाँ जाकर मुझको यह पता चला कि एक स्वतन्त्र मुल्क की शिक्षा और हमारी पढ़ाई में ज़मीन-आसमान का फ़र्क है। मुझको यह भी मालूम हुआ कि हम लोगों को अपना इतिहास ग़लत पढ़ाया गया है। अंग्रेज़ों के द्वारा पढ़ाई जाने वाली और अंग्रेज़ों की लिखी हुई किताबों ने हम लोगों को भारतीय इतिहास ऐसा उलटा पलटा सिखाया था कि हमारा दिमाग़ और दिल दोनों गुलामी के रंग में डूबे हुए थे। उस समय मुझको यह ज्ञात हुआ कि हमारी आत्मा को बड़े मज़बूत बन्धन में जकड़ दिया गया है और महात्मा जी का प्रोग्राम स्कूलों का बायकाट हमारी आत्मा के लिए मोक्ष प्राप्त करने की पहली सीढ़ी थी। उनका कहना था कि इस शिक्षा से तो निरक्षर रहना ही बेहतर है, और यह था भी बिलकुल सही। अंग्रेज़ी पढ़ने में हमको कितनी मेहनत करनी पड़ती है। फिर उस

भाषा के द्वारा सारे पाठ पढ़ने में हमारी बुद्धि पश्चिमी ढंग की हो जाती है, हम अनपढ़ लोगों को तुच्छ समझने लगते हैं, हम अपनी संस्कृति से बहुत ही दूर हो जाते हैं। यही वजह है कि आज भी जब कि भारत आज़ाद हो गया है हम अंग्रेज़ी पढ़े हुये लोग जनता से बहुत दूर हैं। उनके और हमारे बीच एक परदा पड़ा है, जिससे हम उनकी सेवा करने के क़ाबिल भी नहीं रहते। जहाँ-जहाँ बाहर के लोग राज करने गए उन्होंने गुलामी के फन्दे को मज़बूत करने के लिए विदेशी शिक्षा का जाल फैलाया। यही हमारी शिक्षा की पहली बेड़ी है, जिसे गाँधी जी जल्द से जल्द काटना चाहते थे। आज भी हम विश्व-विद्यालय के प्रोफ़ेसरों में यही विचार आते हैं—क्या हम हिन्दी के द्वारा दर्शन और विज्ञान, इतिहास और भूगोल पढ़ा सकेंगे? यह सवाल हमको क्यों परेशान कर रहा है? मुझे इसके पीछे यही गुलामी की भावना दिखती है। वर्धा-आयोजना के जितने भी आलोचक हैं वे भी यही कहते हैं कि अंग्रेज़ी को छोड़ कर हम दुनिया के प्रगतिशील और आधुनिक दृष्टिकोण से दूर हो जाएँगे, हमारी तालीम को धक्का लगेगा, हमारी शिक्षा के गुण और आदर्श हल्के हो जाएँगे। ग़रज़ तरह-तरह की शंकाएँ हमारे सामने आती हैं। मगर मेरा तो अब यह विश्वास है कि यह सब शंकाएँ हमारी भ्रष्ट हुई बुद्धि की मनगढ़न्त हैं। हमारा भीतरी मन गुलाम हो चुका है, हम अपनी आत्मा तक को अपने शासकों के हाथ बेच चुके हैं, फिर क्या करना चाहिए? हमको तो आगे बढ़ना ही है, टाल-मटोल से काम नहीं चलेगा। जल्द से जल्द हमको परिभाषा बनानी है, कुछ परवा नहीं अगर जल्दी में कुछ काम बिगड़ भी जाए। बुद्धि सम्बन्धी पैमाने के छोटे पड़ने का भी कुछ भय न होना चाहिए, क्योंकि हमको तो अपनी आत्मा को मुक्त करना है? अगर देश की आत्मा को गुलामी के सख्त फन्दों से एक बार छुड़ा लिया तो बुद्धि तो तेज़ हो ही जायेगी। जनता की शिक्षा एक मातृभाषा ही द्वारा हो सकती है, नहीं तो आज़ाद होने पर भी हम गुलाम ही बने रहेंगे। मैं

समझता हूँ कि गांधी जी की सब में बड़ी देन
है। वह बुद्धि से अधिक आत्मा पर ज़ोर देते
भाषण में उन्होंने कहा था, 'इन्सान केवल बुद्धि
न केवल हृदय, न केवल आत्मा, पूरा इन्सान
तीनों अंशों की ओर ध्यान देना है, सच्ची शिक्षा
इन्सान बना सके ' हमारी बुद्धि तेज़ नहीं हो
बिगड़ भी रही है. इस खराबी का सुधार करना

इस अवसर पर मैं महात्मा जी के शिक्षा-दर्श
कहना नहीं चाहता हूँ। किसी और समय उस प
मगर आज जब हम सब एक अंधेरी कोठरी में कम
को टटोल रहे हैं। और शिक्षा-क्षेत्र में प्रयोग भर क
चाहिए कि महात्मा जी के हर एक भाषण और बा
मोती समझ कर उनको अपनावें। यह कहना बड़ा पा
जी को शिक्षा सुधार में नहीं पड़ना था, वह तो महात्म
नेता थे या दार्शनिक थे, शिक्षा के विषय के अधिकारी
बातें हमारी गुलाम-बुद्धि को धोखा देने वाली बातें हैं।
हो जाता है कि हमारे बापू सब में बड़े व्यावहारिक रूप
थे, उनका सर्वप्रथम काम देश की देश की सेवा था—दे
देश में प्रकाश फैलाना, देश को शिक्षित बनाना। बस वह
शिक्षक थे और पीछे नेता। वह निरे राजनीतिज्ञ या शास
नहीं थे। वे पैग़म्बर या कल्पना क सहारे भविष्य को देखने
थे, पर केवल स्वप्न देखने वाले नहीं थे। उनके स्वप्न ऐसे
होने वाले थे और उनकी जीवन यात्रा में ही उनको यह सौभ
हो गया कि बहुत कुछ उनका स्वप्न सच्चा हो गया और उ
उसको सच्चा कर दिखाने में बहुत बड़ा हिस्सा लिया। यदि
पथ पर सच्चे मन से चलेंगे तो हमारी

है। भारत की आशा इसी पर निर्भर है कि कहां तक हम गांधी जी के रास्ते पर चलने को तैयार हैं।

'सत्याग्रह आत्मा की अपनी शक्ति है। वह प्रत्येक व्यक्ति में छिपी है।' ''सत्याग्रह सत्य की खोज है और सत्य ही ईश्वर है।'''अहिंसा वह प्रकाश है जो मुझे सत्य के दर्शन कराता है।' —महात्मा गांधी

खड़ी बोली का विकास

मुग़लों के अन्तिम काल में, आगरा, मेरठ, दिल्ली, मुरादाबाद के के आस-पास बोली जाने वाली 'बोली' का खासा प्रचार हो गया था। अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना के पश्चात इस बोली का प्रचार और भी बढ़ गया। अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना होजाने पर गद्य के लिए एक भाषा की आवश्यकता पड़ी और इस बोली को यह प्रतिष्ठा दी गई। यही भाषा खड़ी बोली के नाम से आज देश पर शासन कर रही है और भारत की राष्ट्र-भाषा मानी जा चुकी है। कुछ लोगों का विचार था कि यह भाषा जो लल्लू लाल ने 'लाल चन्द्रिका'' में लिखी है, नई घड़ी हुई भाषा है। डा० ग्रियरसन जैसे भाषा-तत्व-ज्ञानी ने भी इसको घड़न्त बताया, पर हम देखते हैं कि यह भाषा खड़ी बोली-अत्यन्त प्राचीन है। हाँ, पद्य में ब्रज भाषा को प्रतिष्ठा हो जाने से इसका अधिक विकास नहीं सका था।

प्रसिद्ध जैन विद्वान हेमचन्द सूरी ने अपने व्याकरण में अपभ्रंशों के जो उदाहरण दिये हैं, उनमें खड़ी बोली के रूप भी पाये जाते हैं। वैसे तो खड़ी बोली की अनेक विशेषताएं हैं, पर मोटे तौर पर इसकी आकारान्त की ओर प्रवृत्ति, इसे ब्रजभाषा से अलग करती है।

भल्ला हुआ जु मारिया बहिणि महारा कंतु।
लज्जे जन्तु वयंसि यहु जइ भग्गा घरु एंतु॥

ऊपर के उदाहरण में भला, हुआ,
शब्दों से खड़ी बोली का आभास मिलता
गये अनेक उदाहरण इनसे पहले के कवि
इनका समय बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से

हिन्दी की सर्व प्रथम पुस्तक 'बीसल दे
इसका रचना-काल १२१२ विक्रमी है। इस पु
से प्रभावित 'डिंगल' है, पर इसमें भी खड़ी
मिलते हैं।

'मोती की माला। किया। दी पाता जी
मन उचट्टया।' आदि उदाहरणों से खड़ी बोली
का पता चलता है। मराया, पहुँचा, पलाल्या,
प्रमाणित करते हैं कि खड़ी बोली भी किसी न कि
हो रही थी।

इसके पश्चात् अमीर खुसरो—१४वीं शताब्दी-
कल की खड़ी बोली के बहुत कुछ निकट है।

आदि कटै तो सबको पारै।
मध्य कटै तो सबको मारै।
अन्त कटै तो सबको मीठा।
कह खुसरो मैं आँखों दीठा।

खुसरो की कविता देखकर हम कल्पना कर सकते हैं
शताब्दी में खड़ी बोली कितनी विकसित हो रही थी।
पन्द्रहवीं शताब्दी में कबीर साहब आते हैं। इनकी कविता
बोली के पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं। 'काशी नागरी प्रचा
को कबीर साहब की एक हस्त-लिखित रचना प्राप्त हुई
समय १५६१ विक्रमी है।

नां कुछ किया नां करि सक्या, ना करने
जो कुछ

कबिरा सोइ सराहिये, लड़े धनी के हेत ।
पुर्जा पुर्जा होइ रहे, तउ नां छांडे खेत ।

कबीर साहब के बाद नानक, दादू आदि सन्त कवियों की वाणियों में खड़ी बोली पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है। भूषण ने भी 'शिवा-बावनी' में खड़ी बोली के प्रयोग किये हैं।

अब कहाँ पानी मुक्तों में पाती हैं।
खुदा की कसम खाई है।
अफ़ज़ल खान को जिन्होंने मैदान मारा।

संवत १८०२ के आस-पास के रघुनाथ, सूदन, ग्वाल आदि कवियों की कविता में भी खड़ी बोली के वास्तविक निर्माण का समय आता है। फ़ोर्ट विलियम कालेज के अध्यक्ष जान गिल क्राइस्ट साहब ने लल्लूलाल और सदल मिश्र से हिन्दी गद्य की पुस्तकें तैयार कराईं। लल्लूलाल ने 'प्रेमसागर' और सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' नामक पुस्तक लिखी। इस से पहले मुन्शी इन्शा-अल्ला खां 'रानी केतकी की कहानी' और सदासुखलाल 'सुखसागर' प्रस्तुत कर चुके थे।

'प्रेमसागर' की भाषा में खड़ी बोली की आकारान्त प्रवृत्ति ही पाई जाती है। इसकी भाषा मथुरा के आस-पास बोली जानेवाली कथा वाचकों की भाषा ही है। पूर्वकालिक क्रियाओं के रूप, संज्ञाओं के बहु-वचन, संकेतवाचक सर्वनाम आदि ब्रज भाषा के समान हैं। ब्रज भाषा जैसी ही मधुरता, लय और ध्वनि है। हाँ, प्रेमसागर की भाषा से खड़ी बोली को एक गद्य-काव्य की शैली अवश्य मिली है।

सदल मिश्र की भाषा पर बिहारी प्रभाव है। ब्रज भाषा से स्वतन्त्र है। और इसमें विदेशी शब्दों का इतना बहिष्कार नहीं किया गया, जितना लल्लू लाल ने किया है। सदल मिश्र की भाषा लल्लूलाल की अपेक्षा खड़ी बोली के निकट अधिक है और उन्होंने अपनी भाषा को 'खड़ी बोली' ही लिखा है।

सदासुखलाल की भाषा पण्डिताऊपूर्ण है । इसमें
उदारता पूर्वक कहीं-कहीं स्थान दिया गया है हिन्दी-गद्य
चारों लेखकों इन्शाअल्ला की भाषा सबल और, आनदार
कला पूर्ण है । इनकी भाषा में यौवन का उल्लास है, सजी
चंचलता है । क्रिया-पदों पर ब्रजभाषा की छाप अवश्य
इन्शा की भाषा में धरमाषा का-सा आनन्द मिलता है।

"कुछ दाल में काला है । यह बात मेरे पेट में नहीं पच
सिर मुँडाते ही ओले पड़े थे । अब मैं निगोड़ी लाज से छूट कर
इस बात पर पानी डाल दो ।"

ऊपर के उदाहरणों से प्रतीत होता है कि इन्शा इन चारों
में आधुनिक खड़ी बोली के गद्य को प्रतिष्ठा करने वालों में सर्वप्रथम

१८६० विक्रमी से १९१४ विक्रमी ग़दर के समय तक-गद्य का
खाली रहा और खड़ी बोली का विकास रुक-सा गया।

इसी समय के आस-पास ईसाई प्रचारकों ने अपने प्रचार के
खड़ी बोली में पुस्तकें प्रकाशित करानी प्रारम्भ कीं । १८६० विक्रमी
श्रीरामपुर में इन्होंने प्रेस स्थापित किया और १९०० में बाइबिल का
अनुवाद छपवाया । खड़ी बोली के गद्य के प्रचार में ईसाइयों की सेवाएँ
भी नहीं भुलाई जा सकतीं । इनकी भाषा में अरबी-फारसी के शब्दों का
बहिष्कार रहता था और संस्कृत के शब्द या बोल चाल के शब्द ही
अधिकतर होते थे । इनकी भाषा ऐसी रहती थी जिसके द्वारा इनके
धर्म का प्रचार हो सके । इन लोगों ने पाठ्य पुस्तकें भी तैयार कराईं।
भूगोल, इतिहास, रसायन आदि की पुस्तकें भी लिखी गईं । भारत में
बहुत से स्थानों पर इन्होंने प्रकाशन-कार्य किया।

जब देश निद्रा में ऊँघ रहा था ईसाई लोग अपने धर्म के प्रचार में
ज़ोरों से तत्पर थे, स्वामीदयानन्द का प्रादुर्भाव हुआ । स्वामी जी ने पुनः
वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा और रक्षा का आरम्भ किया । स्थान-स्थान पर
शास्त्रार्थ होने लगे । और हिन्दी में एक

स्वंग पूर्ण शैली का जन्म हुआ। स्वामी जी ने। अपने समस्त ग्रन्थ हिन्दी में लिखे और आर्यों को हिन्दी-आर्य-भाषा पढ़ाना अनिवार्य ठहराया। स्वामीजी की भाषा गम्भीर, संगठित और संस्कृत मयी है। आप की कृपा से पंजाब जैसे उर्दू के गढ़ में भी हिन्दी का प्रचार हो चला। धार्मिक क्षेत्र में पं० श्रद्धाराम फुल्लौरी का भी नाम लिया जा सकता है। आपने भी पंजाब में हिन्दी का बहुत प्रचार किया और कितनी ही पुस्तकें लिखीं।

काशी के राजा शिव-प्रशाद 'सितारे हिन्द' और पंजाब के नवीन-चन्द्रराय ने भी साहित्य क्षेत्र में प्रशंनीय कार्य किया। राजा साहब शिक्षा-विभाग में थे। इन्होंने बहुत सी पाठ्य पुस्तकें लिखीं और उनकी प्रतिष्ठा शिक्षा-विभाग में कराई। पर राजा साहब धीरे-धीरे नागरी लिपि में कोरी उर्दू लिखने लगे और हिन्दी-उर्दू के बीच पुल बनाने के प्रयत्न में स्वयं अपनी भाषा को ही उर्दू धारा में मिला दिया। भाषा के सिद्धान्तों पर भारतेन्दु से इनका संघर्ष हुआ और अन्त में भारतेन्दु जी की विजय हुई।

नवीन चन्द्र राय ने पंजाब में कार्य किया और कितनी ही पुस्तकें लिखी तथा लिखाईं। आप राजा साहब की भाषा के पक्षपाती नहीं थे। आपकी भाषा शुद्ध प्रौढ़ और गम्भीर थी। आपने न्याय-वेदान्त पर पुस्तकें लिखीं-लिखाईं।

सम्वत् १९१९ में राजा लक्ष्मणसिंह ने 'शकुन्तला' का अनुवाद प्रकाशित किया। इसकी भाषा में शुद्धता का पूरा-पूरा विचार रखा गया और विदेशी शब्दों का बहिष्कार-सा किया गया। फिर भी राजा साहब संस्कृत की तत्समता की ओर नहीं झुके हैं। भाषा में चलपन है और ब्रज भाषा का भी प्रभाव लक्षित होता है। यह पुस्तक इंग्लैण्ड में भी छपी और १९३२ में सिविल सरविस की पाठ्य-पुस्तकों में आगई।

अभी हिन्दी के किसी रूप की प्रतिष्ठा के प्रस्ताव हो ही रहे थे कि भारतेन्दु का उदय हुआ। वे हिन्दी-लेखकों के अगुआ बने और

१९२९ में 'कविवचन-सुधा' नामक पत्रिका प्रकाशित की। हरिश्चंद्र ने भाषा के सम्बन्ध में उठा हुआ विवाद शांत किया और भाषा के सम्बन्ध में कुछ सिद्धान्त स्थिर हो गये। भारतेन्दु की भाषा बहुत मधुर, सुरस, सगठित, विकसित और सरस है। आप अपनी भाषा पर विदेशी प्रभाव तनिक भी नहीं आने देते थे। सितारेहिन्द जी की भाषा के साथ चलने वाला अब कोई न रहा। आपने अपने नाटकों, निबन्धों और प्रहसनों से खड़ी बोली का बहुत प्रचार किया।

परन्तु अभी तक खड़ी बोली केवल गद्य की भाषा थी और पद्य रचना अभी तक ब्रजभाषा में होती थी। भारतेन्दु भी पद्योंको ब्रजभाषा में ही लिखते थे। गद्य-विकास के प्रारम्भिक काल में यही क्रम रहा। मध्यकाल के प्रारम्भ में यह बात खटकने लगी और सरस्वती के प्रकाशन होने तथा काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना के बाद, खड़ी बोली के लिए आंदोलन और भी ज़ोर पकड़ता गया। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जी ने खड़ी बोली का समर्थन किया और हिन्दी को कितने ही सुलेखक तथा उत्कृष्ट कवि प्रदान किये। दोनों के पक्षपातियों में बहुत समय तक वाद-विवाद चला, अन्त में खड़ी बोली की विजय हुई।

आज इसी खड़ी बोली की प्रसाद जैसे सर्वतोमुखी कलाकार प्रेमचन्द, जैनेन्द्र कुमार जैसे उच्च कोटि के उपन्यासकार और कहानी लेखक, मैथिली शरण, निराला, पन्त जैसे महाकवि और रामचन्द्र शुक्ल तथा पद्मसिंह शर्मा जैसे उत्तम समालोचक प्राप्त करने गई है। (सम्पादक

कवि सूर

यह जो सामने दीप जल रहा है—प्रकाश दे रहा है और साहित्य पथ को आलोकित कर रहा है तथा जिसके चारों ओर साधक बैठे उस साधना का वरदान मांग रहे हैं। हमारे पाठक जानते ही होंगे कि

दीप और किसीका नहीं। सूर का है और आलोक उसी भावना-काव्य का है। हाँ तो सूर कवि है न ? कवि ही नहीं—चतुर चितेरे भी। आइये आज कवि की दृष्टि से सूर से परिचय प्राप्त करें।

सूर वात्सल्य के चितेरे थे और वात्सल्य था सूर का चित्र। यदि सूर का पहला नाम वात्सल्य और वात्सल्य का दूसरा नाम सूर कहें तो अत्युक्ति न होगी।

अन्धे गायक सूरदास की झोपड़ी में चले आइये। यहाँ आपको *सूरदास द्वारा निर्मित चित्र मिलेंगे—अंधी आँखों से पानी बह रहा है* और तान पूरे पर गा रहे हैं:—

'अब हौं नाच्यौ बहुत गोपाल'

पहला चित्रः—

मैया मोरी कब बाढ़ेगी चोटी !
किती बार मोहि दूध पियत भई, यह अजहू है छोटी ॥
तू जो कहति बल की बेनी, ज्यौं ह्वै है लांबी मोटी।
काढ़त गुहत, न्हावत, ओछत, नागिन सी भुँइ लोटी ॥
काचो दूध पियवति पचि-पचि, देति न माखन रोटी।
सूर-स्याम' चिरजीवौ दोउ मैया, हरि हलधर की जोटी ॥

यशोदा को तुरन्त एक बात सूझ गई और वह कह उठीं:—

'कजरी को पय पियहु लाल तब चोटी बाढ़े।'

इसी लड़के का मन और बहलाया भी कैसे जाए ?

दूसरा चित्र भी कम आकर्षक नहीं है सूर की ममता और स्नेह का सागर उमड़ पड़ा है। इसमें करुणा का सारा जोर लगाया है यह चित्र। स्वभाविकता देखनी हो तो देखिए:—

मैया मोंहि दाऊ बहुत खिजायौ।
मौसों कहत मोल कौ लीनो, तोहि जसुमति कब जायौ ॥
कहा कहौं, या रिस के मारे, खेलन हौं नहीं जात।
पुनि-पुनि कहत कौन सुत माता, कौन तिहारो तात ॥

१८९९ में 'कविवचन-सुधा' नामक पत्रिका प्रकाशित की। हरिश्चन्द्र ने भाषा के सम्बन्ध में उठा हुआ विवाद शांत किया और भाषा के सम्बन्ध में कुछ सिद्धान्त स्थिर हो गये। भारतेन्दु की भाषा बहुत मधुर, सुस्त, सगठित, विकसित और सरल है। आप अपनी भाषा पर विदेशी प्रभाव तनिक भी नहीं आने देते थे। सितारेहिन्द जी की भाषा के साथ चलने वाला अब कोई न रहा। आपने अपने नाटकों, निबन्धों और प्रहसनों से खड़ी बोली का बहुत प्रचार किया।

परन्तु अभी तक खड़ी बोली केवल गद्य की भाषा थी और पद्य रचना अभी तक ब्रजभाषा में होती थी। भारतेन्दु भी पद्यों को ब्रजभाषा में ही लिखते थे। गद्य-विकास के प्रारम्भिक काल में यही क्रम रहा। मध्यकाल के प्रारम्भ में यह बात खटकने लगी और सरस्वती के प्रकाशन होने तथा काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना के बाद, खड़ी बोली के लिए आंदोलन और भी ज़ोर पकड़ता गया। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जी ने खड़ी बोली का समर्थन किया और हिन्दी को कितने ही सुलेखक तथा उत्कृष्ट कवि प्रदान किये। दोनों के पक्षा-लियों में बहुत समय तक वाद-विवाद चला, अन्त में खड़ी बोली की विजय हुई।

आज उसी खड़ी बोली को प्रसाद जैसे सर्वतोमुखी कलाकार, प्रेमचन्द, जैनेन्द्र कुमार जैसे उच्च कोटि के उपन्यासकार, और कहानी लेखक, मैथिली शरण, निराला, पन्त जैसे महाकवि और रामचन्द्र शुक्ल तथा पद्मसिंह शर्मा जैसे उत्तम समालोचक उत्पन्न करने का गर्व है। (सम्पादक)

कवि सूर

यह जो सामने दीप जल रहा है—प्रकाश दे रहा है और साहित्यिक पथ को आलोकित कर रहा है तथा जिसके चारों और साधक बैठे अपनी साधना का वरदान भोग रहे हैं। हमारे पाठक जानते ही होंगे कि वह

दीप और किसीका नहीं। सूर का है और आलोक उसी भावना-काव्य का है। हाँ तो सूर कवि है न? कवि ही नहीं—चतुर चितेरे भी। आइये आज कवि की दृष्टि से सूर से परिचय प्राप्त करें।

सूर वात्सल्य के चितेरे थे और वात्सल्य था सूर का चित्र। यदि सूर का पहला नाम वात्सल्य और वात्सल्य का दूसरा नाम सूर कहें तो अत्युक्ति न होगी।

अन्धे गायक सूरदास की झोपड़ी में चले आइये। यहाँ आपको सूरदास द्वारा निर्मित चित्र मिलेंगे—अंधी आँखों से पानी बह रहा है और ताम्बूरे पर गा रहे हैं:—

'अब हों नाच्यौ बहुत गोपाल'

पहला चित्रः—

मैया मोरी कब बाढ़ेगी चोटी!
किती बार मोहि दूध पियत भई, यह अजहू है छोटी॥
तू जो कहति बल की बेनी, ज्यों ह्वै है लांबी मोटी।
काढ़त गुहत, न्हावत, ओछत, नागिन सी भुँइ लोटी॥
काचो दूध पियावति पचि-पचि, देति न माखन रोटी।
सूर-स्याम' चिरजीवौ दोउ भैया, हरि हलधर की जोटी॥

यशोदा को तुरन्त एक बात सूझ गई और वह कह उठीं:—

'कजरी को पय पियहु लाल तब चोटी बाढ़े।'

हठी लड़के का मन और बहलाया भी कैसे जाए?

दूसरा चित्र भी कम आकर्षक नहीं है सूर की ममता और स्नेह का सागर उमड़ पड़ा है। इसमें कल्पना का सारा ज़ोर लगाया है यह चित्र। स्वभाविकता देखनी हो तो देखिए:—

मैया मोंहि दाऊ बहुत खिजायो।
मोसों कहत मोल को लीनो, तोहि जसुमति कब जायो॥
कहा कहौं, या रिस के मारे, खेलन हौं नहीं जात।
पुनि-पुनि कहत कौन सुत माता, कौन तिहारो तात॥

गोरे नन्द, जसोदा गोरी, तुम कत स्याम शरीर।
चुटकी दै-दै हँसत ग्वाल सब, सिखै देत बलबीर॥
तू मोहि को मारन सीखी, दाउहि कबहु न खीझै।
मोहन को मुख रिस समेत लखि, जसुमति अति मन रीझै॥

यह है सूर की भावना का रंग, जो युग युगों तक धूमिल नहीं हो सकता—पुराना नहीं पड़ सकता, सदा नवीन रहेगा''''''''''।

और तभी हमारी दृष्टि वात्सल्य के तीसरे चित्र पर पड़ी। चित्र का शीर्षक था—'कन्हैया'।

जा दिन तें हम तुम तें बिछुरे काहु न कह्यो कन्हैया।
कबहूँ प्रात न कियो कलेवा, साँझ न पीन्हीं धैया॥

सचमुच इन दो पंक्तियों में कवि ने हृदय को निकाल कर रख दिया है। कितनी पीड़ा और कितनी कसक है। यहां आकर हम राजा हो गये—महाराजा बन गये सब अधिकार मिल गया तो ममता खो गई। किसी ने तेरे जैसे स्नेह से 'कन्हैया' तो नहीं कहा।

यह है सूर के चित्रों की हृदय-ग्राहिकता। जो सीधे हृदय में जाकर घर कर लेते हैं, छोड़ने का नाम नहीं लेते, भूलने का नाम नहीं लेते। जिनमें दर्द और कसक है, पीड़ा और अनुभूति है। हाँ इसीलिए तो सूर कवि है'''साहित्य गगन के 'सूर' है। सबसे प्रथम कवि उसके बाद भक्त और उसके बाद कुछ और।

चौथा चित्र बड़ा मार्मिक है। माँ की ममता उमड़ आई है शब्दों में। अरे पथिक तुम जा तो रहे हो, जरा सा हमारा भी काम करते जाना। वह जो देवकी महारानी हैं—जहां हमारे लाल (कृष्ण) गये हुए हैं। उनसे केवल मुझ दुखियारी की इतनी विनती कह देना:—

संदेसो देवकी सों कहियो।
हौं तो धाय तिहारे सुत की, दया करत नित रहियो॥
तुम तो टेव जानतिहि ह्वै हो, तऊ मोहि कहि आवै।
प्रातहि उठत तुम्हारे कान्हहि माखन रोटी भावै॥

तेल उबटनो अरु तातो जल देखे ही भजि जाते।
जोई-जोई माँगत सोई-सोई देती, क्रम क्रम करि-करिन्हाते॥
'सूर' पथिक! सुनि मोहि रैनि-दिन बढ़ो रहतु जिय सोच।
मेरे अलक लड़ै तो लालन ह्वै है करत संकोच॥

और सचमुच यशोदा के नेत्र छलछला उठते हैं और उसके साथ ही सूर के तान परे की ध्वनि लुप्त हो जाती है, केवल शून्य में गूंजती रहती है विफलता······।

हौं तो धाय तिहारे सुत की·········।

यह है सूर के चार चित्रों की झांकियाँ। अब आप ही समझ जाइये। साहित्य और कला, जीवन और सौन्दर्य सबका मिलन ही हो गया है सूर के इन चित्रों में।

सूर कवि हैं-क्या अब भी इसमें सन्देह है, दुविधा है।

सूर का काव्य-क्षेत्र अधिक विस्तृत नहीं था। उन्होंने तो वात्सल्य और शृंगार दो ही रसों को चुना। 'भ्रमर-गीत' शृंगार की अमिट झाँकी है तो 'सूर सागर' में सवा लाख पद हैं। जिनमें से किसी को ही उठाकर देख लीजिये। कोई सा भी साहित्य की प्रदर्शिनी में प्रथम पुरस्कार लिए बिना नहीं रह सकता······कमाल कर दिया है सूर ने।

इसी कारण तो सूर को छोड़कर वात्सल्य की और उक्तियाँ सूर की झूठी सी जान पड़ती हैं। किसी ने सत्य कहा है:—

'तत्व तत्व सूरा कही।'

सूर ने वास्तव में वात्सल्य के वर्णन में कमाल कर दिया है······

उस दिन एक साहित्यिक समारोह हो रहा था, सूर के पदों का पाठ चल रहा था और तभी कोई व्यक्ति बेहाल दिखाई दिया···सिर धुन रहा था—आलोचकों ने पूछा:—

किधौं सूर को सर लग्यौ किधौं सूर की पीर।
किधौं सूर को पद लग्यौ, तन मन धुनत शरीर॥

क्या तुम्हें किसी बीर का बाण लग गया है? उसने बेबसी से

कहा—'नहीं', तो क्या किसी वीर की पीड़ा का अनुभव हो गया है ? तड़फने वाले ने कहा नहीं। तब प्रश्नकर्ता ने पूछा—क्या तुम्हें सूरदास का पद लग गया है, जो तुम अपने शरीर को धुन रहे हो। इस पर उस व्यक्ति ने 'हाँ' कर दी।

तो देखिये यह है सूर के काव्य की विशेषता यह है उनका चमत्कार, और इसे कहते हैं सच्ची लगन या अनुभूति। इसीलिये तो यह मानना ही पड़ेगा कि सूर ने जो चित्र उतारे हैं वह कलापूर्ण तो हैं ही साथ ही साथ उनमें अलंकारों का भी अभाव नहीं है···छन्दों की भी कमी नहीं है। वैसे इनकी कवितायें—गीताकाव्य के सफल चित्र हैं। हृदय से निकली हुई स्वच्छ झाँकियाँ हैं।

अब ज़रा भक्ति के सूर को भी देखियेः—

चरण कमल बन्दौं हरि राई !

जाकी कृपा पंगु गिरि लाँघे, अन्धे कु सबकुछ दरसाई।
बहिरो सुने मूक पुनि बोले, रंक चले सिर छत्र धराई।
सूरदास स्वामी करुणामय, बार बार बन्दौं तेहि पाई॥

धन्य सूरदास धन्य—तुम सचमुच कवि के साथ-साथ भक्त भी हो! जो आलोचक सूर को कवि की कोटि से हटा कर भक्त की श्रेणी में रखते हैं—वह सूर के साथ अन्याय करते हैं।

सूर तो सच्चे अर्थों में कवि थे—कवि ही नहीं वात्सल्य के तो महाकवि थे। (सुश्री निर्मला माथुर)

उपन्यास क्या है ?

उपन्यास क्या है ? इस विषय पर अनेक मत हैं—कोई जीवन की गहराइयों के चित्रण को ही उपन्यास कह देता है, कोई कहानी के दीर्घकाय को ही उपन्यास समझ बैठता है। हो सकता है कि ये परिभाषायें उपयुक्त हों। क्योंकि मानव बाल्यकाल से ही रस प्रिय रहा है और उसकी प्रवृत्ति गाथाओं के सुनने में अनादिकाल से ही लीन रही

है ? कथा कौतूहलता से मानवता तृप्त हो जाती है। इसी कहानी का विकास और विस्तार रूप बदलते उपन्यासों में परिणित होता गया। इस प्रकार से कहानी माँ और उपन्यास उसकी सन्तान है।

उपन्यास का लक्षण स्थिर करना कठिन है। अंग्रेजी में 'नावेल' 'उपन्यास' कहलाता है। इसका अर्थ है 'नवीन'। उपन्यास शब्द नवीन नहीं है। संस्कृत साहित्य में इस शब्द की भरमार है। उपन्यास का वास्तविक अर्थ है 'सामने रखना'। नाटक और इतिहास की अपेक्षा सुव्यवस्थित रूप से उपन्यास मानव जीवन के पूर्ण चित्र को समाज के सामने उपस्थित कर देता है।

हिन्दी के विख्यात विद्वान डा० श्यामसुन्दरदास जी ने उपन्यास का लक्षण इस प्रकार किया है—"उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है।" उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द जी 'मानव चरित्र के चित्र को उपन्यास' कहते हैं। उनकी राय में मानव चरित्र पर प्रकाश डालना तथा उसके रहस्यों को खोलना उपन्यास का मूल तत्व है। अंग्रेजी की 'न्यू इंग्लिश डिक्शनरी' में ऐसी काल्पनिक कथा को उपन्यास बताया गया है जिसमें वास्तविक जीवन के प्रतिनिधि पात्रों और कार्यों का चित्रण किया गया है। श्री गुलाबराय एम० ए० के शब्दों में उपन्यास का कार्य कारण शृंखला में बंधा हुआ वह गद्य कथानक है, जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ वास्तविक या काल्पनिक घटनाओं के द्वारा मानव जीवन के सत्य के रसात्मक रूप से उद्घाटन किया जाता है।" उपन्यासकारों के भी निम्न दो वर्ग हैं।

१. आदर्शवादी वर्ग   २. यथार्थवादी वर्ग।

ये दोनों वर्ग अपने अपने स्थान पर ठीक हैं। परन्तु उपन्यास किसी एक वर्ग के आधीन रह कर श्रेष्ठ नहीं कहला सकता है। उपन्यास तो वही उच्च कोटि का कहला सकता है जिसमें यथार्थ और आदर्श दोनों का ही समावेश होता है। आदर्श में जान डालने के ही लिये

है। इसका मतलब यह नहीं है कि इसमें कल्पना को स्थान नहीं दिया जाता है। उपान्यासकार अपनी कल्पना के आधार पर इसमें रोचकता पैदा करने के लिये कथा में उलट फेर भी कर सकता है। परन्तु वह उलट फेर काल और प्रधान घटनाओं के स्थान पर नहीं हो सकता है। ऐसे उपन्यासों में श्री वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों का स्थान उल्लेखनीय है।

चरित्र चित्रण की प्रधानता उपन्यास में मुख्य है। अतः जीवन की जितनी सुन्दर विवेचना इसमें हो सकती है उतनी अन्य किसी साहित्यिक रचना में नहीं। अतः उपन्यासों का साहित्य में विशेष महत्व है।

(सम्पादक)

हिन्दी कहानी—एक सर्वाङ्गीण अध्ययन

आज के साहित्य पर एक विहंगम दृष्टिपात करने से हमें यह ज्ञात होता है कि आज का साहित्य कथा कहानियों से पूर्ण है और यह कहने में भी अतिशयोक्ति न होगी कि साहित्य जगत में आज कल कहानियों की बाढ़ सी आई हुई है। कहानियों के इस बाहुल्य का स्पष्ट कारण है, समयाभाव या दूसरे शब्दों में हमारी व्यस्तता। आज का युग इतना व्यस्त है कि लम्बे उपन्यास या लम्बी कहानियाँ पढ़ने का समय एक साधारण पाठक को नहीं मिलता। प्रत्येक पत्र-पत्रिका में एक न एक कहानी अवश्य होती है और सबसे बड़ी बात तो यह है कि आज कल पत्रकाओं में प्रकाशित होने वाले "क्रमशः" उपन्यास ही अधिक पसन्द किये जाते हैं। छोटी कहानियों की ओर पाठकों के झुकाव का कारण किसी हद तक मनोवैज्ञानिक और प्राकृतिक है। लगातार काम करते रहने के बाद मनुष्य में यह स्वाभाविक इच्छा होती है कि वह मनोरंजन प्राप्त करे। मनोरंजन इसलिए कि अनवरत कार्य का श्रम-भार किसी सीमा तक कम हो जाये और वह कुछ शांति और संतोष का अनुभव

कर सके, और जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि हमारे पास समय कम है, हमारी यही धारणा रहती है कि हम कम से कम समय में अधिक से अधिक मनोरंजन प्राप्त करें और कहना न होगा कि केवल एक मात्र कहानियाँ ही मनोरंजन का ऐसा साधन प्रदान कर सकती है। रात-रात भर खेले जाने वाले नाटकों, थियेटरों, नौटंकियों आदि की अपेक्षा दो ढाई घन्टों में समाप्त हो जाने वाले सिनेमा ही आजकल अधिक पसन्द किये जाते हैं।

फिर यह बात भी नहीं है कि कहानियां केवल इसी युग की या पिछले सौ दो सौ वर्षों की ही देन है। कहानियों का इतिहास इतना ही पुराना है जितना आज का धर्म और संस्कृतियाँ। संस्कृत के आदि ग्रन्थों में हमें असंख्य कहानियाँ मिलती हैं। ये कहानियाँ अधिकतर धार्मिक उपदेशों का समर्थन, प्रति-पादन तथा प्रचार करने के उद्देश्य से ही लिखी गई थीं। ईसाइयों, यहूदियों और अन्य धर्मावलम्बियों के आदि ग्रन्थों में कहानियाँ प्रचुर-मात्र में उपलब्ध हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि आदि काल से ही कहानियाँ चली आरही हैं। कहानियों की आयु के बारे में हम कह सकते हैं कि कहानियों की आयु हमारी नानियों, दादियों, परदादियों आदि की आयु से भी सहस्त्र गुना अधिक है, क्यों कि जो कहानी हमें हमारी दादी ने सुनाई, वह उसने अपनी नानी से सुनी थी और उसकी नानी ने अपनी परदादी से और उसकी परदादी ने अपनी दादी से और इसी प्रकार कहानियों का यह क्रम अनवरत काल से अनन्त काल से चला आ रहा है।

कहानियों के इस ऐतिहासिक रूप को देखते हुए हम उन्हें कहानियाँ न कह कर 'आख्यायिका' कह सकते हैं। इन आख्यायिकाओं के भी दो भाग किये जा सकते हैं। एक तो राजा रानी की तथा ऐसी ही कहानियाँ और दूसरी पशु पक्षियों की कथायें। महा कवि बाण भट्ट की 'कादम्बरी' प्रथम श्रेणी की आख्यायिकाओं में रखी जा सकती है और हितोपदेश की कहानियाँ दूसरी श्रेणी की आख्यायिकाओं में।

इन अख्यायिकाओं में किसी भी नियम का पालन नहीं किया जाता था और न ही उनका कोई निश्चित स्वरूप होता था। ये कहानियाँ केवल एक उद्देश्य को लेकर चलती थीं और वह उद्देश्य था मनोरंजन या शिक्षा।

किन्तु आधुनिक युग में कहानियों का रूप ही पूर्णतः बदल चुका है। अनेक नियमों के अन्तर्गत ही कोई कहानी लिखी जाती है। इन नियमों को 'कहानी के अंगों' के नाम से पुकारा जाता है। यहां पर संक्षेप में इन्हीं अंगों पर विचार किया जाना अनुपयुक्त न होगा।

कहानी के ६ अङ्ग माने जाते हैं। (१) कथावस्तु (२) पात्र, (३) कथोपकथन, (४) चरित्र-चित्रण, (५) उद्देश्य, (६) भाषा, (७) भाव, (८) शैली।

कहानी में किसी का पूर्ण जीवन कथा वस्तु के रूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता, अपितु पूर्ण जीवन का एक भाग ही कहानी के अन्तर्गत हमारे सम्मुख प्रस्फुटित होता है। कथा - वस्तु में तार-तम्य और गठन आवश्यक है। जहाँ तक पात्रों का प्रश्न है—कहानी के पात्र संख्या में कम से कम और अधिक से अधिक स्थायी और प्रभावोत्पादक होने चाहिये यद्यपि वर्तमान युग की लघु गाथाओं में पात्रों के स्थायित्व और उनके प्रभावोत्पादन को गौण रूप किया जाता है किन्तु फिर भी सारे पात्रों में उन्हें एक या दो पात्र स्थायी और प्रभावोत्पादक रखने पड़ते हैं जिनके इर्द गिर्द कहानी घूमती है। अपने पात्रों में सजीवता लाने के लिये और कहानी को मार्मिक बनाने के लिये लेखक को कथोपकथन का आश्रय लेना पड़ता है। अच्छी कहानी वही मानी जाती है जो वर्णन की अपेक्षा कथोपकथन का आश्रय लेकर आगे बढ़ती है। चरित्र-चित्रण तो कहानी की जान ही होता है। अपने पात्र को पूर्णतया उभार कर सामने रख देना ही सफल कहानी लेखक की कसौटी है। सबसे अधिक ध्यान कहानी लेखक को कहानी का उद्देश्य स्पष्ट करने की ओर रखना चाहिये। भाषा, भाव और शैली तीनों ही

लेखक के व्यक्तित्व का प्रदर्शन करते हैं। उसके अन्तर्निहित गुणों को प्रस्फुटित करते हैं और कहानी को सुरुचिपूर्ण और प्रभावोत्पादक बनाते हैं। भाषा ऐसी होनी चाहिये जो सर्व ग्राह्य हो और जिसे समझने के लिये शब्दकोष या निर्देशक की आवश्यकता न पड़े। भाव विशुद्ध स्पष्ट यानि Clearcut होने चाहियें, और साथ ही ऐसे हों जो पाठकों को थोड़ा सा सोचने का मसाला दें। शैली कैसी भी हो किन्तु उसमें प्रवाह होना चाहिए। ऐसा प्रवाह जो पाठक की चित्तवृत्ति को इधर-उधर भटकने का एक भी अवसर न दे और उसे पूर्ण रूप से कहानी में ही मग्न कर दे।

बंगला साहित्य से परिचय होने से पूर्व हिन्दी साहित्य में मौलिक कहानियों का सर्वथा अभाव था। हिन्दी की पहली मौलिक कहानी श्री बद्रीनारायण चौधरी ने लिखी थी। उनकी कहानी 'इन्दुमती' ने साहित्य के सम्मुख एक नया मार्ग खोल दिया और इसके बाद तो, कहना न होगा कि हिन्दी में मौलिक कहानियों की भरमार होगई।

हिन्दी कहानियों पर पड़े पाश्चात्य प्रभाव से भी हम अनभिज्ञ नहीं रह सकते। पश्चिमी कहानियों ने हमारी शैली, भाव व्यंजना, प्रवाह, भाषा सभी कुछ पर प्रभाव डाला। गोर्की, पैरो, एच० जी० वेल्स, हार्डी, चेखोव आदि पश्चिमी कहानी-कारों का प्रभाव हम स्पष्ट देखते हैं और इससे इन्कार भी नहीं कर सकते।

इस प्रकार बंगला और पश्चिमी कहानियों के सम्पर्क में आकर हमारे कथा-साहित्य ने पर्याप्त उन्नति की।

हिन्दी में लिखी जाने वाली कहानियों को हम निम्न कोटियों में रख सकते हैं।

(विभाजन—चक्र पृष्ठ ११३ पर देखें)

यदि कहानियों के इन विभिन्न रूपों पर प्रकाश डाला जाय तो ग्रंथ का कलेवर बहुत बड़ा हो जायेगा, किन्तु फिर भी काम की ...ों की भावनाओं के बारे में कुछ कहना अनुपयुक्त न होगा।

विभाजन—चक्र
कहानी
घटना प्रधान
भाव प्रधान
मार्मिक
शैली प्रधान
ऐतिहासिक
सामाजिक
राजनैतिक
शिक्षाप्रद
नौवैज्ञानिक
प्रणयपूर्ण
(Love Stories)
भावात्मक
संघर्षमय
दुःखान्त
सुखान्त
कथा
आत्मकथा
संस्मरण
डायरी
पत्र

कुछ कहानियाँ आजकल ऐसी होती हैं, जो किसी घटना से प्रारम्भ की जाती हैं और वार्तालाप के द्वारा बड़ी तेजी से मनोभाव के प्रकाशन में ही समाप्त हो जाती हैं। कुछ कहानियों में हमें मिलता है घटनाओं का विशद-चित्रण और अन्त में किसी मानसिक स्थिति का प्रगटीकरण। ऐसी कहानियाँ मनोवैज्ञानिक कहानियाँ भी कही जा सकती हैं कुछ कहानियाँ इन दोनों के बीच की श्रेणी पर लिखी गई हैं। इनमें घटनाओं, वार्तालापों और मानसिक उद्वेगों का एक साथ चित्रण हमें देखने को मिलता है।

प्राय: ऐसी कहानियां भी देखने को मिलती हैं। जिनमें गूढ़ व्यंजना और कल्पना का अपूर्व समन्वय पाया है। दूसरी ओर प्रतीक के आधार पर लाक्षणिक कहानियाँ भी लिखी जाती रही हैं। उग्रजी की 'भुनगा' कहानी ऐसी ही लाक्षणिक कहानियों में से एक है।

हिन्दी कहानियों ने जो प्रगति, उन्नति और विकास वर्तमान शताब्दि के तृतीय दशाब्द तक किया, उसकी गति आगामी दशाब्दों में मन्द पड़ गई। केवल पिछले ही जीवित कलाकारों के अतिरिक्त पिछले बीस वर्षों में एक भी कहानीकार ऐसा उत्पन्न नहीं हुआ जिसे हम पिछले बीस वर्षों का प्रतिनिधि कहानी-कार कह सकें। क्या अब राष्ट्र भाषा घोषित हो जाने के बाद भी हिन्दी का यह कलंक शीघ्र ही न धुलेगा ?

(श्री कुमार 'नीरस')

हिन्दी साहित्य का इतिहास और उसका काल विभाजन।

मानव जाति के जीवन की व्याख्या को ही साहित्य की उपाधि दी जाती है। मानव जाति के मनोवेग परिस्थिति वश परिवर्तित होते-रहते हैं। इन्हीं परिस्थितियों के अनुसार साहित्य भी अपना चोला बदल डालता है। इसका इतिहास लगभग १००० वर्ष पूर्व का है। इसी युग के मध्य में जीवन के मनोवेगों में अगणित परिवर्तन आये हैं।

परिस्थितियों के अनुसार अध्ययन करके पं० रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास को निम्न चार भागों में विभक्त किया है :—

१—वीर गाथा काल (आदि काल) सं० १०५० से १३७५ तक,
२—भक्ति काल (पूर्व मध्य काल) सं० १३७५ से १७०० तक,
३—रीति काल (उत्तर मध्य काल) सं० १७०० से १६०० तक,
४—आधुनिक काल (गद्य काल) सं० १६०० से अब तक।

शुक्ल जी ने कालों का आधारभूत नियम ऐसी पद्धति पर निर्धारित किया है। इनमें काव्य प्रकारों एवं काव्यांगों का एक रस निरूपण है। इन्होंने मनोवैज्ञानिक आधार पर विकसित एक ही काव्य प्रणेताओं का मूल भूत स्रोत एक ही काल में रखा है। युग की शुभाकांक्षाओं को लेकर जो काव्य प्रेरणा विकसित हुई, उसकी सरस धारा को कालों में विभाजित किया गया है।

इन कालों के प्रारम्भ से पूर्व अपभ्रंश का युग था। बौद्ध राष्ट्र के विनष्ट हो जाने पर भांति भांति के मतांतरों एवं जैन बौद्ध इत्यादि आचार्यों की इन्द्रिय लोलुपता का साहित्य बिखरा सा पड़ा था। युग के परिवर्तन ने साहित्य को भी परिवर्तित कर डाला है। उस समय में जैनाचार्य मेरुतुङ्ग, शारंगधर, कण्हपा, विद्यापति, देवसेन जैन इत्यादि कवियों की रचनाएँ अमर हैं। हेमचन्द्र जी उस समय के सब लेखकों में विद्वान् थे।

यह वह युग था जबकि भारतीय वैभव से आकर्षित लालची लुटेरे आँधी की भांति इसकी ओर अग्रसर हो रहे थे और भारतीय नरेश छोटे छोटे केन्द्रीय शासनों पर बैठे हुए परस्पर युद्ध की योजना करते रहते थे। उस समय क्षत्रिय ललनाओं के विवाह भी उनके संरक्षकों एवं अन्य विवाहेच्छुकों से युद्ध के बिना सम्पन्न न हो पाते थे। ऐसे अशान्त वातावरण में साहित्य का निर्माण तथा निर्मित साहित्य की रक्षा असम्भव सी थी। अतएव इस समय से १२० वर्ष पूर्व की रचनाएँ अधोलिखित रूप में मिलती हैं:—

१. विजयपाल रासो २. हम्मीर रासो ३. कीर्तिलता ४. की
५. खुमाण रासो ६. बीसलदेव रासो ७. पृथ्वीराज रासो ८.
प्रकाश ९. जयचंद्र जयचन्द्रिका १०. परमाल रासो ११. ख
पहेलियाँ १२. विद्यापति की पदावली। उपरोक्त ग्रन्थों में अन्ति
ग्रन्थों को छोड़कर शेष सब वीरगाथात्मक हैं। इस वीर गाथा
अधिकता के कारण ही इस काल का नाम वीरगाथा काल पड़ा
रचनायें भाटों ने अपने आश्रयदाताओं की वीरताओं की गाथा के
लिखी हैं। इस समय चन्द्र, जगनिक, केदार भट्ट, नरपति नाल्ह, !
कवियों का नाम उल्लेखनीय है। जिनके करों में समयानुसार लेखन
खड्ग दोनों ही विद्यमान थीं।

इस युग के कवियों में पृथ्वीराज रासो के रचयिता चन्द्रबरद
नाम विशेष उल्लेखनीय है। ये हिन्दी के प्रथम कवि तथा पृथ
चौहान के मन्त्री, सामन्त और ६ भाषाओं के पण्डित राजा कवि
ये दोनों एक ही दिन पैदा हुए और एक ही दिन इन्होंने संसार से
किया। इनकी रचित 'पृथ्वीराज रासो' ६९ सर्गों में समाप्त हुई
इसमें पृथ्वीराज की साधारण से साधारण घटना का वर्णन है। इस
की भाषा, भाव तथा समय के अनुसार लोग इसको संदिग्ध मानते
वैसे यह पुस्तक बड़ी सरल तथा पठनीय है।

भक्तिकाल

सम्वत् १३७५ तक अनेकों प्रकार से विरोध करने पर भी मुस
राज्य भारत में दूर-दूर तक विस्तृत हो चुका था। इस राज्य की स्
पना से अब क्षत्रियों की शक्ति लुप्तप्राय सी हो गई थी। जो क्ष
बचे थे वह भी अब ऐसी दशा में अपने तथा अपने पूर्वजों की व
कृतियों की गाथा को बिना लज्जित हुए नहीं सुन सकते थे। ऐसे अशा
वातावरण में अशान्त हिन्दू जाति के लिये करुणानिधान, दीनोद्धार
दीनबन्धु परमेश्वर की शरण में जाने के अतिरिक्त और कोई चा
न था।

ऐसे समय में रामानन्द तथा वल्लभाचार्य ने जनता के भीतर भक्ति का स्रोत प्रवाहित किया। कबीर, नानक, सूरदास तुलसी आदि ने दुखित जनता को परमेश्वर की ओर आकर्षित किया। भक्ति की दो धारायें निर्गुण और सगुण धारा के रूप में मिलती हैं।

निर्गुण धारा के प्रवर्तक कबीरदास जी थे। ये अनपढ़ थे। परन्तु महात्माओं के सम्पर्क में रहने से इनका ज्ञान अधिक बढ़ गया था। पर सूफी कवियों का भी प्रभाव था। इनकी रचनायें १. रमैनी २. ३. साखी के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनकी वाणी का संग्रह 'बीजक' से प्रसिद्ध है। जिसके तीनों भागों का नाम ऊपर लिखा जा चुका इन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा एकता का उपदेश दिया है। इन्होंने पूजा का पूर्णतया खण्डन किया है। ये अपने युग के परिवर्तनकारी थे।

प्रेम मार्गी शाखा के कवियों में जायसी का नाम सर्व श्रेष्ट है। का लिखित महाकाव्य 'पद्मावत' के नाम से प्रसिद्ध है। यह काव्य- तथा ऐतिहासिक दोनों के सम्मिश्रण से अवधी भाषा में लिखा गया इनकी रचना शैली बड़ी मार्मिक है। इसमें चित्तौड़ के राणा रत्नसिंह सिंहल द्वीप की राजकुमारी पद्मिनी के प्रेम का अद्वितीय वर्णन सगुणधारा में भी दो समुदाय रामभक्ति तथा कृष्णभक्ति के नाम हुए हैं। रामभक्ति शाखा के सर्वश्रेष्ट कवियों में गोस्वामी तुलसीदास अमर हैं। इनकी प्रतिभा के हेतु ही आज हिन्दी साहित्य उन्नति गगन पर चन्द्र बनकर चमक रहा है। गोस्वामी तुलसीदास जी अपने पूर्व प्रचलित सभी काव्य पद्धतियों पर रचनायें की हैं। इन्होंने मचरित मानस' में सारे भारत की स्थिति का चित्र अङ्कित कर दिया भक्तिकी प्रबल भावनाका सहारा लेकर तुलसीने रामको प्रत्येक भारत नागरिक का राम बना डाला है। रामचरित मानस पूर्ण महाकाव्य। साहित्य के सभी सरस कारणों का रूप इनकी रचनाओं में पाया है

नैराश्य से डूबी हुई हिन्दू जाति ने कृष्ण लीला का सहारा लिया। इस समुदाय के सर्वश्रेष्ठ कवि सूरदास जी हुए हैं। इन्होंने ब्रजभाषा में भागवत गीता का विशद गान किया। सुना जाता है कि इन्होंने सवा लाख पदों की रचना की है। परन्तु उपलब्ध अवस्था में केवल ४ या ५ पद हैं।

इन्होंने प्रेम और भक्ति को प्रधान कर श्री कृष्ण की ही उपासना की। सूरदास जी ने वात्सल्य रससे पूर्ण परिस्थिति होकर ही बालकृष्ण का इतना मार्मिक चित्रण किया है। जैसा विश्व साहित्य में किसी भी कवि ने नहीं किया है। शृङ्गार के दोनों पक्षों का वर्णन सूर ने बड़ी स्वाभाविकता से चित्रित किया है शैशव तथा यौवन का चित्र अंकित करने में तुलसी से भी बढ़कर हैं।

रीति काल

साहित्य के पूर्ण प्रौढ़ता को प्राप्त हो जाने पर सम्वत् १७०० के पश्चात् हिन्दी साहित्य शास्त्र का निर्माण हुआ। इसके लिखने की भिन्न भिन्न रीतियों का विवेचन करने के कारण ही इस साहित्य शास्त्र को रीति ग्रन्थ कहा जाता है। इनकी प्रचुरता के कारण इस काल का नाम रीति काल पड़ा।

इस काल में साहित्य को पुनः राजदरबारों की शरण लेनी पड़ी। संघर्षों से निश्चित हो जाने के कारण राजदरबारों में इस समय विलासता की लहरें उमंगें ले रही थीं। विलासिता तथा ऐश्वर्य की रचनाओं के अतिरिक्त दूसरी रचनाओं के सुनने का अवकाश भी न था। अतः इस काल के कवियों ने 'नायक नायिका भेद' 'नख-शिख-वर्णन' 'षडऋतु' 'अष्टयाम' आदि रचनाएँ कीं।

इस समय के प्रमुख कवियों में चिंतामणि, भूषण, मतिराम, बिहारी, देव विशेष प्रसिद्ध हैं।

इस काल की रचनाओं में 'बिहारी सतसई' का विशेष स्थान है।

काव्यांगों के साथ साथ बिहारी श्रृङ्गार रस के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। इनकी भाषा शुद्ध ब्रज भाषा है। अलङ्कारों की सुन्दर छटा इनकी रचनाओं में मिलती है।

आधुनिक काल

इस काल में खड़ी बोली के विकास के अतिरिक्त विश्व-साहित्य को स्वतन्त्रता मिली। इस वैज्ञानिक युग में मानव को सुख-दुख तथा आशा और निराशा के शब्दों में ला पटका। साहित्य और ब्रज भाषा का चोला छोड़कर खड़ी बोली की कुर्ती पहनकर सम्मुख आया। गद्य का साम्राज्य छा गया। इसके निर्माताओं में भारतेन्दु हरिशचन्द्र व महावीर प्रसाद द्विवेदी विशेष उल्लेखनीय हैं कहानी, नाटक तथा उपन्यासों का क्षेत्र विकसित हुआ और प्रेमचन्द जैसे कहानी लेखक और उपन्यासकार उत्पन्न हुए। पद्य लेखकों में नवीन धारा के प्रमुख कवियों में जयशंकर प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी वर्मा अधिक प्रसिद्ध हैं। राष्ट्रीय कवियों में सर्वश्रेष्ठ श्री मैथिली शरण गुप्त, दिनकर, माखनलाल चतुर्वेदी विशेष प्रसिद्ध हैं। [सुश्री सुदेश शरण 'रश्मि']

कलाकार प्रेमचन्द और उनकी साहित्य सेवा

हिन्दी साहित्य के उपन्यास सम्राट् आदर्श कहानी लेखक और भारत के साहित्य के अभिमान प्रेमचन्द जी का जन्म १८८० में एक निर्धन घराने में हुआ था। इनके पिता डाकखाने के कर्मचारी थे। इनका विवाह अल्प आयु में हो हो गया था। पिता जी के अकस्मात देहान्त के कारण इनकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गई थी। पाँच रुपये की ट्यूशन फीस को ही इन्होंने अपनी शिक्षा का सहायक समझा। इनका स्वरूप बड़ा विचित्र था। गोरा रङ्ग, इकहरा बदन, उन्नत ललाट मोहित करने वाली मुस्कान, मुस्कराहट पर आवरण डालने वाली घनी मूँछें। मुस्कान को चमकाने वाली पुतलियाँ और चिन्ता चित्त की रेखायें

मस्तक पर दो सलवटें, इसी में इनका व्यक्तित्व स्पष्ट दृष्टि गोचर होता था। ये जीवन-संघर्ष की भट्टी में जलते हुए भी स्वर्ण से निकले। पिता की मृत्यु पर अनेकों मुसीबतें आईं, पर इन्हें दबा न सकीं। इन्होंने जीवन को संघर्ष की ज्वाला में झोंका—और भी निखरने के लिये—दीप्त होने के लिये। इन्होंने प्रतिकूल परिस्थिति की संकुचित घाटी को पार किया, लड़खड़ाते कदमों से नहीं, दृढ़, अनुराग, उत्साही हृदय और अविचल मन से।

एफ० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण न सके। भाग्यवश गोरखपुर के डिप्टी इन्सपेक्टर बने। परन्तु राजनैतिक क्षेत्र में गांधी जी का प्रभा इन पर पड़ा। इन्होंने नौकरी छोड़ कर गांधी जी के सिद्धान्तों का प्रचा अनेक साहित्य द्वारा किया। जो कर्म राजनैतिक क्षेत्र में गांधी जी किये वह कर्म साहित्यिक क्षेत्र में प्रेमचन्द जी के करों द्वारा सम्पन्न हुए। अतः ये हिन्दी साहित्य के गांधी माने जाते हैं।

ये आदर्श कलाकार थे—जब तक इन्होंने उर्दू की सेवा की तब तक ये उसके सम्राट् बने रहे। जब हिन्दी में प्रविष्ट हुए तो हिन्दी माता ने वात्सल्य पूर्ण हृदय से इन्हें गले लगाया और अन्त में हिन्दी साहित्य के सम्राट् बने, सम्मान, श्रद्धा और स्नेह के स्वर्ण सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया। १९०७ में कहानी लिखना प्रारम्भ कर दिया। उस समय 'ज़माना' पत्रिका में इनकी रचनायें प्रकाशित होती रहती थीं। इनके 'प्रेमा' के पश्चात् 'सेवा सदन' के हिन्दी अनुवाद के प्रकाशित होते ही उपन्यास क्षेत्र में हलचल मच गई।

इनके पूर्व निम्न ३ प्रकार की उपन्यास शैलियाँ मिलती हैं—

१. देवकी नन्दन खत्री ने 'चन्द्रकांता' आदि तिलस्मी उपन्यास लिखे। जिनमें ऐय्यारी आदि का विशद वर्णन है।

२. किशोरी लाल गोस्वामी ने 'तारा' 'अंगूठी का नगीना' आदि अनेक शृङ्गार रस के ऐतिहासिक और कुछ सामाजिक उपन्यासों की रचना की।

३. गोपाल दास गहमरी ने जासूसी उपन्यास लिखने में अपनी कला कुशलता का परिचय दिया।

इन ऊपर लिखित रचनाओं से जनता असन्तुष्ट हो रही थी। इस अस्थायी साहित्य का आगमन आँधी की तरह हुआ और तूफान की तरह समाप्त हो गया। उस समय जनता राजनैतिक कांत और सामाजिक सुधारों से परिचित हो चुकी थी। इन्हीं सभी समस्याओं का हल वह साहित्य के रूप में देखना चाहती थी ऐसी अशान्त अवस्था में हिन्दी को प्रेमचन्द का सहयोग मिला। इन्होंने सामयिक समस्याओं का उत्तर वर्तमान में ढूंढा—अतीत में नहीं। इस प्रकार ये 'युगस्रष्टा' बनकर उपन्यास क्षेत्र में 'कल्प वृक्ष' बन कर हमारे सन्मुख आये।

प्रेमचन्द जी ने जो कुछ लिखा, अपने राष्ट्र के लिये, देश के लिये, अपनी मातृ भाषा के लिये, निर्बलों और निर्धनों के लिये। इनकी कृतियाँ भारतीयता की सच्ची सहायक हैं। हिन्दी साहित्य में तुलसी और भारतेन्दु के पश्चात् इन्हीं को इतना स्थान मिला है कि ये 'साहित्य के गांधी', 'उपन्यास सम्राट्,' 'साम्यवाद के संदेश - वाहक', 'ग्राम्य जीवन के अनूठे चित्रकार' और भारत के गोर्की की उपाधियों से सुशोभित किये गये। ये शरत् और बंकिम थे। इनका रचनाओं के विदेशी भाषाओं में अनुवाद हुए। इन्होंने युवक कलाकारों की भटकती हुई कल्पना को आदर्श मार्ग दिखाया। जिससे सैकड़ों नव-युवक अपने देश और समाज का कल्याण कर सके।

विशेषताय

सबसे प्रथम इन्होंने समाज की बुराईयों को दूर करने की चेष्टायें कीं। और उसमें सफल भी हुए। इनकी रचनाएं हमारे सन्मुख दो दर्जन उपन्यासों, और तीन सौ के लगभग कहानियों के रूप में आईं। इसके अतिरिक्त तीन नाटक और कुछ अनुवाद भी किये। इनके उपन्यास राजनैतिक और सामाजिक रूपरेखा को लिये हुए हैं। राजनैतिक उपन्यासों में रंगभूमि, गोदान, कायाकल्प आदि के नाम उपयुक्त हैं,

गांधी जी के इन शब्दों से ये सहमत थे कि राजनैतिक दासता ही सामाजिक पतन का कारण है। इसके लिये इन्होंने ग्रामों का भ्रमण करके वहां की वास्तविक दशा का अवलोकन किया। 'गोदान' के होरी के रूप में हमें इनकी पूर्ण परछाई दृष्टिपात होती है।

इनकी दूसरी विशेषता हिंदू मुस्लिम-संगठन और अछूतोद्धार की भावना थी। स्त्रियों की समानता के भी पक्षपाती थे। स्वदेशी प्रेम, चर्खा खादी आदि अनेक बातों में इन्होंने अपनी देश भक्ति को प्रगट किया है।

सामाजिक उपन्यासों में 'सेवा सदन' 'निर्मला' और 'गबन' आदि हैं। ये उपन्यास बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, अनमेल-विवाह, और विधवा-की कारुणिक वाणी से भरपूर हैं। इनमें मुख्यत: नारी के दो रूपों का वर्णन किया है 'विधवा और वेश्या'। यही दोनों रूप आज की जागृति के कारण हैं। इन्होंने यथार्थ के चित्रण में आदर्श की स्थापना की है। विधवा आश्रमों की स्थापना और वेश्याओं को समाज में सम्मान दिलाने की ओर, प्रेमचन्द्जी ने अपनी कला को, जीवन के लिये मान कर समाज का अतुल उपकार किया है। इसके अतिरिक्त पूंजी-पतियों का अत्याचार, धनियों के हथकंडे, पारस्परिक द्वेष भावना का स्वरूप इनके उपन्यासों में जीता जागता मिलता है। इनका पात्र चित्रण सबसे भिन्न है। इन्होंने इनका स्वाभाविक चरित्र चित्रण किया है। इस वर्तमान युग का सजीव चित्रण करने के नाते ही इन्हें 'युग स्रष्टा' कहा गया है।

कहानी कला

ये उपन्यास सम्राट होते हुए भी सफल कहानी कार थे। ये उपन्यासों की अपेक्षा कहानी कला में अधिक सिद्ध हस्त थे। उपन्यासों की रचना के लिये इन्हें उनका ढांचा स्वयं तैयार करना पड़ा। यह मार्ग पहले इनके लिये बिल्कुल नवीन था। इनकी कहानियां अत्यन्त लोकप्रिय बनीं। इनमें जीवन का एकांकी चित्रण बड़ी सुन्दरता से पाया जाता है।

भाषा शैली

इनकी भाषा हिन्दुस्तानी (सरल हिन्दी) का सुन्दर रूप है। इन्होंने संस्कृत मयी भाषा का पल्ला छोड़कर बोल-चाल की सरल भाषा का सहारा लिया है। ये वास्तव में मौलवी से पण्डित बने। इनको भाषा में सामञ्जस्य पाया जाता है। इन्होंने शब्दों के चित्रण करने में बड़ी विशेषता दिखाई है। इनकी भाषा में आकाश गंगा के प्रकाशित नक्षत्रों की झिलमिलाहट नहीं, अपितु करुण कुटीर की दीप-शिखा है।

इतना होते हुए भी इनकी भाषा में कुछ न्यूनता रह गई है। जिस पर आलोचक गण आक्षेप करते हुए कहते हैं कि इन्होंने कहीं भाषा का रूप स्थिर न रख कर साहित्यकता का गला घोट दिया है। कहीं २ भाषा दुर्बोध और अशिष्ट हो गई है—ऐसा होना ही इनके साहित्य का घातक है। प्रेमचन्द जी ने अंग्रेज़ पात्रों द्वारा उनकी ही भाषा का प्रयोग कराया है। क्योंकि ये तो प्रत्येक वस्तु में वास्तविकता को देखना चाहते थे। कहीं २ तो एक समस्या को उपस्थित करने में ये अनेक कथाओं और उपकथाओं में उलझ से गये हैं, जिससे कि चरित्र चित्रण में न्यूनता आ गई है। ये पात्रों को आवश्यकतानुसार ही बुलाते हैं। पात्रों की मृत्यु इनके उपन्यासों में कठपुतली का खेल बन गया है।

इन तनिक से दोषों से इनकी महत्ता फीकी नहीं पड़ती है। कुछ दोषों के कारण चन्द्रमा को असुन्दरता का रूप नहीं दिया जा सकता है। साहित्य सिंहासन की सुशोभित महान आत्मा, अपनी वियोग विह्वल जीवन संगिनी, अनुभव हीन संतान तथा सहस्रों प्रशंसक और भक्तों को सिसकते छोड़ 'गोदान' कर, सूर्य मंडल को भेद, ब्रह्म रंध्र पार कर स्वर्ग के प्रतिष्ठित सिंहासन पर जा बैठी। ये सच्चे आदर्शवादी थे।

(सम्पादक)

'सूर सूर तुलसी ससी उडगन केशवदास'

सूरदास, तुलसीदास और केशवदास यह तीनों ही महाकवि हुए हैं

गगन के यदि सूर सूर्य और तुलसी चन्द्र हैं तो केशव एक उज्ज्वल नक्षत्र के समान प्रसिद्ध हैं। (श्री देवराज)

पन्त और उनकी कविता

श्री सुमित्रानन्दन पन्त का जन्म अल्मोड़ा जिले के कुमाऊँ प्रदेश में हुआ। अतः इनका प्रकृति प्रेमी होना स्वाभाविक था। यहाँ पर ये घण्टों प्रकृति के अलौकिक दृश्यों को निहारते हुए अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव करते थे। इनका बचपन में ही माता से सहवास छूट गया इसके उपरान्त प्रकृति की शीतल गोद में ही ये युवा हुए। प्रकृति के विषय में पंत के निम्न दृष्टिकोण हैं—

पन्त ने प्रकृति को और प्रकृति ने पन्त को इतना लुभा लिया है कि इन को अन्य किसी ओर देखने का अवकाश ही नहीं मिलता—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले! तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन।

इन्हें कविता की प्रेरणा भी प्रकृति से ही प्राप्त हुई। प्रकृति को सजीव मान कर इन्होंने हृदय को कोमल और सुन्दर भावनाओं की अभिव्यक्ति भी प्रकृति द्वारा की है। प्रियतम के वियोग में ये हृदय की उठती हुई टीस को व्यक्त करने के लिए कहते हैं—

तड़ित सा सुमुखी तुम्हारा ध्यान,
जुगनुओं से उड़ मेरे प्राण,
खोजते हैं तब तुम्हें निदान।

उपरोक्त पंक्तियों से उनकी भावना पूर्णतया स्पष्ट और चमत्कृत हो जाती है।

प्रकृति को पन्त ने उपमान ही नहीं माना बल्कि इस रूढ़ि का खंडन करते हुए उसे उपमेय मान कर हृदय की भावनाओं को उसपर

बना दिया है। प्रसाद की तरह पन्त का यह नवीन पक्ष साहित्य में प्रगतिवाद कहा जा सकता है। हमारी भावनायें वृक्षों के समान ऊँची हैं। इसके विपरीत वे लिखते हैं—

गिरिवर के उर से उठ उठ कर,
उच्चाकांक्षाओं से तरुवर।

प्रकृति के इस मधुर चितेरे ने उसका कोमल और भव्य रूप ही सम्मुख रखा है। वे उसे नारी रूप में देखते हैं। जब वे उसके मधुर गीत सुनते हैं तो प्रश्न कर उठते हैं—

'कहाँ कहाँ है बालक विहंगिनी.........'

पंत का जितना भी प्रकृति वर्णन है वह सरल, सुकुमार और सादगी लिए हुए है, जैसे—

सरल पन ही था उसका मन,
निरालापन थी आभूषण।

प्रकृति का स्वाभाविक चित्र जिस कुशलता से पन्त ने खींचा है, वह और किसी ने नहीं। संध्या की कितनी अच्छी उपमा इन्होंने दी है—

'बांसों का झुरमुट,
संध्या का झुटपुट।
हैं चहक रहीं चिड़ियां–टी, टी–टुट, टुट।'

संगीत की ध्वनि ने शब्दों में सचमुच जान डाल दी है। ऐसा
ात होता है कि मानो संध्या का एक सजीव चित्रण किसी चतुर
त्रकार ने कर डाला है या किसी मूर्तिकार ने शब्दों की छेनी
कर संध्या की सजीव प्रतिमा इन निर्जीव कागज़ों पर खड़ी कर
ी है। कला की सफलता यही है और कलाकार होने के नाते यही
त जी की सफलता है। जिसने उन्हें साहित्याकाश के उच्चतम
र पर पहुंचा दिया है।

(सुश्री राधा कुमारी सक्सेना)

मैथिलीशरण गुप्त और उनकी कविता

आधुनिक प्रतिनिधि कवि मैथिलीशरण गुप्त का जन्म चिरगाँव ज़िला झाँसी के एक प्रतिष्ठित वैश्य परिवार में हुआ। इनके पिता सेठ रामचरण जी परम वैष्णव रामोपासक भक्त थे। गुप्तजी ने रामभक्ति की भावना पैतृक सम्पत्ति के रूप में पाई है। ये तीन भाई हैं। इनके बड़े भाई तो विशेष साहित्यिक न थे। किन्तु उनके छोटे भाई सियाराम शरण जी गुप्त ने अच्छी ख्याति पाई है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी इस प्रकार से उनके कविता गुरू थे। वे इनकी प्रतिभा के विकसित होने में अधिक सहायक हुए हैं। इस बात को गुप्त जी ने नीचे के शब्दों में स्वयं ही स्वीकार किया है:—

'करते तुलसीदास भी कैसे मानस नाद।
कहावीर का यदि उन्हें मिलता नहीं प्रसाद॥

गुप्त जी की प्रारम्भिक रचनाओं में तो राष्ट्रीयता और उपदेशात्मकता का प्राधान्य रहा। किन्तु उत्तरोत्तर उनकी प्रतिभा के विकास के साथ उनकी रचना में कलात्मकता बढ़ती गई है। गुप्तजी की 'भारत-भारती' ने बड़ी लोकप्रियता प्राप्त की थी। इस प्राचीन भारतीय गौरव के लिए रोदन है और भविष्य के उत्थान के लिए आशा का प्रकाश। 'भारत भारती' ने जितना कार्य राष्ट्रीय जागरण में किया है, इतना 'साकेत' भी राष्ट्रीय भावनाओं से पूरित है। आज से राष्ट्रीय युवक के स्वर में ही भरत की वाणी कूक रही है।

भारत-लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बन्धन में,
सिंधुपार वह विलख रही है व्याकुल मन में।
बैठा हूँ मैं भण्ड साधुता धारण करके,
अपनी मिथ्या भरत नामको गमन घरके।

आज हम भारत के समान ही भारत—लक्ष्मी को सिंधु-पार व्याकुल तड़पती देखकर विकल हो उठते हैं

उपरोक्त पंक्तियों में प्रियतम की खोज का वर्णन है। प्रियतमा अपने करों द्वारा गूथी गई माला को स्वयं ही पहन लेना चाहती है। क्योंकि अब दोनों का रूप एक हो गया है। और एक हो जाना ही रहस्यवाद है।

कविता सुन्दरी को संकुचित बन्धनों से मुक्त कर स्वस्थ खुले हुए वातावरण में लाने का श्रेय भी इसी 'मैथली युग' को है। कविता कामिनी के शरीर से फटे पुराने चीथड़े उतार दिये गये हैं और उसे उपयुक्त वस्त्र पहनाये गये हैं। आभूषणों के भार को दूर कर उसके प्राकृतिक सौंदर्य को बढ़ाने की चेष्टा की गई है।

'यशोधरा' में गीत काव्य की प्रवृत्ति का सुन्दर समावेश है। यह गीत काव्य का युग होने के कारण–इसमें 'यशोधरा' की रचना की गई है।

'यशोधरा' के प्रत्येक गीत में क्रन्दन है, इसके प्रत्येक शब्द में सिसकियाँ हैं, इसका प्रत्येक अक्षर करुणा के सागर में गोते खा रहा है।

यशोधरा राहुल को सुलाती हुई कितने मधुर स्वर में गा रही है–

तेरी साँसों का निस्पन्दन,
मेरी तप्त हृदय का चन्दन,
सो, करलूँ मैं जी भर क्रन्दन,
सो, उनके कुल नन्दन सो।
सो, मेरे अंचल धन सो।

हृदय में वेदना की ज्वाला को जलाये यशोधरा राहुल को सुला रही है।

यशोधरा की करुणा पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है और उसके लिए रोना और गाना एक हो जाता है।

आओ हो बन-वासी
अब गृह-भार नहीं सह सकती,
देव तुम्हारी दासी!

राहुल पल कर जैसे वैसे,
करने लगा प्रश्न कुछ ऐसे,
मैं अबोध उत्तर दूँ कैसे ?
वह मेरा विश्वासी।
जल में शतदल तुल्य सरसते,
तुम घर रहते हम न तरसते,
देखो, दो दो मेघ बरसते,
मैं प्यासी की प्यासी।

उपरोक्त पंक्तियों में कितनी साधन हीनता और विवशता है। गृह-भार अब यशोधरा को असह्य हो गया है। दो दो मेघ बरसने पर भी वह प्यासी की प्यासी है।

इस युग की छाप मैथिलीशरण जी की कविता में व्याप्त है। अतः आप वर्तमान कवियों में सबसे अधिक लोकप्रिय कलाकार हैं।

उपरोक्त सब पंक्तियों से स्पष्ट है कि गुप्त जी ने अपने युग की सभी शैलियों का प्रयोग और प्रवृत्तियों का चित्रण किया है। इसलिए इन्हें इस युग का प्रतिनिधि कवि भी कह सकते हैं।

(सम्पादक)

कबीर और उनके सिद्धान्त-रहस्यवाद

१४वीं शताब्दी का वह युग जब कि कार्यपरता से उदासीन रहने वाली हिन्दू जाति अपनी आलस्य और मोहवृत्ति के कारण अपनी स्वतन्त्रता को दासत्व के निन्दनीय कुटिल बंधन में बांध चुकी थी। पूर्वजों के वीरत्व की स्मृति मृत-प्राय: हिंदू जनता में अपना प्रभुत्व न स्थापित कर सकी और शौर्य के साथ साथ वीर गाथाओं की अन्तिम ध्वनि भी रणथम्भोर के पतन के साथ सर्वदा के लिए लोप हो गई। विवशता से जकड़े हुए भारत ने यवनों का स्वागत किया। हिंदू धर्म पर कुल्हाड़े चलने आरम्भ हो गये। मन्दिरों का स्थान मस्जिदों ने ले लिया

और पूज्य महापुरुषों को अपमान जनक शैली से पुकारा जाने लगा। भारत के गौरव गुमानों को निर्दयता पूर्वक कुचल डाला गया और इस निर्बल हिन्दू जाति ने सब कुछ देखा। पौरुष को खोई हुई जाति ने अपनी सान्त्वना पाने के लिए भगवान की शरण में आना ही उचित समझा। जनता की रुचि इस ओर देख कर काल के प्रतिनिधि कवियों ने उनके मन को शांति देने के लिए भक्ति का एक नया मार्ग निकाला। शासक और शासितों को संगठन का पाठ पढ़ाने और 'राम' रहीम को एक करने के अभिप्राय से उस समय के पारखी कवियों ने दोनों के सम्मुख ईश्वर के प्रेम स्वरूप को रक्खा और भेद भाव को मिटाने की चेष्टा की। कबीर जी इस युग के प्रधान कवियों और समाज सुधारकों में से थे। अब हम जनता पर प्रभुत्व जमाने वाले कबीर जी के सिद्धांतों का संक्षेप में परिचय देते हैं।

इनका प्रमुख सिद्धान्त 'ईश्वर' को एकात्मवादिता है। वही सृष्टि का निर्माणकर्ता, अनादि और अनन्त है। कबीरजी का 'ईश्वर' सर्व-धर्म गत है और अखिल विश्व व्यापक है। वह निराकार है। अतः पत्थर की मूर्ति को 'ईश्वर' मानकर उसे भोग लगाना कबीरजी के विचार में केवल हास्यास्पद है। इन्होंने अपने 'ईश्वर' को 'राम' 'हरि' 'शार्गपाणि' 'यादवराय' 'गोपाल' 'साहब' 'ठाकुर' 'अलख' आदि अनेक नामों से सम्बोधित किया है। कुछ लोगों का मत है कि यह रामानन्द जी के शिष्य थे। अतः इनका उपरोक्त शब्दों का प्रयोग करना स्वाभाविक ही था। परन्तु कबीर जी ने स्पष्ट कह दिया है कि इनके 'राम' वैष्णव सम्प्रदाय के दशरथी राम से सर्वथा भिन्न हैं। इनका 'राम' से अभिप्राय निर्गुण ब्रह्म से है। जैसा कि उनकी कविता से स्पष्ट है।

'आदि राम का कर्त्ता कहिए तिनहुँ को काल न राखा।'

इस उपरोक्त पंक्ति से स्पष्ट है कि कबीर जी के 'राम' में कोई विशेषता है। उनका 'राम' हृदय में बसने वाला और मृत्यु के पाश से परे है। वह किसी विशेष लोक का निवासी नहीं है। कबीर जी की इस

राहुल पल कर जैसे तैसे,
करने लगा प्रश्न कुछ ऐसे,
मैं अबोध उत्तर दूँ कैसे ?
वह मेरा विश्वासी।
जल में शतदल तुल्य सरसते,
तुम घर रहते हम न तरसते,
देखो, दो दो मेघ बरसते,
मैं प्यासी की प्यासी।

उपरोक्त पंक्तियों में कितनी साधन हीनता और विवशत
गृह-भार अब यशोधरा को असह्य हो गया है। दो दो मेघ बर
भी वह प्यासी की प्यासी है।

इस युग की छाप मैथिलीशरण जी की कविता में व्याप्त है
आप वर्तमान कवियों में सबसे अधिक लोकप्रिय कलाकार हैं।

उपरोक्त सब पंक्तियों से स्पष्ट है कि गुप्त जी ने अपने
सभी शैलियों का प्रयोग और प्रवृत्तियों का चित्रण किया है।
इन्हें इस युग का प्रतिनिधि कवि भी कह सकते हैं।

(स

कबीर और उनके सिद्धान्त–रहस्यवाद

१४वीं शताब्दी का वह युग जब कि कार्यपरता से उदास
वाली हिन्दू जाति अपनी आलस्य और मोहवृत्ति के कारण
स्वतन्त्रता को दासत्व के निन्दनीय कुटिल बंधन में बांध चु
पूर्वजों के वीरत्व की स्मृति मृत-प्राय: हिन्दू जनता में अपना
स्थापित कर सकी और शौर्य के साथ साथ वीर गाथाओं की
ध्वनि भी रणथम्भोर के पतन के साथ सर्वदा के लिए लोप
विवशता से जकड़े हुए भारत ने यवनों का स्वागत किया। हि
कुल्हाड़े चलने आरम्भ हो गये। मन्दिरों का स्थान मस्जिदों ने

भावना का मेल हिंदुओं की मक्ति भावना से है, परन्तु कहीं २ कबीर जी की भावना इससे भी अधिक ऊँची है। अतः इन्होंने राम को निर्गुण और सगुण दोनों से ऊपर मानकर निम्न पंक्तियाँ कही हैं—

'अल्ला एकै नूर उपनाया ताकी कैसी निन्दा।
ता नूर ते सब जग कीया कौन भला कौन मंदा।'

इससे सिद्ध होता है कि कबीर का 'नूर' रहस्यवादियों के 'अनन्त प्रकाश' का ही दूसरा नाम है। क्योंकि वे स्वयं रहस्यवादी थे? परन्तु उपरोक्त पंक्तियों में इनके ऊपर मुसलमानी मत का प्रभाव स्पष्टतया प्रगट होता है।

निराकार सिद्धांत की धारली—कबीर मूर्त्तियों के कट्टर विरोधी थे। मूर्ति की पूजा करना मूर्खता समझते थे। वे ऐसी पूजा करने वालों को ढोंगी शब्द की उपाधि देते हैं। अतः बड़े व्यंगपूर्ण शब्दों में इन्होंने कहा है—

'पाहन पूजे हरि मिले तो मैं पूजूँ पहार'

कबीर जी का भक्ति पर अटल विश्वास है। अतः वे इसे ही ईश्वर प्राप्ति का साधन मानते हैं इनका कहना है कि वेदों और उपनिषदों के पढ़ने से ही कोई पंडित नहीं हो जाता है। वास्तव में पंडित वही है, जो कि प्रेम के ढाई अक्षरों का पाठ पढ़ चुका हो। ज्ञानी पुरुष गर्व में रंगा रहने के कारण माया के चक्कर में भटकता फिरता है, परन्तु भक्त गर्व हीन होने के कारण शीघ्र ही 'ईश' तक पहुँच जाता है।

इनका भक्ति मार्ग वैष्णव मार्ग से भिन्न मार्ग है। वैष्णव मार्ग (सगुण मार्ग) राम या कृष्ण की उपासना का आदेश देता है और कबीर का भक्ति मार्ग व्यक्तिगत साधना द्वारा ही 'ईश' तक पहुँचने का उपदेश देता है। इन्होंने सूर और तुलसी की तरह लोकादर्श की मनोहर मूर्ति प्रतिष्ठित नहीं की थी। इन्होंने तो सदाचार और ब्रह्म-ज्ञान के रूखे सूखे उपदेशों द्वारा भक्ति मार्ग की व्यवस्था करनी चाही।

इसी कारण से सगुण भक्ति के कवियों के समान इनमें मधुरता का आभास नहीं है। जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु में कृषक वर्षा का नहीं, वरन् ताप का भूखा होता है; उसी प्रकार कबीर जी भी 'चरम आनन्द' प्राप्त करने के लिए कष्ट-साधना के भूखे थे। सगुण भक्ति के कवियों में भावुकता और सहृदयता का चिन्ह मात्र भी नहीं है। परन्तु कबीर में 'ईश' की भावना का 'माधुर्य भाव' अवश्य विद्यमान् है। इन्होंने एक स्थान पर कहा भी है—

'हरि मोर पीउ मैं राम की बहुरिया'

'राम की बहुरिया' कभी तो प्रिय से मिलने की जिज्ञासा और मार्ग की कठिनता दर्शाती है, और कभी विरह-वेदना का अनुभव करती है।

कबीर जी की शिक्षा का माध्यम आत्मज्ञान प्राप्त करना है। इनका विचार है कि रूपात्मक दृश्य जल के घड़े के समान हैं, जिसके बाहर भी 'ईश वारि' है और भीतर भी। बाह्य रूप की समाप्ति पर जिस प्रकार बाहर और अन्दर जल मिलकर एक हो जाता है, उसी प्रकार से इस लोक में से माया का पर्दा हट जाता है। इसके उपरान्त आभ्यन्तर का ब्रह्म बाह्यस्थ ब्रह्म में समा जाता है।

ऐसा यह संसार है जस सेमर का फूल।
दिन दस के व्योहार में झूठे रंग न भूल॥

उपरोक्त पंक्तियों के द्वारा कबीर जी कहते हैं कि मानव माया में पड़ा हुआ अपने स्वार्थ की सोचता है, अतः वह परमात्मा तक नहीं पहुँच पाता। माया ममता की पोषक है। अतः ज्ञानी पुरुष माया का त्याग आवश्यक बताते हैं।

कबीर जी भिन्न-भिन्न धर्म-मतावलम्बी मानवों को एक ही समान समझते हैं। इनका विचार है कि वर्ण-विभाग समाज की कृति का नमूना है। चांडाल और ब्राह्मण में केवल कर्म का ही भेद है। ईश्वर ने सबको एक ही समान उत्पन्न किया है। उन्नति और अवनति केवल व्यक्तिगत बुद्धि एवं प्रतिमा का ही परिणाम है।

कबीर जी कर्मकांड के आडम्बरों को हीन समझते हुए सत्य के उपासक थे। ये किसी भी नामधारी बन्धन में नहीं फँसे। इन्होंने हिन्दुओं की जाति-पाँति, छूआ-छूत इत्यादि और मुसलमानों की बुरी रीति-रिवाजों की घोर निन्दा की है।

ये उन ज्ञानी पुरुषों में से नहीं थे, जो हाथ पांव समेट कर पेट भरने के लिये समाज पर भार बनकर आ जाते हैं। ये तो सर्वदा ही परिश्रम का सहारा लेकर ही सब कार्य करते रहे।

कबीर जी का हिन्दी साहित्य में स्थान

कबीर जी की काफ़ी से अधिक रचना रहस्यवाद में लिप्त है। इनकी भाषा में अस्पष्टता होने के कारण काव्य की रोचकता प्रायः समाप्त सी हो गई है। इस पर दार्शनिक पदों का बाहुल्य है। इनमें महाकवि के सभी लक्षण विद्यमान हैं। ये प्रतिभा के भण्डार, मौलिकता के पुजारी, ओजता के स्वामी और गाम्भीर्य आत्मा हैं। इनकी रचनाओं में इनका हृदय प्रतिबिम्बित है, अपनी निजी कल्पना का जीता जागता चित्र है, अपना निजी सन्देश है। यदि आध्यात्मिकता का स्थान भौतिकता से ऊँचा माना जाये तो कबीर का स्थान हिन्दी साहित्य गगन में वही है, जो सूर और तुलसी का है। रहस्यवादी कविगण इनका स्थान जायसी से ऊँचा मानते हैं।

कबीर जी का रहस्यवाद

इस सृष्टि के चक्र का संचालन एक अद्भुत अज्ञात शक्ति के द्वारा किया जाता है। इस अज्ञात शक्ति का मानव से क्या नाता है, इसी का ज्ञान रहस्य का अन्तिम लक्ष्य है। इसके सम्पर्क में आने तथा इसकी सत्ता को पकड़ने की जिज्ञासा का उत्पन्न होना ही रहस्यवाद की सीढ़ी पर पैर रखना है। रहस्यवाद हरी-हरी मुलायम घास नहीं, बल्कि एक भाड़ है, जिसको थोड़ा सा छेड़ने पर अमात्मक कांटे ओर छोर निकल आते हैं। उनमें से छूटना सरल नहीं है। मानव आरम्भ

से ही किसी न किसी वस्तु की खोज में फिरता है, सहसा उसे किसी ज्योति द्वारा पता लगता है कि ज्ञान और बुद्धि उसकी राह देख रहे हैं। उस समय वह मानव जीवन की वास्तविकताओं को भूल जाता है और मानसिक क्षेत्र की छोटी से छोटी प्रवृत्तियाँ उसको खींचकर ले जाती हैं। इसके उपरान्त उसकी आत्मा ज्योति से चमक उठती है और वह अपने पूर्व जन्म को बिल्कुल भूल जाता है। इस दशा पर पहुँचने के उपरान्त ज्ञानी भक्त रहस्यवादी बन जाता है। वह संसार की अनित्यता का दर्शन बड़े अनोखे ढंग पर करते हैं:—

माली आवत देखि के कलियाँ करें पुकारि।
खिली-खिली तो चुन लईं अब काल्हि हमारी बारि॥

कबीर जो ब्रह्म के जिज्ञासु हैं। जिज्ञासा का सम्बन्ध आत्म-ज्ञान से होता है। और जब जिज्ञासु-ज्ञान का चोला पहनकर कवि बनना चाहता है, तो स्वाभावतया उसका ध्यान रहस्यवाद की ओर झुक जाता है। और फिर उसे विश्व की प्रत्येक वस्तु दूसरी से अखण्ड सम्बन्ध से जकड़ी हुई दिखाई देने लगती है। वह खिले हुए पुष्पों में रमणी के सौंदर्य में, निखरे हुए चन्द्र बिम्ब में अपने प्रियतम के सौंदर्य का, स्नेहपूर्ण चुम्बन आदि का साक्षात्कार करता है।

रहस्यवादी निम्नकोटि के होते हैं:—

१ भक्ति-उपासक

इनके विचार में वियोगी बनकर ईश्वर का चिन्तन करना ही सफलता की कुंजी है। आत्मिक एवं शारीरिक बल आदि इसके सौख्य के लक्षण हैं।

२ दार्शनिक

ये बैरागी जीवन को घर पर ही बिताने के पक्षपाती हैं।

३ प्रकृति उपासक

ये लोग प्रकृति में ही ईश्वर का साम्राज्य देखते हैं। इनका विचार

है कि मनुष्यात्मा प्रथम प्रकृति में 'ईश' का अन्वेषण करती है। इनकी सबसे प्रथम पूजा प्रकृति पूजा ही है। परन्तु कबीर जी इसको नहीं मानते हैं।

४ प्रेमोपासक

इनका विचार है कि अज्ञात अर्थात् ईश्वर से मिलने का एकमात्र उपाय 'प्रेम' है। इस धारा के अनुयायी ब्रह्म की भावना अनन्त सौंदर्य और अनन्त गुण सम्पन्न प्रियतम के रूप में करते हैं। सूफ़ी मत भी इसी बात का समर्थन करता है। कबीर जी भी इस धारा से बाहर नहीं हैं। इनके प्रेम में ममत्व नहीं, वरन् आत्म-समर्पण है। इसी भावना के 'ईश' से साक्षात्कार होने पर कबीर जी कहते हैं:—

> लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल
> लाली देखन मैं गई मैं भी होगई लाल ॥

उपरोक्त पंक्तियों में प्रेम की शुद्धता और उच्चतम अवस्था का कितना सुन्दर रूप दिखाया गया है। और अन्त में कबीर जी कितने मार्मिक शब्दों में कह उठते हैं कि 'हे ईश! अनिर्वचनीय आनन्द की यह भीनी झलक क्या कभी हम भी देख सकेंगे?'

(सम्पादक)

रस और रसानुभूति

साहित्य-संगीत-कला सभी के भावनाक्षेत्रों में रस व्यापक रूप से समाया हुआ है। रस का विवेचन प्राचीन आचार्यों ने अपने-अपने विशिष्ट ढगों से किया है। संगीत में सम और ताल के अनुसार तथा चित्रकला में रंग-बिरंगी तूलिका के अनुरूप ही रसों तथा रसोद्रेक में परिवर्तन होता रहता है। जीवन की समस्त कलाओं की दृष्टि से रस की अब तक कोई सर्वमान्य विवेचना नहीं हो सकी है। रस सम्बन्धी हमारा ज्ञान अभी तक अपने पूर्वाचार्यों की व्याख्या तक ही सीमित

है। आज आवश्यकता इस बात की है कि रसों का जो कुछ विवेचन हमारे साहित्याचार्यों ने किया है उसका और अधिक संस्कार कर व्यापक बनाया जाय।

आचार्यों की विभिन्न सम्मितियाँ

सर्वसम्मति से भरत रस के आदि आचार्य माने गये हैं, यद्यपि भरत ने कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर रसों की पूर्ववर्ती परम्परा सिद्ध की है। भरत ने नाट्य-शास्त्र पर लिखे ग्रन्थों में रसों का विवेचन रूपक के लिये किया है। किन्तु परवर्ती आचार्यों ने बाद में रसों को श्रव्य काव्य से भी उपयुक्त माना। भरत ने शृंगार, रौद्र, वीर और वीभत्स मुख्य रस माने तथा हास्य, अद्भुत, भयानक रसों को उपर्युक्त मुख्य चार रसों से उद्भुत माना। इसके अतिरिक्त भरत ने रस निष्पत्ति के लिये विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों के अस्तित्व को भी स्वीकार किया रस निष्पत्ति के सम्बन्ध में आचार्यों के मतभेद के कारण ही लोल्लट के उत्पत्तिवाद, भट्टनायक के भुक्तिवाद तथा अभिनवगुप्त के अभिव्यक्तिवाद आदि सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया। कुछ आचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा स्वीकार किया तो कुछ ने उक्त सिद्धान्त का यह कहकर खण्डन किया कि रस अलंकार आदि काव्य रीति को उत्कर्ष की ओर ले जा सकते हैं; रस का काव्य-वस्तु से पृथक अपना कोई निजी अस्तित्व नहीं है। रस निष्पत्ति के सम्बन्ध में प्रचलित विभिन्न-वादों तथा सिद्धान्तों से अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद ही अधिक मौलिक तथा ग्राह्य स्वीकार किया गया।

अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद

अभिनवगुप्त के अनुसार भाव की सत्ता पाठक के हृदय में ही रहा करती है। जिस व्यक्ति के हृदय में भावों की सत्ता संस्कार रूप से ही विद्यमान नहीं होगी उसे किन्हीं विभावों अथवा अन्य साधनों से रसास्वादन नहीं कराया जा सकता। किसी भी साहित्य के अनुशीलन द्वारा

भाव-रचना हृदय का अनुकूल वातावरण पाकर स्वयमेव उद्‌बु
जाती है, इसके लिये विशेष प्रयास की आवश्यकता नहीं है। जा
भावोद्रेक अथवा पाठक या श्रोता के हृदय-भावना जगाने का
वह केवल ध्वनि अथवा व्यंजना से ही हो सकता है। संक्षेप में
नवगुप्त के अभिव्यक्तिवाद का यही मूलतन्त्र है।

रसानुभूति लौकिक अथवा अलौकिक

सत्वोद्रेकादखण्ड स्वप्रकाशानन्द चिन्मयः
वेद्यान्तर स्पर्श शून्यो ब्रह्मास्वाद सहोदरः
लोकोत्तर चमत्कार प्राणः कैश्चित्प्रमातृभिः
स्वाकारवदभिन्नत्वं नायमास्वाद्यते रसः ॥

उपर्युक्त पद्यों में कविराज विश्वनाथ ने संस्कृत रसशास्त्र मे
रस के स्वरूप का सार संचित किया है। कविराज विश्वनाथ
प्रकार रसास्वादन अनिवार्यतः आनन्दमय ही माना है और वह
भी संसार की भौतिक सत्ता के सर्वथा परे – एक अखण्ड, चिन्
स्पर्श शून्य। इनकी परिभाषा के अनुसार विभाव, अनुभाव
तथा स्थायी भावों की कोई पृथक चेतना नहीं होती, अपितु
रस के रूप में सबकी अखण्ड चेतना ही होती है। रस की
नाथ ने असंदिग्ध रूप से रस को भौतिक स्तर से उठाकर आ
स्तर पर ला खड़ा किया है। रसानुभूति को आध्यात्मिक
जाने का सम्बन्ध मनुष्य की त्रिगुणात्मक प्रकृति से सहज ही
सकता है। बिना सत्वगुण की प्रधानता के रसानुभूति असम्
हृदय में रजस और तमस के विकारों पर जब सत की विजय
और एक अनिर्वचनीय आनन्द की उपलब्धि होती है, तभी
रसानुभूति सम्भव है। आत्मा पर रजस और तमस के पर्दे
हटाने पर ही सत् संस्कार जागृत होते हैं और इसी से
सम्भव है। इस प्रकार रसानुभूति में हमें आत्मा को केन्द्र
मानना पड़ता है।

किन्तु कुछ आधुनिक आलोचक रसानुभूति का भौतिक तथा आध्यात्मिक रूप से विभाजन स्वीकार नहीं करते। उनका कथन है कि प्रत्येक अनुभूति का उद्गम-स्थान हृदय है। इसलिये ऐन्द्रिक या बौद्धिक अनुभूति आध्यात्मिक अनुभूति के बिना असम्भव है। इसी प्रकार बौद्धिक और आध्यात्मिक अनुभूति भी ऐन्द्रिक अनुभूति से पृथक नहीं हो सकती इंद्रियों की क्रिया के बिना ऐन्द्रिक या आत्मिक क्रिया उत्पन्न नहीं हो सकती।

रसानुभूति के मूल तत्व

सांसारिक कार्य व्यापारों में हमें जिस आनन्द की अनुभूति होती है, उससे रसानुभूति भिन्न है। रसानुभूति का सम्बन्ध अधिकांशतः सौन्दर्य, यदि सौंदर्य का व्यापक अर्थ लिया जाय तो भावना से है। सामान्य आनन्द को प्राप्तकर ऐन्द्रिक मनोभावों की तृप्ति होती है। किन्तु सौंदर्यानुभूति समान्य स्तर से कुछ ऊपर उठी हुई वैज्ञानिक अनुभूति से परे होती है। यहां वैयक्तिक अनुभूति से तात्पर्य यह है कि सौंदर्योपासन अथवा सौंदर्यानुभूति आनन्द की ही वस्तु नहीं है। इसे शब्दों में हम इस प्रकार कह सकते हैं कि व्यक्तिगत आनन्द का साधारणीकरण कर जब उसे मानव मात्र का आनन्द बना दिया जाय तभी वह सौंदर्यभावना है और इसकी अनुभूति ही वास्तव में रसानुभूति है शुद्ध सौंदर्य-भावना ही रसानुभूति की जननी है। निजत्व की संकीर्णता में विशालता आते ही काव्यानुभूति होती है।

काव्यानुभूति और रसानुभूति

काव्यानुभूति तथा रसानुभूति में कभी - कभी कुछ भेद भी किया जाता है। काव्यानुभूति की स्थिति विशेषतः कलाकार में मानी जाती है तथा रसानुभूति की पाठक या श्रोता में। दोनों एक ही वस्तु के दो रूप हैं। एक में विधायक कल्पना तथा दूसरे में ग्राहक कल्पना अपेक्षित है। यद्यपि कलाकार तथा श्रोता या पाठक में ग्राहक तथा विधायक दोनों शक्तियां भी विद्यमान रह सकती हैं।

और किसी सरोवर के किनारे प्रभात में यदि आप आकर देखेंगे।
उषा-परी स्वर्ण मुस्कान बिखराती, सोयी वसुधा में जागृति, अल सिहरती, विहग बाल कण्ठों में सुधा स्वर जगाती, कमलों के अधरों पर चुम्बन-लालसा जगाती, सरोवर की लहरों में स्पन्दन उत्पन्न करती स्वर्ग से उतर रही है। कमल-उनींदी आँखें मलते, अलस अंगड़ाइयाँ ले रहे हैं। तरल तरंगें सरोवर के वक्षस्थल पर रपटती सी जा रही हैं और अपने स्नेह-चुम्बन से तृषित कूल के शुष्क ओठों को स्निग्ध कर जाती हैं। नलिन-दलों पर रसलोभी भ्रमर मंडराते हुए मधुर गुंजन से वातावरण प्रतिध्वनित कर रहे हैं।

आम्र-डालियाँ बौर के भार से झुकी जा रही हैं। सघन अमराइयों में मतवाली कोइलिया 'कुहू-कू' पुकार उठती है। 'कुहू-कू' की यह ध्वनि सुख-दुख के संसार से परे कितने ही बालकों को मुग्ध कर देती है। कितनी ही उन्मादित सुन्दरियों को रोमांचित और 'कुहू-कू' की यह पुकार कितने ही आहत हृदयों में मीठी टीस उत्पन्न कर देती है।

वसन्त के सोने से दिन किसे नहीं भाते! इस दिन में आनन्द ही आनन्द है। चारों ओर मादकता और स्वच्छन्दता, नशा और मतवालापन, विस्मरण और उन्माद, मस्ती और लापरवाही! और यह मधुर-मधुर, प्यारी-प्यारी रजत रजनियाँ किसके मन को अच्छी नहीं लगतीं।

संध्या समय शिथिल श्रान्त सूर्य-रश्मियाँ पर्वत शिखरों से अपना अरुण आंचल समेटती हैं। आकाश के वक्षस्थल से चन्द्रमा रजत-मुस्कान की वर्षा करने लगता है। नन्ही शेफालिकाओं की भीनी-भीनी सुगन्धि हृदय में सोये वासन्ती स्वप्न जगा देती है। जुही और चम्पा मन को चंचल बना देती है। चन्द्र-रश्मियाँ फूलों से रपटने लगती हैं और ज्योत्स्ना में स्नान करते हुए आंगन में कितनी ही अल्हड़ मतवाली कलकण्ठियों की कण्ठ ध्वनि में फाग रागिनियाँ चंचल हो उठती हैं। उन्माद-संगीत स्पन्दित होने लगता है।

इसी ऋतु में होली का सरस पर्व आता है। गुलाबी जाड़ा और

र आकाश से बरसती हुई चाँद सी प्रभा, अवकाश के दिन और
ीली ऋतु—कौन इस अलौकिक अवसर को छोड़ता है। नगर - नगर
म-ग्राम में फाग की मस्त रागिनी गाई जाती हैं। दिशायें मादक
ों से प्रतिध्वनित होने लगती हैं। आकाश से मस्त गीत टकराने
ाते हैं।

रंग भरनी आती है और घर-घर रंग खेला जाता है। चिंतारहित
र अम्मस्त लोक वसुधा पर उतर आता है। लालों कुंकरें कितने
कोमल कपोलों पर फूट पड़ते हैं। लाखों अधर गुलाल से लाल कर
े जाते हैं। सब पारस्परिक शत्रुता भूल एक दूसरे के गले मिलते हैं।

वसन्त प्रेम और प्रसन्नता का सन्देश लाता है। वसन्त मस्ती और
दकता उन्माद और लापरवाही की वर्षा करता है। वसन्त जीवन
र जागृति का आदेश लाता है। वसन्त यौवन को नशा प्रदान करता
इससे अधिक और चाहिए ही क्या ?

(सुश्री सुदेश शरण 'रश्मि')

खादी के तार

कौन सी ऐसी वस्तु है जिसके एक २ कण में पवित्रता की प्रतिमा,
ौरव की साकार मूर्ति त्याग तपस्या और साहिष्णुता की देवी उस
हाय अबला विधवा की आशायें मिली हैं—जिसका सौभाग्य सिन्दूर
र के वज्र करों से बलात पोंछ डाला गया हो।

यह है अहिंसा के पुजारी, विश्व प्रेम की प्रतिमा, मानवता की मूर्ति
की मरूर प्रतिमा द्वारा चलित भारतीय राजनीति दर्शन का प्रमुख
ान्त खादी पूजा।

वह विधवा सूत कात २ कर जीवन व्यतीत करती है। इसके एक-एक
में उस विधवा के निर्दोष सरल धूल सनित स्नेह कुमार हीरे की,
न में खेलते हुए उस चंचल शिशु की भविष्य मुस्कान पिरोई
उन्हीं तारों में उस असहाय अबला की अभिलाषायें महत्वाकांक्षायें
होती हैं ! जिनका संसार में कोई नहीं होता।

यह तार सर्वदा जीवित है इनका सामना मिल का वस्त्र क्या करेगा वह तो मृत है उसमें तो सो रहा है मजदूरों का शोषण।

यह ही सरलता विदेश महा-सिंधु में विलीन होने जाती हुई भारतीय सम्पत्ति सरिता को देश में रोकने के लिये खादी पर्वत व बाधा है दृढ़ और परतन्त्रता की बेड़ी पहने हुए अभागे भारत की रक्षा करने के लिये यही खादी के तार लोहे की दीवार बने।

खादी के यही नन्हे २ तार राष्ट्रीयता के प्रतीक है, समानता के द्योतक तथा एकता के चिन्ह हैं यही तार मानवता भ्रातृभाव सम्मानता और प्रेम का पवित्र सन्देश सुनाते हैं।

इसमें त्याग की तन्मयता प्रेम की पवित्रता, संगठन की शक्ति, एकता की अलौकिकता और तपस्या की तत्परता है।

यही हलके फुलके तार अत्याचारी के आसन को उखाड़ फेंकते हैं। आततायी के आसन धूल में मिला देता है। उत्पीड़न की ज्वाला को ज्वलित नहीं होने देता। इन्हीं के द्वारा सहस्रों मस्तक श्रद्धा से झुक जाते हैं। यही तार अभिमान को चूर २ कर देता है।

यही आधुनिक विनाशक सभ्यता के विषैले कीटाणुओं से बचाने वाली महौषधि है। यही खादी के तार पश्चिमी सभ्यता की उमड़ती हुई बाढ़ को रोकने के लिये एक अजय सांस्कृतिक दीवार है।

अतः हम जानते हैं कि हमारे देश की बहुत सी समस्यायें यह खादी के तार सुगमता से हल कर सकते हैं। यह भूख से पीड़ित निर्धनों के उदर की ज्वाला को शान्त करने के लिये रोटी, और नंगों को तन ढकने के लिये वस्त्र, बेकारों को काम और न जाने क्या क्या दे सकते हैं ? इन सीधे सादे तारों में भी एक निधि छिपी हुई है। यह तार हमारे लिये तारक है यदि हम इन्हें अपना सकें तो यही चन्द किरणों के समान सुखद बन सकते हैं हमारे लिये ! केवल हमारे लिये।

(सम्पादक)

चन्दा की चांदनी

ओह ! कैसी गर्मी पड़ रही है । ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो
ग्वान भास्कर को अपनी समस्त क्रोधाग्नि से सर्व भूमण्डल ग्राहि-
हि कर उठेगा । ऐसा भी क्या ? क्या स्थिर रख सकेगा अपनी इस
णभंगुरता को, नहीं कदापि नहीं ! अरे पानी पड़ गया क्रोधाग्नि को
नक देखो तो सही उस क्षणभंगुरता के अभिमानी सूर्यदेव को, अशान्त
के नभ मंडप की लम्बी यात्रा से थक गये हैं । इसी कारण अपने
ा को लज्जा से झुकाये मन्द-मन्द गति से अस्ताचल की ओर जाते
दृगोचर हो रहे हैं । अपने मुख की अशान्ति से दुखित सूर्यदेव अपने
श्राम-स्थल को निकट आया जान हर्ष से एकदम रक्तवर्ण हो गये ।
। सुर्खी से आलोकमय हो गया है । प्रत्येक दिशा ने भी अब ऊषा
सा शृंगार धारण कर लिया है । अहा ! कैसा सुन्दर प्रकृति दृश्य
जिसके आनन्द की महिमा शब्दों में वर्णित नहीं की जा सकती ।

तनिक प्राची दिशा को तो देखो जो लाल ओढ़नी ओढ़ के कैसी
भायमान हो रही है । समस्त नभमंडल रक्तमय हो गया । है यह
, रोशनी कैसी बढ़ती आ रही है ? क्या ऐसे ही निरन्तर बढ़ती ही
गी । यह तो गोलाकार के रूप में आ गया है·······स्पष्ट नहीं
कैसे महीन महीन बादलों के आंचलों को चीरता हुआ श्यामवर्ण
ी को एक कटाक्षभरी दृष्टि से चकाचौंध कर डाला है । ऐसे मनो-
दृश्य का दिग्दर्शन करते-करते भी नयन की पिपासा शान्त नहीं
ी । पाताल-स्वामी चन्द्रदेव ने अपनी शीतल शुभ्र ज्योत्स्ना वसु-
ा पर चारों ओर बखेर दी । ऐसा प्रतीत होता है कि वसुन्धरा को
ो सफेद मोतियों से झिलमिला रही है । वृक्षों के पत्तों की हरियाली
छन-छन कर चन्द्रमा की किरणों का प्रकाश कैसा शोभायमान
रहा है । कोलतार की निर्जीव सड़क ऐसी प्रतीत हो रही है मानो
ी ने वसुन्धरा पर काले-काले पेड़ों को काट कर गिरा दिया हो ।
दृश्य समय है ।

उपवन के नन्हें नन्हें सुकुमार पौदे मोतियों की चमक से झिल-मिला उठे हैं। अंगूरों की लम्बी लता पर चन्द्र की किरण की झलक ऐसी प्रतीत होती है कि मानो किसी ने चुन-चुन कर ओढ़नी पर हीरे जड़ दिये हों। यही शुभ्र ज्योत्सना मन को अपनी ओर आकर्षित किये बिना नहीं छोड़ती। इसी ज्योत्सना में प्रेम की एक मात्र निशानी श्वेत ताज की प्रतिमा कलकल करती हुई यमुना में ऐसी प्रतीत हो रही है मानो साक्षात मुमताज़ बेगम मग्न होकर जल-नृत्य कर रही हैं। चन्द्रमा की यह भव्य मूर्ति ऐसी लग रही है जैसे जलरूपी भवन में किसी ने हयडा ऊला रखा हो यमुना की लहरों से क्रीड़ा करता हुआ चन्द्रमा का दिग्दर्शन बड़ा मनोहर है।

फागुन की उन्मादमयी मधुयामिनी के वातावरण में खेलता हुआ हल्का शीत समीरण के उच्छ्वासों से बिखरती मादकता गति से रपटता हुआ उन्माद, अंचल से छलकते पराग मुस्काते चन्द्रमा से बरसती रजत ज्योत्सना, यमुना की तरंगों में झिलमिलाती रेशमी रश्मियाँ ऐसा स्वर्गीय समय—उस पर मुमताज़ के प्रेम स्मारक दूधिया महल ताज़ के उन्नत विशाल भाल पर राकेश-शशि फूल-सा दमक रहा था। ताज़ के मस्तक पर जो जवाहर मुकुट दमकमणि से झिलमिला रहे थे रजत-तार सी किरणें ताज के कपोलों पर रपट रही थीं और इठलाती नौका उन्मादी हाथी सी झूमती-झामती तरंगिणी की तरह तरंगों पर तैर रही थी। हम विस्मृति मदिरापान अर्ध खुले नयनों में स्वप्नों का संसार समेटे बढ़ जा रहे थे और चन्द्रकिरणें हमें बढ़ता देख पुलकित होकर चमका रही थीं हमारे श्वेत वस्त्र। इतने में स्वर गूंज उठा—

चन्दा की चांदनी रतिया,
निरखत भई है भोर,
पिया भोर भई है चन्दा,
मैं तो भई हूं चकोर,
चंदा की चांदनी रतिया।'

(सुश्री सुदेश शरण 'रश्मि)

महादेवी वर्मा और उनकी देन

महादेवी वर्मा का जन्म शिक्षित घराने में हुआ था। इनकी मा कलाप्रिय तथा विदुषी थीं। अतः ये भी संगीत, चित्र और का कलाओं में बाल्यकाल से ही दक्ष हो गई, किन्तु ११ वर्ष में इन विवाह हो गया था। बौद्ध दर्शन के अध्ययन ने आपको भिक्षुणी बन को प्रोत्साहित किया-परन्तु अनुमति न मिल सकी। इसके पश्चा इन्होंने संस्कृत में एम० ए० की परीक्षा पासकर प्रयाग की आचार्या ब गई और सेवा भाव द्वारा अपनी साधना को अबतक पूर्ण कर रही हैं। आप पीड़ितों की सर्वदा सहायक रही हैं। अवकाश के समय आप साहित्य की सेवा करती हैं।

आपको कवित्व की प्रेरणा अपनी माता के उपासना समय में गाये गये मीरा के पदों से मिली है। आपके गुरु ब्रज भाषा के पक्षपाती थे। अतः खड़ी बोली की कविता करने में आपको कुछ बाधाओं का सामना करना पड़ा। चुपके २ आपने 'विधवा' आदि कुछ घटनात्मक रचनाओं द्वारा अपनी कामना पूर्ण की। "नीहार" 'रश्मि' 'नीरजा' 'सांध्यगीत' आदि आपकी कविताओं के संग्रह छप चुके है। ये सभी कवितायें 'दीप-शिखा' और 'यामा' नामक दो बड़े संग्रहों में भी संकलित कर दी गई हैं। पद्य के साथ साथ गद्य में भी आपका प्रभाव अच्छे २ गद्य लेखक और आचार्य स्वीकार करते हैं। विश्व भर में ऐसे महान् व्यक्तित्व को धारण करने वाली स्त्री का मिलना कठिन है।

छायावाद के मुख्य कवियों में इनकी गणना की जाती है। प्रसाद पंत और निराला ने अपने अपने ढंग से छायावाद को समुन्नत किया। इन सबकी कला बाह्य प्रेरक ही अधिक रही है। प्रसाद ने छायावाद को सर्व प्रथम आरम्भ करके निराला ने नवीन छन्दों का श्रीगणेश करके तथा पंत ने प्रकृति सम्बन्धी नवीन शब्दावलि का प्रयोग करके जहाँ छायावाद के साहित्य वैभव को सम्पन्न किया। वहाँ महादेवी जी ने आत्मर्प्ण के

गीत रचकर गीत काव्य के माध्यम से हृदय की कोमल भावनाओं को अभिव्यक्त करने में ही कला प्रदर्शित की है।

श्रीमती वर्मा की कविता निर्दोष और निश्छल वन कुसुम के समान आह्लादक है। कला पक्ष पर ज़ोर न देकर हृदय पक्ष पर ही वर्मा जी अधिक झुकी हैं। वेदना और करुणा की मात्रा इतनी अधिक है कि गीतों के रस के साथ २ टीस उठकर उसे और भी अधिक मोहक बना देती है। यह प्रभाव उनके जीवन की गहन परिस्थितियों के कारण ही है। सम्पन्न घराना, ललितकलाओं की शिक्षा बालविवाह, बौद्ध धर्म का प्रभाव, दार्शनिक अध्ययन, पति से रहित एकांत जीवन, सेवाभाव और माँ के गीतों की छाया इन सबने मिलकर महादेवी वर्मा को एक अप्रतिम कलाकार बना दिया है। दार्शनिक चिन्तन और भाव पक्ष के द्वारा इन्होंने छायावाद में अपना पृथक् स्थान बनाया है और इनकी देन हिंदी साहित्य के लिये चिर अमर है।

(श्री योगेश्वर चन्द्र)

पद्मावत एक अध्ययन

पद्मावत जायसी की सर्व श्रेष्ठ कृति ही नहीं बल्कि हिन्दी साहित्य की सर्व श्रेष्ठ रचनाओं में से एक है इसकी तुलना रामचरित मानस से की जाती है। इसमें इतिहास और कल्पना का सम्मिश्रण है। इसका पूर्वार्द्ध अधिकतर कल्पित है। पद्मावत और रामचरित मानस की भाषा अवधी और दोहा, चौपाइयाँ, छन्दों को लिये हुए है। पद्मावत में अध्याय नहीं हैं। बल्कि इसके ५८ खंड हैं। जैसे सुआ खंड आदि। यह हिन्दी का सर्व प्रथम काव्य है जिसमें प्रकृति का समीचीन रूप देखने को मिलता है।

प्रबन्ध काव्य की दृष्टि से मानव जीवन की सर्वांगीण व्याख्या प्रकृति वर्णन, कथासूत्र का उचित निर्वाह, चरित्र चित्रण आदि का

इसमें सफलता पूर्वक चित्रण किया गया है। यह ग्रन्थ फारसी की मसनवी शैली पर लिखा गया है—इसमें नागरिक जीवन, राजकुमार और राजकुमारियों के प्रेम-वर्णन बड़े कलात्मक ढंग से किया गया है। इसमें दाम्पत्य प्रेम के अतिरिक्त युद्ध, कलह, मातृस्नेह, स्वामी-भक्ति, वीरता, कृतघ्नता आदि के वर्णन बड़े सजीव हैं। इसमें अधिकतर शृंगार रस है। इसका नागमती का विरह वर्णन हिन्दी साहित्य में अद्वितीय है। इस ग्रन्थ का अन्त नागमती और पद्मावती के सती हो जाने से हिन्दुत्व का ही बोधक है। शुक्ल जी के ये वचन कि 'जायसी जन्म मुसलमान किन्तु धर्म से पक्के वैष्णव थे' सत्य से प्रतीत होते हैं।

पद्मावत भावपक्ष और कलापक्ष दोनों ही दृष्टि से उत्तम रच है। इसके प्रेम वर्णन में विलासिता कोसों दूर भाग गई है। इस भाषा विशुद्ध तथा विदेशी भाषा के शब्दों से प्रायः मुक्त रही है इन्होंने शब्दों को तोड़ा मरोड़ा नहीं है। माधुर्य गुण इनकी कविता क माण रहा है। इस कृति में सभी प्रकार का वर्णन है फिर भी प्रेम व पीर का रंग ही अधिक माना जायेगा—कुछ आलोचक प्रेम के वर्ण को अस्वाभाविक बताते हैं। जैसे बिना देखे रत्नसेन का पद्मावती से प्रेम करना। इसके लिए इतना ही कहना पर्याप्त है कि जिस प्रका परमात्मा का दर्शन किये बिना ही भक्त लोग उस अदृश्य के प्रेम मे रात दिन व्याकुल रहते हैं। उसके दर्शन के बिना ही प्रेम किये जाते हैं, उसी प्रकार उसने किया। अतः यह प्रेम का प्रकार अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।

जायसी ने पद्मावत की कथा लिख कर प्रेम का रूप हमारे सन्मुख रखा। रत्नसिंह के रूप में स्वयं जायसी ही प्रेम की अलख जगाते फिरते हैं और नागमती के विरह में स्वयं ही अपने हृदय की व्यथा उन्होंने निकाल कर रख दी है। अतः इसमें प्रेम की पीर का ही मुख्य वर्णन है।

कथा

सिंहल दीप के राजा गन्धर्वसेन की पद्मावती नाम की एक सुन्दर कन्या थी। इसके पास हीरामन नाम का एक तोता था। वह तोता बड़ा बुद्धिमान था। जब वह पूर्ण यौवन पर थी तो उसके लिए योग्य वर ढूंढने की चेष्टायें की गईं। पर राजा इसमें असफल रहे। तोते ने योग्य वर ढूंढने की प्रतिज्ञा की और वहाँ से उड़ गया। वह एक शिकारी द्वारा पकड़ा गया। शिकारी ने उसे ब्राह्मण के हाथ बेच दिया ब्राह्मण ने तोते को चित्तौड़ के राजा रत्नसेन से एक लाख टके लेकर उन्हें दे दिया। तोता अन्तःपुर में रहने लगा। एक दिन चित्तौड़ की महारानी नागमती ने शृङ्गार करते समय तोते से अपने सौन्दर्य के विषय में पूछा। किन्तु तोते ने उसकी प्रशंसा न करके पद्मावती की प्रशंसा की। किसी अज्ञात आशंका के भय से महारानी ने दासी को उसे मारने की आज्ञा दी, किन्तु दासी ने उसे राजा के सम्मुख उपस्थित कर दिया। उस समय तोते ने रत्नसेन को पद्मावती के मनोहर लावण्य का वर्णन सुनाया। तत्काल ही वह योगियों के भेष में उसे लेकर अपने साथियों सहित सिंगल द्वीप पहुँचा। पद्मावती उससे मिलने आई। किन्तु वह उसकी रूपमधुरिमा को देखकर मूर्छित हो गया। पद्मावती वापिस लौट गई। राजा ने गढ़ पर चढ़ाई कर दी किन्तु पकड़ा गया और मृत्यु दण्ड मिला। इतने में महादेव ने प्रकट होकर उसको जीवन दान दिलाया और उसका विवाह पद्मावती से करा दिया। राजा चित्तौड़ लौट आया।

किसी अपराध के कारण राघव चेतन को देश निकाला मिला। उसने अलाउद्दीन को भड़का कर चित्तौड़ पर आक्रमण करा दिया। धोके से रत्नसेन बन्दी बना लिये गये। पद्मावती अपने वीर योद्धाओं की सहायता से उनको बन्धन मुक्त करा लेती है। गोरा बादल का घमासान युद्ध होता है और अन्त में देवपाल के साथ युद्ध करते हुए रत्नसेन मारे जाते हैं और दोनों रानियाँ सती हो जाती हैं।

पद्मावत में अध्यात्मवाद की झलक

ग्रन्थ को समाप्त करते हुए जायसी ने लिखा है कि 'राम चित उर मन कीन्हा·········' अर्थात् रत्नसेन मन है, पद्मावती बुद्धि है, तोता गुरू और राघव चेतन शैतान है, अलाउद्दीन माया का रूप है। इसको पढ़ने के पश्चात् कुछ विद्वान इस ग्रन्थ को आध्यात्मिक काव्य बताते हैं। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। क्योंकि जायसी सूफ़ीवादी कवि थे। अतः उन्होंने अपने ग्रन्थ में भी 'प्रेम की पीर' का ही वर्णन किया है। उन्होंने ईश्वर को सौन्दर्य अथवा प्रेम का रूप मान कर माधुर्य भाव से उसकी उपासना की है। अतः कथा-क्रम में उसे अपने प्रियतम का सौन्दर्य दृष्टि गोचर हो भी जाये तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। क्योंकि प्रियतमा का लावण्य वर्णन करते समय भगवान का सौन्दर्य स्मरण करना आध्यात्मवादियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। ऐसा कहा जाता है कि आत्मा और परमात्मा के मिलन हो जाने पर माया कोई बाधा नहीं डालती। परन्तु यहाँ पद्मावती का विवाह रत्नसेन से हो जाने पर भी अलाउद्दीन (माया) अपना जाल फैलाये रखता है। अतः साध्य रूप में आध्यात्मवाद जायसी ने नहीं लिखा है। हाँ, इतना अवश्य कह सकते हैं कि जिस प्रकार तोते के मुख से सुन कर भी और अनेक कष्टों को सहन करके भी रत्नसेन पद्मावती को पा सका, ठीक वैसे ही एक साधक गुरु-मुख से परमात्मा का गुण-गान सुन कर अनेक तपस्याओं के पश्चात् उस परमात्मा से मिल जाता है। इतने अंश में ही इसमें आध्यात्मवाद लिया जा सकता है।

जायसी की उदार भावनाओं ने लौकिक कथा को आध्यात्म रूप प्रदान किया है। इस भावना को रहस्यवाद कहते हैं। इस बात की चर्चा इन्होंने बड़े अनूठे ढंग से की है। अतः यह रहस्यवादी रचना होने के कारण इसके लेखक को रहस्यवादी कह सकते हैं।

(कुमारी) सुरेश डाबर 'रश्मि'

———

मैथिलीशरण गुप्त का पंचवटी वर्णन

मैथिली शरण गुप्त जी की रचित पंचवटी एक खण्ड काव्य है। इसमें वनस्थ श्री रामचन्द्र जी के परिवारिक जीवन की एक सुखसौन्दर्य से भरी झाँकी दिखाई गई है। पंचवटी के शान्तवातावरण में शूर्पणखा राक्षसी कुछ हलचल मचा देती है। किन्तु पात्रों के पारस्परिक प्रेम-भाव और उनके चरित्रों की उच्चता के कारण शान्त हो जाती है और राक्षसी अपने किये का फल भोगती है। गुप्त जी के वर्णन में एक विशेष सरसता आ गई है जो गोस्वामी जी के वर्णन में भी नहीं मिलती। इसका कारण यह है कि गुप्त जी को पंचवटी खण्ड काव्य है। यह उसका प्रधान विषय है। इसमें कर्त्तव्य के उच्च आदर्शों के साथ मानव हृदय की कोमलता और जीवन की मधुरिमा के दर्शन मिलते हैं। गोस्वामी जी के वर्णन से इसमें भिन्नता है। पंचवटी के लक्ष्मण जी कर्त्तव्य परायण अवश्य हैं किन्तु उनके हृदय में मानवी कोमलता का स्रोत सूखा नहीं है। वे राम की पर्णकुटी के आगे भयावनी रात्रि में पहरा देते हुये बेचारी उर्मिला को भूल नहीं जाते। देखिये—

> "बेचारी उर्मिला हमारे लिये व्यर्थ रोती होगी।
> क्या जाने वह वन में हम सब होंगे इतने सुख भोगी ?"

गुप्त जी ने शूर्पणखा को ऐसे ही समय में उपस्थित किया है। जब कि लक्ष्मण जी को अधिक से अधिक प्रलोभन हो सकता है। एकान्त पाप का जनक है। धीर-मती लक्ष्मण वैसे समय में भी शूर्पणखा पर विजय पा सके। यह उनकी महत्ता को और भी उत्कृष्टता प्रदान करता है। गुप्त जी की शूर्पणखा लक्ष्मण से एकान्त में सीधी मिलती है और ऐसे अवसर पर भी महात्मा शुकदेव जी की भाँति वे विचलित नहीं होते। लक्ष्मण जी के हृदय में मानव कोमलता थी किन्तु दुर्बलता नहीं।

रम्भानाम की अप्सरा ने व्यासजी के पुत्र शुकदेव जी को प्रलोभन देकर उनका तपभ्रष्ट करना चाहा था। रम्भा उनसे कहती थी कि जिसने यौवन के हास-विलास में भाग नहीं लिया उसका जीवन वृथा गया 'वृथा गतं तस्य नरस्य जीवितं'—श्रार शुकदेव जी कहते थे कि जिसने तप नहीं किया उसका जीवन वृथा गया। इसी रम्भा शुक संवाद का गुप्त जी ने उल्लेख किया है—

"कब से चलता है बोलो यह नूतन शुक—रम्भा संवाद ?"

लक्ष्मण ने शूर्पणखा का परिचय मात्र पूछा। वह चाहती थी क लक्ष्मण उससे यह पूंछ कर कि "चाहती हो क्या ?" उसे प्रणय-निवेदन का अवसर दें। उसकी यह बात सुन कर लक्ष्मण जी ने कहा—

"पाप शान्त हो, पाप शान्त हो, कि मैं विवाहित हूँ बाले।",

इतने में राम भी जाग जाते हैं। लक्ष्मण से निराश हो वह राम की ओर बढ़ती है, इसी सम्बन्ध में राम, सीता और लक्ष्मण का हास्य विनोद हो जाता है। पंचवटी का यह परिवार कर्त्तव्य-परायण अवश्य है किन्तु मर्यादा के भीतर आमोद-प्रमोद में भी भाग लेता है। उन लोगों के जीवन में नीरसता नहीं है। राम के इशारे पर वह लक्ष्मण की ओर आकर्षित होती है। लक्ष्मण जी अपने उत्तर से—"बस, मौन कि मेरे लिये हो चुकी मान्या तुम" राक्षसी में बदला लेने की भावना को आप्रल कर देते हैं और वह विकृत रूप धारण कर लेती है जिस के कारण सीता जी भी भयभीत हो जाती हैं। लक्ष्मण जी उसको अङ्ग-भङ्ग कर दण्ड देते हैं। देखिये—

"कि तू न फिर छल सके किसी को, मारूँ तो क्या नारी जान।
विकलांगी ही तुझे करूँगा जिस से छिप न सके पहचान॥"

लक्ष्मण जी अपनी ही कर्त्तव्य बुद्धि से ऐसा करते हैं। 'पंचवटी' में राम नाक-कान काटने का इशारा नहीं करते और न वे अपने भाई को अविवाहित ही कहते हैं। गुप्त जी ने राम को इस

कलंकों से बचा दिया है और शूर्पणखा को भी कुरूप बनाने का अच्छा कारण दिया है।

शूर्पणखा की विकृति के पश्चात् उस परिवार में पुनः शान्ति स्थापित हो जाती है और आमोद-प्रमोद चलने लगता है। लक्ष्मण जी अपने को पुरुषार्थवादी कहते हैं उस पर सीता जी एक मीठी चुटकी लेती हैं—

'रहो, रहो, पुरुषार्थ' यही है पत्नी तक न साथ लाये।'

यह हास्य प्रमाणित करता है कि राम, सीता, लक्ष्मण राज्य से निर्वासित होने के कारण दुःखी न थे। गुप्तजी के आदर्श चरित्र भी मानव हैं मानवोपरि नहीं और वे कष्टमय जीवन में भी सुख की झलक दिखाने में समर्थ हुए हैं। सीता ने बन देवी की भांति पशु-पक्षियों से भी निकट पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित कर लिया है। देखियेः—

"खेल खिला कर भी आर्या को, वे सब यहाँ रिझाते हैं।"

प्रकृति का इस राज परिवार के साथ पूरा साहचर्य दिखाते हुए पंचवटी में गुप्त जी ने बड़े सुन्दर प्राकृतिक चित्र उपस्थित किये हैं। अमल धवल चाँदनी में पंचवटी की झांकी देखियेः—

'चारु चन्द्र की चंचल किरणें,
खेल रही हैं जल-थल में।
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है,
अवनि और अम्बर तल में॥

पंचवटी में हम गुप्त जी को शुद्ध कवि के रूप में देखते हैं। इस ग्रन्थ में गुप्त जी की कविता, जयद्रथ-वध और भारत-भारती की भांति राजनीतिक विचारों के भार से दबी हुई नहीं है। अतः इसमें हम गुप्त जी की कला का अधिक विकसित रूप देखते हैं।

(श्री हरिशंकर एम०ए०)

हिन्दी कविता में प्रकृति चित्रण

हिन्दी जगत की लतिकाएँ सर्वदा ही सुन्दर से सुन्दर प्राकृतिक कुसुमों से सुसज्जित रही हैं। प्रकृति के पुष्प उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पूर्व और मध्य के विस्तृत मनोहर प्रदेश, दक्षिण पूर्व का वन्यखंड, दक्षिण-पश्चिम का झाड़खण्ड और मरुस्थली के रूप में स्थित हैं। हिन्दी जगत की सर्व दिशाएँ छोटी बड़ी नदियों, निर्झरों और जलस्रोतों से घिरी हुई हैं। अतः यह जगत आर्य भूमि का हृदय बन गया है। आदि कवि वाल्मीकि और महाकवि कालीदास के काव्य को इसी जगत की प्रकृति ने मनोहर बनाया है। इनका पचवटी का वर्णन देखने योग्य है—

> वाष्पसंछन्न सलिला रुतविज्ञेय सारसाः ।
> हिमार्द्रवालुकैः स्तीरैः सरितो भांति सांप्रतम ॥
> जराजर्जरितैः पद्मैः शीर्णकेसर कर्णिकेः ।
> नील शेषैर्हिमध्वस्तैर्न भांति कमला कराः ॥

सरिताएँ जिनका जल कुहरे से ढका हुआ है और जिनमें कि सारस पक्षी केवल शब्द से जाने जाते हैं। हिम आर्द्र बालू के तटों से ही पहचानी जाती है। कमल जिनके पत्ते जीर्ण होकर झड़ गये हैं, जिनकी केसर और कर्णिका टूट-फूट कर छितरा गई है, पाले से ध्वस्त होकर नील मात्र खड़े हैं।

कविवर कालिदास की लेखनी के शब्द जो कि हिमालय के सौंदर्य का बखान कर रहे हैं—

> कपोल कंडू ! करिभिर्विनेतुं ।
> विघट्टितानां सरलद्रु - माणाम् ॥
> यत्र स्रुत क्षीरतया प्रसूतः ।
> सान्द्रूनि गन्धः सुरभी करोति ॥

जिस [हिमालय] में कपोलों की खुजली मिटाने के लिए हाथियों

के द्वारा रगड़े हुए सरल के पेड़ों से टपके हुए दूध से उत्पन्न सुगन्ध शिखरों को सुगन्धित करती है।

इन कवियों में कदम-कदम पर हमें प्रकृति के रमणीय संश्लिष्ट चित्र मिलेंगे जिनमें हमें भारत की प्रकृतिस्थली के प्रति गूढ़ अनुराग के दर्शन होंगे। इन्होंने प्रकृति को काव्य शास्त्र और काव्य ग्रन्थों की अन्तरात्मा से देखा और बाह्य प्राकृतिक ऐश्वर्य की ओर से अपने को उदासीन रखा कालान्तर ने हिन्दी कविता को जन्म दिया और वह प्रकृति सम्बन्धी संस्कृत काव्य के इस दाय की स्वामिनी हुई।

अन्य परिस्थितियों से भी हिन्दी कविता का पल्ला अछूता न रह सका। उसका जन्म हिन्दू संस्कृति और हिन्दी साहित्य की अवनति के दिनों में हुआ। आदि युग के कवि स्त्री-पुरुष विषयक रीति और आध्यात्मिक साधना के विकृत रूपों से खिलवाड़ करते रहे। उनकी दृष्टि मानव के लौकिक जीवन और उसके आध्यात्म जगत तक ही पहुँच सकी। वह प्रकृति की ओर पूर्ण नेत्र न उठा सकी। सिद्धों ने अपनी कविता में अपनी साधनों को प्रकृति की भाषा में प्रकट किया है। वह यह अनुभव करते हैं कि वह स्वयं ब्रह्माण्ड है और उसके भीतर प्रकृति के इस रूप के दर्शन को हम सन्तों के काव्य में भी करते हैं। कबीर और दादूदयाल के सारे साहित्य में आध्यात्मिक होली, वर्षा, घाम, बसन्त आदि प्राकृतिक दृश्यों की प्रधानता है। मीरा के अनेक पद इनसे ही सुशोभित हैं।

भक्ति साहित्य पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट हो जाता है कि उसमें प्रकृति का स्थान गौण है। क्योंकि उनके मुख्य विषय रामकृष्ण के चरित्रवान और प्रेम की मानवीय भावनायें हैं। इनका प्रकृति चित्रण स्वतन्त्र रूप में न होकर उपमान के रूप में हुआ है। रीति काव्य की कविता में भी कवियों की लेखनी प्रकृति की ओर नहीं झुकी है। कृष्ण भक्ति साहित्य में शृंगार रस के उद्दीपन के रूप में प्रकृति का जो चित्रण हुआ था उसे ही उन्होंने आगे बढ़ाया। उन्होंने नायिका के अभिसार को पृष्ठभूमि में रखकर प्रकृति को पीछे देखा है। वियोगिनियों की

हिन्दी कविता में प्रकृति चित्रण

हिन्दी जगत की लतिकाएँ सर्वदा ही सुन्दर से सुन्दर प्राकृतिक कुसुमों से सुसज्जित रही हैं। प्रकृति के पुष्प उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पूर्व और मध्य के विस्तृत मनोहर प्रदेश, दक्षिण पूर्व का वन्यखंड, दक्षिण-पश्चिम का झाड़खण्ड और मरुस्थली के रूप में स्थित हैं। हिन्दी जगत की सर्व दिशाएँ छोटी बड़ी नदियों, निर्झरों और जलस्रोतों से घिरी हुई हैं। अतः यह जगत आर्य भूमि का हृदय बन गया है। आदि कवि वाल्मीकि और महाकवि कालीदास के काव्य को इसी जगत की प्रकृति ने मनोहर बनाया है। इनका पंचवटी का वर्णन देखने योग्य है—

> वाष्पसंछन्न सलिला रुतविज्ञेय सारसाः ।
> हिमार्द्र बालुकैः स्तीरैः सरितो भांति सांप्रतम ॥
> जराजर्जरितैः पद्मैः शीर्णकेसर कर्णिकैः ।
> नील शेषैर्हिमध्वस्तैर्न भांति कमला कराः ॥

सरिताएँ जिनका जल कुहरे से ढका हुआ है और जिनमें कि सारस पक्षी केवल शब्द से जाने जाते हैं। हिम आर्द्र बालू के तटों से ही पहचानी जाती हैं। कमल जिनके पत्ते जीर्ण होकर झड़ गये हैं, जिनकी केसर और कर्णिका टूट-फूट कर बिखरा गई है, पाले से ध्वस्त होकर नील मात्र खड़े हैं।

कविवर कालिदास की लेखनी के शब्द जो कि हिमालय के सौंदर्य का बखान कर रहे हैं—

> कपोल कंडू ! करिभिर्विनेतुं ।
> विघट्टितानां सरलद्रु - माणाम् ॥
> यत्र स्रुत क्षीरतया प्रसूतः ।
> सान्दूनि गन्धः सुरभी करोति ॥

जिस [हिमालय] में कपोलों की खुजली मिटाने के लिए हाथियों

के द्वारा रगड़े हुए सरज के पेड़ों से टपके हुए दूध से उत्पन्न सुगन्ध शिखरों को सुगन्धित करती है।

इन कवियों में कदम-कदम पर हमें प्रकृति के रमणीय संश्लिष्ट चित्र मिलेंगे जिनमें हमें भारत की प्रकृतिस्थली के प्रति गूढ़ अनुराग के दर्शन होंगे। इन्होंने प्रकृति को काव्य शास्त्र और काव्य ग्रन्थों की अन्तरात्मा से देखा और बाह्य प्राकृतिक ऐश्वर्य की ओर से अपने को उदासीन रखा कालान्तर ने हिन्दी कविता को जन्म दिया और वह प्रकृति सम्बन्धी संस्कृत काव्य के इस दाम की स्वामिनी हुई।

अन्य परिस्थितियों से भी हिन्दी कविता का पल्ला अछूता न रह सका। उसका जन्म हिन्दू संस्कृति और हिन्दी साहित्य की अवनति के दिनों में हुआ। आदि युग के कवि स्त्री-पुरुष विषयक रीति और आध्यात्मिक साधना के विकृत रूपों से खिलवाड़ करते रहे। उनकी दृष्टि मानव के लौकिक जीवन और उसके आध्यात्म जगत तक ही पहुँच सकी। वह प्रकृति की ओर पूर्ण नेत्र न उठा सकी। सिद्धों ने अपनी कविता में अपनी साधनों को प्रकृति की भाषा में प्रकट किया है। वह यह अनुभव करते हैं कि वह स्वयं ब्रह्मायड है और उसके भीतर प्रकृति के इस रूप के दर्शन को हम सन्तों के काव्य में भी करते हैं। कबीर और दादूदयाल के सारे साहित्य में आध्यात्मिक होली, वर्षा, घाम, वसन्त आदि प्राकृतिक दृश्यों की प्रधानता है। मीरा के अनेक पद इनसे ही सुशोभित हैं।

भक्ति साहित्य पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट हो जाता है कि उसमें प्रकृति का स्थान गौण है। क्योंकि उनके मुख्य विषय रामकृष्ण के चरित्रगान और प्रेम की मानवीय भावनायें हैं। इनका प्रकृति चित्रण स्वतन्त्र रूप में न होकर उपमान के रूप में हुआ है। रीति काव्य की कविता में भी कवियों की लेखनी प्रकृति की ओर नहीं मुड़ी है। कृष्ण भक्ति साहित्य में शृंगार रस के उद्दीपन के रूप में प्रकृति का जो चित्रण हुआ था उसे ही उन्होंने आगे बढ़ाया। उन्होंने नायिका के अभिसार को पटभूमि में रखकर प्रकृति को पीछे देखा है। वियोगिनियों की

ऋतुचर्या के लिए उन्होंने 'षड-ऋतु वर्णन', सम्बन्धी एक बड़ा साहित्य ही रच डाला। लोक गीतों की प्रणाली बीसलदेव रासो से ही चल पड़ी थी। जायसी के पद्मावत ने उसे अपनाया। रीतिकाल में इस प्रणाली को प्रश्रय मिला। स्त्री के अंगों के उपमान के लिए प्रकृति की खोज की गई। इस काल के कवि प्रकृति के अस्तित्व की चिन्ता न करके नायिका के सौंदर्य के सहायक साधनों की चिन्ता करते थे। ये प्रकृति को नारीमय और नायिकाओं के इशारे पर नाचने वाला समझते थे।

> नील परतन पर घन से घुमाय राखौ,
> दन्तन की चमक छटा-सी विचरति हौं।
> हीरन की किरनें लगाई राखौं जुगनू सी,
> कोकिल पपीहा-पिक बानी सों भरति हौं।
>
> —देव

> फूलन में, केलि में, कछारन में, कुंजन में,
> क्यारिन में कलित कलीन किलकन्त हैं।
>
> —पद्माकर

> फूले हैं कुमुद, फूली मालती सघन घन,
> फूलि रहे तारे मानो मोती अनगन हैं।
>
> —सेनापति

> रुक्यो सांकरे कुंजमग करत झांझ झुकरात।
> मन्द मन्द मारुत तुरंग खूंदित आवत जात॥
>
> —बिहारी

इससे स्पष्ट है कि प्राचीन हिन्दी कविता में प्रकृति चित्रण कुछ अपने ही बंधे हुए ढंग पर हुआ है।

हिन्दी कविता का प्रारम्भ विदेशी संघर्ष की गोद में हुआ है। उस अशान्त वातावरण में कवियों को प्रकृति के सौंदर्य की ओर झांकने का न मिला। इसके उपरान्त का जितना भी साहित्य है वह नैति- रंग से रंगा हुआ था। संत साहित्य ने प्रकृति को सदा उपेक्षा

की दृष्टि से देखा । सूफ़ी कवि चूंकि रहस्यवादी थे । अतः उनकी दृष्टि में प्रकृति परमात्मा सत्ता की ही अभिव्यक्ति है । उन्होंने विरह को प्रेम की चरम अभिव्यक्ति माना है, इससे उनको प्रकृति भी क्रन्दनशीला पुरुष परित्यक्ता, आजीवन विरहिणी है । भक्ति काव्य की दृष्टि अपने आदर्शों के कारण संकीर्ण हो चुकी है । रीतिकाल की तुलना अंग्रेजी के पोप और ड्राइडन के काल की कविता से की जाती है । उस समय जो कविता हुई, वह पूर्णतयाः नागरिक थी । उसका विकास नगरों में हुआ था । रीतिकाल की प्रकृति उस काल के कवि की दासी है और उसके पुकारने पर वेश्या की तरह अनैसर्गिक शृङ्गार करके उसके सामने इठलाती हुई चली आती है । वह गृहिणी का सरल रूप नहीं ले सकी है ।

परन्तु आधुनिक युग में प्रकृति को काव्य में स्वतन्त्र रूप से स्थान मिला । इस युग में प्रकृति को काव्य परिपाटी से उन्मुक्त करने वाले प्रथम कवि पं० श्रीधर पाठक हैं जिनको प्रेरणा 'गोल्ड स्मिथ की पुस्तकों' के द्वारा मिली । तनिक उनकी काश्मीर-सुषमा को देखिये—

फल फूलनि छवि छटा हुई जो बन उपवन की,
उदित भई मनु अवनि उदर सों विधि रतनन की ।

द्विवेदी युग के कवि पाठक जी की रचनाओं से प्रभावित तो अवश्य हुए परन्तु उनमें से अधिकाँश प्राकृतिक वस्तुओं के परिगणन से आगे नहीं बढ़ पाये । इसी समय कुछ पारखी कवियों ने प्रकृति का अच्छा अध्ययन किया और अपने निरीक्षण के परिणाम स्वरूप उसका रूप स्थिर कर दिया । हिन्दी में प्रकृति का विस्तृत, अलंकृत चित्रण पहले पहल अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔधजी ने किया । उनका महाकाव्य 'प्रिय प्रवास' प्रकृति के अत्यन्त सुन्दर चित्रों से भरा पड़ा है ।

दिवस का अवसान समीप था,
गगन था कुछ लोहित हो चला ।

तरु-शिखा पर थी अब राजती,
कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा ॥

मैथिलीशरण गुप्तजी के महाकाव्य 'साकेत' में उनकी प्रकृति चित्रण-कला का रमणीय रूप देखिये—

नींद के भी पैर हैं कँपने लगे,
देखलो लोचन कुमुद मुँदने लगे।
वेषभूषा साज ऊषा आ गई,
मुख कमल पर मुस्कराहट छा गई ॥

पं० रामचन्द्र शुक्ल जी प्रकृति के सामान्य रूपों को चित्रित करने में भी सिद्धहस्त हैं। वे गुलाब को भी स्नेह करते हैं, और करील झाड़ियों को भी। इनकी निरीक्षण शक्ति अत्यन्त सूक्ष्म है।

इनके अतिरिक्त छायावादी कवियों ने प्रकृति को देखने का दृष्टिकोण ही बदल दिया है। अंग्रेजी कवियों के समान वे भी चिल्लाये—'प्रकृति की ओर लौटो' पश्चिमी काव्य ने हमारे कवियों को प्रकृति की ओर विशेष रूप से खींचा है। प्रकृति और उसके उपादानों के प्रति आकर्षण (पन्त), प्रकृति को विराट् विस्तृत चित्रपट पर अंकित करने का प्रयास (निराला), अभिसारिणी के सुन्दर सजल चित्र (प्रसाद, पन्त) प्रकृति में रहस्यमय शक्ति का अनुसंधान एवं आरोप (रामकुमार वर्मा, महादेवी वर्मा), सहज सरल परिचित नागरिक एवं ग्रामीण चित्रण (भक्त, नेपाली)—ये उनके केवल कुछ प्रयोग हैं। छायावाद काव्य में प्रकृति को नारी का रूप दिया है। यह कहने में भी अत्युक्ति न होगी कि आधुनिक काव्य में प्रकृति को श्रेष्ठ स्थान मिला है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि आधुनिक काल के प्रत्येक कवि ने प्रकृति का राग गाया है। प्रकृति के राग गाने वालों का भी एक वर्ग है जिसको समाज प्रकृतिवादी कह कर पुकारता है। जैसे—

बार-बार से उठ रहा धुआँ अपने घूमते कारी कारी।
चौराहों में झुण्ड बैठ जाने कहूँ घटके मनचारी। (श्री दिनकर)

"भक्त" ने नूरजहाँ में प्रकृति को बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है। "नैपाली" की 'नौका विहार' प्रकृति की कली के रूप में साहित्य पौधे पर खिल रही है।

द्विवेदी युग तक प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करली गई थी। आर्थिक संघर्ष से छुटकारा पाने के कारण से ही कवियों ने प्रकृति को अपनाया था। इस नवीन युग के कवियों ने जीवन की इतिवृत्तात्मकता, तथा रूक्षता और कटुता के प्रति भावुक विद्रोह किया और अपनी भावनामयी प्रकृति के कारण उसकी अपेक्षा कर उन्होंने उसे आँख की ओट में करना चाहा। जिससे वे शीघ्र ही प्रकृति-रहस्यवादी हो गये। इनकी प्रकृति इनकी कल्पना में रहती है। इन नवीनतम कवियों ने प्रकृति के प्राकृत रूप की ओर दृष्टिपात किया है। इन्होंने प्रत्येक दिन के दृश्यों में सौंदर्य भर कर उपेक्षित क्षेत्रों में प्रवेश किया और उन्हें साहित्य प्रेमियों के सम्मुख रखा है। कविता में यथार्थवाद की जो नव धारा आ रही है, उसने प्रकृति के अन्यतम प्रदेशों में प्रवेश किया है

(सम्पादक)

ललित कला और जीवन

विश्व को सौन्दर्य और उपयोग की विशेषता प्रदान करने वाली सामग्री को कला कहते हैं। प्राकृतिक तथा मानव दोनों ही सृष्टि में हम कुछ-न-कुछ उपयोग अथवा सौन्दर्य पाते हैं। कला के ये दोनों गुण सब में मिलते हैं इसलिए जीवन का इससे घनिष्ट सम्बन्ध है।

मानव अपने बाल्य-काल से ही अतृप्त अधरों, आतुर हृदय तथा सचेष्ट प्रयत्नों से आनन्द और सौन्दर्य की खोज में भटकता रहा है। क्योंकि इस कलारूपी अप्सरा के मुख से हा उसका हृदय आनन्द से विभोर हो उठता है। कला की सृष्टि और उसका विकास करना उसके जीवन का आदर्श है। उसके जीवन का जो अंश है, जीवन में जो कुछ 'जीवन' है वह कला है। कला से रहित जीवन विस्तृत मरुभूमि है।

आनन्द के द्वारा—इस संघर्षमय विश्व के अन्दर द्वेष की भावनाओं से प्रेरित मानव, विश्वासघात और प्रवंचना से पीड़ित मानव, स्वार्थ और धोखे से आहत मानव, स्नेह ममता-माया जाल में भटकता हुआ मानव आनन्दमय विश्व को देखने की लालसा में है। उसने अपनी लालसा को पूर्ण करने के लिये ही इस कला का विकास किया है। इसी आनन्द की प्राप्ति के लिए तो आज मानव पागल हो उठा है। उसकी आनन्द की खोज ही इस कला की व्याकुलता है। कला मानव की आनन्द प्राप्ति की प्यास को बुझाती है।

सौन्दर्य के द्वारा—मानव सौन्दर्योपासक प्राणी है, वह प्रत्येक वस्तु को सुन्दर से सुन्दर रूप में देखना चाहता है। वह इसके लिए भी इतना ही पागल है जितना आनन्द के लिए। हो भी क्यों न? सौन्दर्य ही सत्य है और सत्य ही आनन्द। जो सुन्दर है, असुन्दर नहीं हो सकता। उसका सौन्दर्य तो प्रकृति के समान दिन पर दिन नवीन होता रहता है। अतः सुन्दर सत्य भी हुआ। सत्य ही कल्याणकारी है। इससे सुन्दर, शिव भी है। इसके लिये मानव हृदय का तड़पना स्वाभाविक है।

आनन्द और सौन्दर्य मानव जीवन के वरदान और अभाव के पूरक हैं। कला जीवन की पूर्णता है। कला मानसिक जीवन की जागृति का साकार आनन्दमय सुन्दर रूप है। कला को मानसिक विकास का इतिहास न कहकर काव्यमय स्वरूप कह सकते हैं। इसकी प्रेरणा से ही हृदय स्वप्नों के पैरों पर उड़ान भरकर उस आनन्दमय अदृश्य विश्व की थाह लाता है, जहाँ सबकी पहुँच नहीं होती। किसी राष्ट्र को कला के विकास से हमें पता लग जाता है कि वह जीवन के प्रति कितना जागरूक है। उसका निरीक्षण कितना सहज और गहरा है। जीवन को कितना समझ चुका है। यूनान में वास्तु कला, मूर्तिकला और चित्रकला उत्पन्न हुई और उन्नति की ओर अग्रसर हुई पर

काव्य और संगीत कला भारत की अपेक्षा कम उन्नत रही। भारत कला की आत्मा तक पहुँच चुका है। इसलिये यह उसकी दार्शनिकता से भली भाँति परिचित है।

ज्यों-ज्यों मूर्ताधार की न्यूनता होती जाती है त्यों-त्यों कला का स्थान ऊँचा होता जाता है। मूर्ताधार त्याग, केवल भावनामय रह जाना ही कला का अन्तिम ध्येय है। अतः कला और जीवन का लक्ष्य एक ही है।

आज बहुत से विद्वानों के मुख से यह सुनने में आता है कि 'कला कला के लिये है।' जीवन से इसका सम्बन्ध नहीं। यह तो एक स्पन्दनहीन, मृत और तम पुंज ही है। इस वाक्य को कहने वाले कला और जीवन से बिल्कुल अनभिज्ञ हैं। कला मानव जीवन की आनन्द की अभिव्यक्ति कराती है। मानस उठने वाले वेगों को, साकार रूप देती है। तो क्या आनन्द का जीवन से सम्बन्ध नहीं ? भावनाओं और हृदय की तरंगों का जीवन में कोई भाग नहीं ? ये जीवन के वास्तविक तत्व हैं। हृदय रंजन करना कला का उद्देश्य है।

कला और जीवन दोनों एक ही पदार्थ हैं। कला जीवन की पूर्णता और विकास है। यह जीवन की आत्मा है। आनन्द और सौंदर्य की प्राप्ति मानव जीवन का ध्येय है। इसको प्रदान करने वाली कला है। और इसकी प्रेरणा से ही जीवन सजग रहता है।

(श्री जितेन्द्र कुमार 'नीरज')

नौका विहार

रविवार का दिन है—दफ्तरों और कॉलिजों में अवकाश है फिर नीलाम्बर में सघन घटाएँ उमड़ रही हैं। काले काले, कजरारे, ऊँदे-ऊँदे सलोने, लोने, स्वच्छ और सुन्दर समुद्र फेन से मेघ नीलाम्बर में उन्मत्त गज के समान तैर रहे हैं। और अपने सजल अम्बक से नन्हीं २ बूँदें

छलका रहे हैं । शीतल पवन सुगन्ध फहराती, मादकता बिखरा
कुंजों में मीठा संगीत जगाती विहर रही हैं । मेघों की उम
महारें, नन्हीं बुन्दियों की रिमझिम बौछारें सृष्टिमें जीवन डाल
विहग-बालाएं सहमी सकुचाईं, पंख समेटे नीड़ों में बैठी पावस
प्रसन्न अधरों और तृप्त नयनों से निहार रहीं हैं और सभी मित्र
संगी साथी उपस्थित—फिर भी इस स्वर्ण अवसर से वञ्चित र
तो मूर्खता न सही यौवन के प्रति उपेक्षा का भाव अवश्य है

हम मित्र गण यमुना किनारे आये । नौका तैयार थी । प्र
और आनन्द के कुतूहल में सब धम २ नौका में कूद पड़े । नौरज
चार डांडे लगाईं, नौका यमुना के मध्य आ गई ।

हमारी नौका उन्मत्त गज सी झूमती झामती तरंगिणी की
तरंगों पर विचर रही थी । हम मित्र गण विस्मृति मदिरा का पान
अर्ध खुले नेत्रों में स्वप्नों का भार संभाले पड़े आ रहे थे और
पुलकित सा नौका संचालन कर रहा था ।

मत्स्य की हल्की सी टक्कर ने हमारे सुन्दर स्वप्नों को विनेर
और सोचा नौका विहार और शांति का साम्राज्य नीरज ने गाने
प्रस्ताव किया और समर्थन भी उसे मिल गया । सुदेश ने इसका वि
किया । जानती थीं, उसी के सिर पर यह बला आ पड़ेगी । पर
प्रस्ताव सर्व सम्मति से पास हो ही गया ।

विवश हो सुदेश को गाना आरम्भ करना ही पड़ा ।

> यह जीवन की काली रजनी ।
> सब ओर अंधेरा छाया है ॥
> जग ज्योतित , पर उर पर तो ।
> तम घनी भूत हो आया है ॥

मदमाती समीर, शांत दिशाएं, सिरों पर आच्छादित नीलाम्
मुक्ता बरसाती पावस की नन्हीं २ बूंदें और सुदेश कोकिला का गाना-

स्वर्ग पैरों पर लौटने लगा, सुरीली ध्वनी निराला समय, चारों
आनन्द बरसाने लगा।

मित्र मंडली मुग्ध हो उठी—सुदेश का स्वर कम्पन शांत वाता
मे स्पन्दित होने लगा वह निरीह कोकिला सी तरंगिणी के वक्षस्थ
तैरती नौका में तड़प उठी।

गीत समाप्त हुआ, सभीने मुक्त कंठ से प्रशंसा की और मो प्र
भार से अवनत हो संकुचा गई—अबला जो ठहरी।

नौका बहुत दूर निकल चुकी थी—मेरी घड़ी में एक बज
था। समय की अधिकता के कारण नौका वापस की गई। बहा
ओर तरंगों पर फिसलती हुई नौका धी गति से घाट की ओर
लगी।

तरंगिणी के हृदय को कुचलती हुई, मदमस्त गज के समान
हुई नौका बड़ी तीव्र गति से आगे बढ़ रही थी और हम मित्र
मुस्कराते एक दूसरे को देखते घाट की दूरी कम कर रहे थे।

नौका किनारे आ गई—हम सब वापस घर आये, उस सम
बज चुके थे।

(सुश्री राधा कुमारी स

छायावाद रहस्यवाद

आज का छायावाद पूर्व तथा पश्चिम की भावनाओं का
हुआ रूप है। पश्चिम वालों ने जो भौतिकवाद को अपनाकर
का तूफान चलाया उसी की प्रतिक्रिया के रूप में भारतीय क
एकमात्र भौतिकवाद को न लेकर आत्मिक शान्ति के तत्व का
ग्रहण किया। पाश्चात्य जाति ने हमारे भारत में स्वर्ग (
उन्नति) का प्रचार किया उसी के प्रभाव से उसके प्रति वि
भावना उत्पन्न हो गई। उसी भावना को लेकर जो कवि साहि

में उतरे वे छायावादी कहलाये, इसमें आत्मा तथा परमात्मा की स्वतन्त्र सत्ता विद्यमान रहती है। अतः इसकी निम्न परिभाषायें कर सकते हैं:-

१—साधना के क्षेत्र में जो द्वैतवाद है उसी को काव्य क्षेत्र में छाया वाद कहते हैं।

२—छायावाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रकृति का प्रकाशन है, जिसमें दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निःस्पन्द सम्बन्ध जोड़ सके।

३—असीम में ससीम की अनुभूति भी छायावाद कहलाती है।

४—ऐसी काव्य रचनायें जिनमें विराट की झाँकी प्रदर्शित होती है छायावाद कहलाती है।

५—प्राकृतिक वस्तुओं में एक मानवता का अनुभव करना तथा उस अनुभव को काव्य रचनाओं में व्यक्त करना ही छायावाद है।

६—प्रकृति में मानवीय भावनाओं की छाया को देखना छायावाद कहलाता है।

उक्त परिभाषाओं की कसौटी पर जब हम साहित्य कोकिला महादेवी वर्मा की 'मधुर मधुर मेरे दीपक जल, तुम मुझ में परिचय क्या।' आदि कविताओं को देखते हैं तो वे सुवर्ण के समान उज्ज्वल निकलती हैं—क्यों कि वे छायावादी कविताएँ हैं।

रहस्य-वाद

मानव प्रारम्भ से ही आविष्कारक रहा है। वह उस प्रत्येक वस्तु का जो उसके जीवन से सम्बन्धित है—सूक्ष्म से सूक्ष्म रीति से निरीक्षण करना चाहता है। जब वह यह सब कुछ जान जाता है तो जगत निर्माता की विस्मय से भरपूर छटा का दिग्दर्शन करके मुग्ध हो उठता है—उस मुग्धता में विस्मय की ज्योति है। विस्मय ज्योति में उत्सुकता की झलक। यही उत्सुकता 'प्रेमी' की जिज्ञासा तथा परमपद को स्पष्ट करने की अभिलाषा को जन्म देती है। आत्मा व प्रकृति के रहस्य

उद्घाटन की भावनायें ही रहस्यवाद की भावना है। हिन्दी साहित्य में कबीर, जायसी, तुलसी, सूर मीरा, हरिकृष्ण प्रेमी, प्रसाद इत्यादि कवियों ने आत्मा परमात्मा के मिलन का गीत गाया है। रहस्यवाद में परमात्मा के सम्मुख आत्माकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं होती है। इसलिये इसकी परिभाषा निम्न शब्दों में कर सकते हैं।

१—ज्ञान क्षेत्रमें जो अद्वैतवाद है वही भाव क्षेत्रमें रहस्यवाद है।

२—प्रकृति में मधुरतम व्यक्तित्व का आरोप कर आत्म निवेदन कर देना ही रहस्यवाद कहलाता है।

३—अनन्त के साथ आन्तरिक सम्बन्ध का अनुभव करना और उन्हीं अनुभवों को काव्य रचना में व्यक्त करना ही रहस्यवाद कहलाता है।

४ प्रेम की अमूल्य निधि को लिये हुए आत्मा का परमात्मा की ओर जाना रहस्यवाद कहलाता है।

रहस्यवाद की तीन दशायें होती हैं—हरिकृष्ण प्रेमी जी के निम्न पद्यों में रहस्यवाद की तीनों दशायें प्रत्यक्ष हो जाती हैं।

१—बैचेनी का अनुभव करना—जैसे

'नभ के पर्दे के पीछे-करता है कौन इशारे,
सहसा किसने जीवन के खोले बन्धन सारे।

२—व्याकुलता को लेकर-अनन्त से आत्मा का सम्बन्ध बताया गया हो जैसे—

तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी,
देखलूँ उस ओर क्या है।
जा रहे जिस पंथ से युग,
कल्प उसका छोर क्या है॥

३—माया का पर्दा हट जाने पर जैसे—

इन बाह्य चक्षुओं में तो,
अब प्लावन सा है आया।

तुम गये सघन अन्तर के,
जब उसने रूप दिखाया ॥

(श्री जितेन्द्र कुमार 'नीरज')

जयशंकर प्रसाद और उनकी काव्य-धारा

कवि जयशंकर हिन्दी साहित्य के लिये देवी प्रसाद थे। इन्होंने ३ हिन्दी साहित्य की सेवा की है वह सर्वदा अमर विमुग्धकारी, मधु और कल्याणमयी रहेगी। इन्होंने हिन्दी साहित्य को विश्व साहि रूपी गगन का सितारा बना दिया है—जिसको दूसरे छूने में भी अस मर्थ हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं में यौवन और उन्माद, प्रेम औ संयोग शृंगार आदि का जहाँ विशद वर्णन किया है तो दूसरी ओ निराशा और वियोग, वेदना और रुदन विरह और क्रन्दन में भी इनकी लेखनी का चमत्कार देखने योग्य है। इन्होंने अपनी रचनाओं में मानव हृदय में उठने वाले भावों का प्राधान्य रखा है। इनकी कविताओं में युद्ध भी है और समझौता भी, राग भी हैं और विराग भी।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अवसान के पश्चात् हिन्दुओं के पवित्र स्थान काशी ने पुनः हिन्दी साहित्य के नवीन युग के निर्माता एक महान् कलाकार प्रसाद जी को जन्म दिया। इनका जन्म सम्पन्न परिवार में हुआ था। जिसके कारण प्रसाद जी अल्प आयु में ही कविता और साहित्य से परिचित हो गये थे।

मात पिता का सहारा अल्प आयु में ही छूट गया—इसके कारण यह अपनी शिक्षा कालिज से न पाकर घर पर ही पा सके। इन्होंने संस्कृत का गहरा अध्ययन किया जिसके कारण इनकी रचनाओं में भाषा की कठिनाई सी प्रतीत होती है। इनकी भावना दर्शन शास्त्र और बौद्ध धर्म से सर्वदा प्रेरित रही, अल्प आयु में तीर्थों के भ्रमण से ...ति सौंदर्य, पर्वत के अनुपम दृश्य इनके हृदय में घर कर गये थे।

इन्होंने उनका अपनी अनेक रचनाओं में सजीव चित्रण किया है। पुष्पों के तो ये सर्वदा प्रेमी रहे।

इनके तीन विवाह होने पर भी साहित्य में इनकी रुचि दिन पर दिन बढ़ती ही गई। ये भारतीयता और उसकी संस्कृति के पोषक थे। प्राचीन संस्कृति की झलक इनके प्रायः सभी नाटकों में मिलती है। उपन्यासों में भी सामाजिक जीवन का बड़ा अनूठा वर्णन किया है।

अपने पूर्वजों के इतिहास का बड़ी सूक्ष्मता से अध्ययन किया था। इन्होंने साहित्य की जो गुप्त सेवायें की हैं उसका हिन्दी साहित्य सर्वदा ऋणी रहेगा। इसलिये इनको हिन्दी के सर्व गुण सम्पन्न कलाकार का उपाधि दी गई है।

ये सक्रांतिकालीन कवि थे। जिस समय इनका कदम साहित्य क्षेत्र की ओर उठा उस समय भारतेन्दु युग का अन्त और द्विवेदी युग का आरम्भ हो चुका था। जब कि नवीनता और प्राचीनता का घोर संग्राम चल रहा था। यह परिवर्तन का युग था—काव्यों की भाषाओं में परिवर्तन हो रहा था यह समय बड़ी दुविधा का था—इन्होंने अपने उत्साह को शिथिल न होने दिया और निर्भय होकर आगे की ओर बढ़ते ही गये। प्रारम्भ में इन्होंने ब्रजभाषा में रचनायें कीं। ये द्विवेदी युग से सर्वदा बाहर रहे। अवसर पाते ही इन्होंने नवीन शैली और भावों पर खड़ी बोली में कवितायें लिखनी आरम्भ कर दीं। और अपने साहित्य को समाज के सम्मुख पहुंचाने के लिये 'इन्दु' नामक पत्रिका की स्वयं स्थापना की।

इनकी कविताओं में असीम वेदना, और विरह व्यथा है। इनकी काव्य वीणा झंकृत हो उठी है फिर भी इनके तारों में निराशा का स्पन्दन नहीं है। रीति काल की शृंगारिक कविताओं की प्रतिक्रिया द्विवेदी युग में हुई और द्विवेदी कालीन कविताओं की प्रतिक्रिया प्रसाद युग में छायावाद के रूप में हुई। इसके अतिरिक्त प्रगतिवाद के कुछ चिन्ह भी इनकी कविताओं में पाये जाते हैं। आपके साहित्य ने ही

निम्न वादों को जन्म दिया। रहस्यवाद, छायावाद, यथार्थवाद, भोग वाद, निराशावाद, नियतिवाद और प्रेमवाद।

इनकी २० वर्ष तक की कवितायें यथासमय चित्रधार में प्रकाशित होती रहीं इनकी करुणामयी कविताओं का संग्रह 'कानन कुसुम' नाम से जनता के सन्मुख आया इनकी अन्य रचनायें इस प्रकार हैं।

आँसू

विरहता की घड़ियों में लिखी गई प्रसाद की 'विप्रलंभ शृंगार की सर्वोत्कृष्ट रचना है। इस ग्रन्थ में कवि की विकल भावनाएं और उसके हार्दिक उद्गार आँसू बनकर छलक उठे हैं। फिर भी इस रुदन में कवि जीवन समाप्त नहीं कर देता, इससे तो वह ऊपर उठता है और जीवन से समझौता करता है। विरह में रहकर सुख दुख को झेलने की शक्ति को उत्पन्न करके पुर्नमिलन की आशा करता है:—

स्मृति-समाधि पर होगी,
वर्षा कल्याण-जलद की।
सुख सोवे थका हुआ-सा,
चिंता छुट जाय विपद की।

इन पंक्तियों ने कवि को जीवन रुदन से बहुत ऊँचा कर दिया है। परन्तु कुछ आलोचक 'आंसू' में रहस्यवाद को ढूंढने की चेष्टा करते हैं' परन्तु यह सब व्यर्थ'। क्योंकि यह अलौकिक विरह की गाथा नहीं अपितु लौकिक प्रेम की अमर कथा है। भौतिकता में आध्यात्मिकता का सजीव दर्शन कराना प्रसाद का ही कार्य था। सचमुच 'आँसू' में प्रसाद प्रसाद बन गये हैं।

प्रेम पथिक

प्रेम की सच्ची अनुभूति के स्वरूप को लिये हुये यह प्रसाद जी का श्रेष्ठ काव्य है। इन्होंने जीवन रूपी पोखर से भी प्रेम रूपी सरिता की लहर बहा दी है। इन्होंने अपनी लेखनी द्वारा बता दिया है कि प्रम

प्रेम दुःख और कठिनाइयों का पथ है, त्याग और तपस्या का जीवन है। प्रेम पथको बलिदान का पथ बताया है-इस पथ के अनुयायी को विश्राम का अवकाश भी नहीं मिल पाता। प्रेम के इस मार्ग का प्रदर्शन कवि ने कितने वास्तविक शब्दों में किया है:—

"इस पथ का उद्देश्य नहीं है,
श्रान्त भवन में टिक रहना।
किन्तु पहुँचना उस सीमा पर,
जिस के आगे राह नहीं॥"

झरना

प्रसाद जी का यह सर्व प्रथम ग्रन्थ छायावाद को लिये हुए है। हृदय के स्नेह की कोमल अनुभूतियाँ इसमें झरने की तरह फूट पड़ी हैं। इस ग्रन्थ की रचना में स्वयं प्रसाद जी यौवन और प्रेम के अदृश्य प्रवाह में बह गये हैं-अपनी विवशता को प्रत्यक्ष दिखाते हुए कहते हैं—

"करता हूँ जब अभी प्रार्थना,
कर संकलित विचार।
तभी कामना के नुपुर की,
हो जाती झंकार॥"

'जड़ प्रकृति को मानव का रूप बना कर उसके साथ सम्बन्ध स्थापित करने की प्रवृत्ति ही 'छायावाद' कहलाती है। कवि ने इस ग्रन्थ की रचना में इसी रीति को पूर्ण रूप से अपनाया है।

लहर

यह प्रसाद जी की बड़ी सुन्दर रचना है। इस में इनकी निराशा आशा की लहर बन कर छा गई है। वह इसकी रचना में भावुक बन कर प्रेममें और भी गम्भीर होते गये हैं। इसमें उन्होंने सांसारिक संघर्ष से दूर-इतनी दूर जहाँ कोई और न पहुँच सके-जाने की इच्छा इन शब्दों द्वारा प्रगट की है—

'ले चल भुलावा देकर,
मेरे नाविक धीरे, धीरे'

यह तो इन आशा-निराशा के झमेलों से दूर भागना चाहता है। इस कृति में इन्होंने प्रकृति चित्रण बड़ा अनूठा किया है—

बीती विभावरी जागरी।
अम्बर पनघट में डुबो रही,
तारा घट — ऊषा—नागरी।
खग-कुल-कुल-कुल-सा बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा।

कितना सुन्दर प्रकृति का वर्णन है-शब्दावली कितनी उपयुक्त और रस कितना भरपूर!

कामायनी

जीवन के प्रति, जागरूकता, प्रेम की सरसता यौवन का उल्लास और अतीत के अमिट प्रेम और जीवन की वास्तविक विवेचना की प्रेरणा से ही जयशंकर प्रसाद जी ने हिन्दी को 'कामायनी' जैसा अमर महाकाव्य प्रदान किया है। इसमें आशा-निराशा, सुख-दुख, प्रेरणा प्रवृत्ति के अत्यन्त रोमांचकारी और मनोवैज्ञानिक चित्रण हैं। यह महाकाव्य प्रसाद जी की अन्तिम किन्तु सर्वोत्कृष्ट रचना है-यह वैदिक काल की प्रलय की गाथा को आधार मान कर मानव सृष्टि के इतिहास की कथा में प्रबन्ध काव्य के रूप में हमारे सम्मुख आया है। यह काव्य हिन्दी साहित्य ही में नहीं अपितु विश्व साहित्य में अपना जोड़ नहीं रखता। 'कामायनी' की रचना के पश्चात् ही इनके हृदय को शान्ति की संजीवनी बूटी मिली।

कथा

देवताओं की उच्छृंखलता से होने वाली प्रलय में मनु अकस्मात् बच कर चिन्तित मुद्रा में हिमालय की एक शीतल शिला पर बैठे अपने वैभव को स्मरण कर रहे हैं। धीरे प्रलय प्रवाह कम हो जाता

होकर स्वच्छ पृथ्वी निकल आती है—वे वहाँ से उतर कर पृथ्वी पर आते हैं और यज्ञ करते हैं—उसके यज्ञ शेष अन्न को दूर छोड़ आते हैं कि मेरे समान ही कोई और प्राणी बच निकला हो और वह इससे अपनी क्षुधा पूर्ति कर सके। अन्त में काम की बालिका श्रद्धा उनके अशांत जीवन में शांति का संचार करती है और काम के परिचय कराने पर वे उससे अनुराग करने लग जाते हैं।

इससे वासना का जन्म होता है किन्तु श्रद्धा लज्जा की ओढ़नी ही ओढ़ना चाहती है। मनु यज्ञ करते हैं वो अपने को समर्पण कर देती है।

शिकारी मनु को श्रद्धा की भावी सन्तान के लिये उत्सुकता तनिक भी नहीं भाती। वो ईर्ष्या का पल्ला पकड़े उसे छोड़ सारस्वतनगर में इड़ा से मिल जाते हैं। वे यहाँ के शासक बन कर इड़ा पर बलात्कार करना चाहते हैं जिससे उन्हें देवों से संघर्ष करना पड़ जाता है।

श्रद्धा यह सब कांड अपने स्वप्न में देखती है और अपने पुत्र मानव को लेकर उसकी खोज में निकल पड़ती है। मनु को घायल अवस्था में देख वह इड़ा से क्षुब्ध हो उठती है। श्रद्धा को देखते ही वह निर्वेद की इच्छा को मन में धारण कर वो वहाँ से भाग खड़ा होता है। श्रद्धा मानव को इड़ा के पास छोड़ स्वयं उसकी खोज में भटकती है—उनसे मिलने पर उन्हें शिव का दर्शन कराती है। सारा रहस्य समझ कर अन्त में उन्हें आनन्द की प्राप्ति होती है। इतने में मानव को संग लिये इड़ा भी वहाँ पहुँच जाती है।

कामायनी का मनोवैज्ञानिक आधार

प्रसाद जी ने कामायनी का नाम हृदय की भावनाओं पर रख कर उसकी जटिल कथा को १५ भागों में बाँटा है—(१ चिन्ता २) आशा (३) श्रद्धा (४) काम ५) वासना ६) लज्जा (७) कर्म (८) ईर्ष्या (९) इड़ा (१०) स्वप्न (११) संघर्ष (१२) निर्वेद (१३) दर्शन (१४) रहस्य (१५) आनन्द।

कामायनी द्वारा मनोविज्ञान का सुन्दर चित्रण सर्गों के नाम क
के साथ मनोवेगों के रूप में पूर्ण हुआ है। मानवता के विकास के लि
किस पथ का अनुसरण करना पड़ा—उस पथ की भावनाओं से मान
को कैसे और कितना संघर्ष करना पड़ा। आनन्द को प्राप्त करने
लिए उसको मन की दशायें कैसी हो जाती हैं—इन्हीं सब बातों क
जयशंकर प्रसाद जी ने कलात्मक रूप में कामायनी में दिखाया है
घटनायें और प्रकृति वर्णन तो इन मनोवैज्ञानिक विचारों की व्याख्य
सी प्रतीत होती है। इन्हीं के क्रमिक विकास द्वारा मानवता का विकास
दिखलाना प्रसाद जी का लक्ष्य रहा है।

अभाव के कारण मन में चिन्ता घर कर लेती है—इससे निराशा का जन्म होता है और मनु अपनी सत्ता को भी खो देना चाहते हैं—यह निराशा मनु के मन में कुतूहल को जन्म देती है—इसी के कारण मनु के जीवन में आस्तिकता का उदय होता है। जिससे उनके जीवित रहने की इच्छा होती है।

मनु के ऊपर वासना का विष असर कर चुका था—वह यह नहीं समझ सकता था कि यह यौवन की उद्दाम मस्ती तो चार दिनों की चाँदनी है। माँ बनने पर स्त्री की चंचलता क्षीण हो जाती है—इसी कारण श्रद्धा में मातृत्व किरण के आगुन हो जाने पर वो गम्भीर सी हो रही थी और उसके सौन्दर्य की चंचलता का स्थान उसका स्नेह ले रहा था। किन्तु अभागा मनु वासना का ही भूखा था। इसलिए वो उसकी चंचलता को अपने हृदय में बन्द रखना चाहता था। लेकिन इसमें वो असफल रहा। मनु की वासना क्षीण हो उठी—इस असफलता की ईर्ष्या ने उन्हें बुद्धि की ओर संकेत किया—जिसकी प्रतीक इड़ा है।

यह बुद्धि (इड़ा) मन (मनु) को भौतिक उन्नति की ओर आकर्षित करती है, जिसके आधार पर बुद्धिवाद पर आधारित कृत्रिमता का पूर्ण विकास हुआ। यहाँ भी मनु अपने को संयम की जंजीरों में न जकड़ सके। स्वयं नियामक के अहंकार को प्रश्रय देकर नियम को

उलंघन करने के कारण संघर्ष का श्री गणेश किया। वे स्वयं न मान कर दूसरों को उन नियमों को मनवाना चाहते हैं यही आजकल के संघर्ष का कारण है।

इस संघर्ष ने उनके मन में निर्वेद का संचार किया। क्योंकि ऐसी बहुत सी गाथायें हमारे सम्मुख हैं कि राष्ट्र के चोटी के क्रान्तिकारी व्यक्ति अन्त में सन्यास को ग्रहण कर लेते हैं। किन्तु इस वैराग्य में भी श्रद्धावृत्ति उनके साथ रहती है। फिर वे संसार के हित के लिए ग्रन्थों की रचना करते हैं—यही हित श्रद्धा है। कामायनी का मनोवैज्ञानिक आधार है।

जिससे हमें हार्दिक स्नेह होता है—कभी २ उसकी दुर्बलताओं पर हम क्षुब्ध हो उठते हैं—कभी २ उस पर स्नेह का सागर उड़ेल डालते हैं—इसको प्रसाद जी की लेखनी कितने सुन्दर शब्दों में प्रगट करती है।

> प्रिय को ठुकरा कर भी
>
> मन की माया उलझा लेती।
>
> प्रणय-शिला प्रत्यावर्तन में
>
> उसको लौटा देती॥

आज हम अपने स्नेही को ठुकरा कर भी उसके प्रति आकर्षित होते हैं जिस प्रकार सरिता की तरंगे शिला खण्डों से टकरा कर दुगने वेग से उठती हैं इसी प्रकार स्नेही को ठुकरा देनेपर भी हमारा हृदय दुगने वेग से उसके प्रति आकर्षित हो उठता है।

कामायिनी की दार्शनिक पृष्ठ भूमि

प्रसाद जी की कामायनी एक रूपक है जिसे मनु 'मन का' 'श्रद्धा' हृदय की पवित्र भावना तथा 'इड़ा' बुद्धि की प्रतीक है। प्रसाद जी के काव्य का यह आधार और उनकी यही दार्शनिक विचार धारा है। बुद्धि ने ही संघर्ष को उत्पन्न किया है। आज की विश्व कलह इसी का

परिणाम है जब मन बुद्धि की अग्नि से झुलस जाता है तब श्रद्धा ही उसे आनन्द तक पहुँचाने में उसका साथ देती है।

कामायनी में शैव तत्त्व

स्वयं प्रसाद जी शिवजी के उपासक थे। इन्होंने शिवजी के स्वरूप को कामायनी में बहुत ही विलक्षण रीति से उपस्थित किया है। कैलाश पति का प्रकृति द्वारा वर्णन करने पर भी प्रसाद जी श्रद्धा द्वारा त्रिपुरादि (त्रिपुर का शत्रु) शिव का रहस्य कामायनी द्वारा खुलवाते हैं।

कामायनी में नारी प्रतिष्ठा

इन्होंने कामायनी में स्त्री के अधिकारों की बड़ी विशद चर्चा की है—इसमें दो नारी पात्र हैं—कामायनी और इड़ा दोनों में नारीत्व. ममता कूट २ कर भरी है। कामायनी तो आदि से अन्त तक श्रद्धा ही रही। इड़ा भी कुछ रही है। जिस तरह एक बार मनु को कर्त्तव्योपदेश देते हुए श्रद्धा कहती है—

"तुम भूल गये क्या इस जीवन में,
कुछ सत्ता है नारी की।"

दूसरी ओर जब मनु इड़ा पर बलात्कार करना चाहते हैं उस समय वह क्रुद्ध होकर प्रजा पक्ष में अवश्य मिल जाती है किन्तु उसके घायल होने पर सेवा करती हुई कहती है—

"इसे दंड देने मैं बैठी,
या करती रखवाली मैं,
यह कैसी विकट पहेली,
कैसी उलझन पाली मैं।"

यही सच्चा नारीत्व है जो पुरुषत्व की अपेक्षा अपने आप सहस्र गुना ममतामयी है। यही पुरुष को उन्नति की ओर ले जाती है—नारी पुरुष के गले का हार है उसके जीवन का भार नहीं। यही प्रसादजी का कामायनी में सन्देश है।

कामायनी में श्रद्धा और बुद्धि

मानव इन दोनों के सामंजस्य से ही सफलता प्राप्त कर सकता है--

श्रद्धा अपने लाड़ले मानव को इड़ा के पास छोड़ते समय यही उपदेश देती है—

"यह तर्क मयी तू श्रद्धामय,
तू मनन शील कर कर्म अभय ।"

कामायनी में गांधीवाद

प्रसाद जी स्वयं अहिंसा के पुजारी थे। श्रद्धा मनुके निरीह पशुओं की हत्या पर उसे बहुत मना करती है --इनके कई स्थलों पर इस गांधीवाद की छाप स्पष्ट दिखाई देने लगती है।

प्रसाद जी का कामायनी में विरह वर्णन

प्रसाद जी ने जिस प्रकार का विरह वर्णन कामायनी में किया है वह हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है । सूर और जायसी के विरह वर्णन मे ऐन्द्रिय लालसा की पुट थी। रीति काल के कवियों के विरह वर्णन में एक प्रकार का खिलवाड़ था---किन्तु इनकी कामायनी के विरह वर्णन में किसी प्रकार की वीभत्सता नहीं आ पाती और किसी प्रकार की वासना की गन्ध मिलती है। विरह वर्णन की सन्ध्या का वर्णन करते हुए कवि ने जहाँ एक ओर सन्ध्या की उदासी से कामायनी की उदासी की सूचना दी है वहीं दूसरी ओर सन्ध्या समय जो मिलन का भाव सबों के हृदय में उठता है। पशु पक्षी घर को लौट रहे हैं—उसी विरह का वर्णन प्रसाद जी ने इस चार पंक्तियों में किया है।

विस्मृत हो वे बीती बातें,
अब जिन में कुछ सार नहीं।

वह जलती छाती न रही,
अब वैसा शीतल प्यार नहीं।
सब अतीत में लीन हो चली,
आशा मधु अभिलाषाएं।
प्रिय की निष्ठुर विजय हुई,
पर मेरी तो यह हार नहीं।

यह विरह वर्णन वेदना से भरपूर है; किन्तु संयम से संयमित है। इसका विरह वर्णन बड़ा ही उत्कृष्ट है।

प्रकृति चित्रण

प्रसाद जी ने इस ग्रन्थ में प्रकृति का चित्रण भी बड़ा सुन्दर किया है। इसके दोनों ही रूपों का वर्णन रोचक शैली में किया है। कोमल और भीष्म रूप दोनों के ही उदाहरण क्रम वार हैं—

'सिन्धु सेज पर धरा वधु,
अब तनिक संकुचित बैठी सी।" (कोमल रूप)

उधर गरजती सिन्धु लहरियाँ
कुटिल काल के जालों सी।
चली आ रही फेन उगलती,
फन फैला ये व्यालों सी॥

(भीषम रूप)

कामायिनी की भाषा शैली—

इसकी भाषा शैली मधुमय शब्दों से सनी हुई होने पर भी प्रसंगानुकूल ओजपूर्ण और सुगठित है। इसकी भाषा प्रसाद जी के भावों की अनुगामिनी है। यह शुष्क पांडित्य से रहित और बनावट से दूर है। इसमें प्रसाद गुण का कुछ अभाव रहा है। इन्होंने अपनी भाषा में पुराने अलंकारों का प्रयोग भी अनूठे ढंग से किया है।

कामायनी में छायावाद

प्रसाद जी की यह कृति छायावाद का नमूना है। लज्जा सर्ग इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। यह प्रकृति को भी मानवी के रूप में बड़े अनूठे ढंग से व्यक्त करते हुए लिखते हैं—

"पगली ! हां, संभाल ले,
कैसे छूट पड़ा तेरा अंचल !
देख बिखरती है मणिराजी,
अरी उठा, बे सुध ! चञ्चल"

कामायनी में रहस्यवाद

कामायनी में रहस्यवादी भावनायें भी बड़े अनूठे ढंग से व्यक्त की गई हैं। इतनी बड़ी प्रकृति के रूप में उसे विराट पुरुष के दर्शन करके उसके प्रति जिज्ञासु (रहस्य वाद को प्रथम कदम) मनु के रूप में कवि ने कितना मार्मिक लिखा है—

"सिर नीचा कर किसकी
सदा सब करते स्वीकार यहाँ।
सदा मौन हो प्रवचन करते
जिसका वह अस्तित्व कहाँ ?
हे अनन्त रमणीय ! कौन तुम
यह मैं कैसे कह सकता
कैसे हो, क्या हो ? इसका
तो भार विचार न सह सकता !

कामायनी की महत्ता

काव्य और महाकाव्य के शाश्वत माप दंड पर तौल कर देखने पर मैं जिस परिणाम पर पहुँचता हूँ—वह यह है कि भाषा भाव कथानक और चरित्र चित्रण सभी दृष्टि से कामायनी का हिन्दी क्षेत्र में एक

वह जलती छाती न रही,
अब वैसा शीतल प्यार नहीं।
सब अतीत में लीन हो चली,
आशा मधु अभिलाषाएँ।
प्रिय की निष्ठुर विजय हुई,
पर मेरी तो यह हार नहीं।

यह विरह वर्णन वेदना से भरपूर है; किन्तु संयम से संवलित है। इसका विरह वर्णन बड़ा ही उत्कृष्ट है।

प्रकृति चित्रण

प्रसाद जी ने इस ग्रन्थ में प्रकृति का चित्रण भी बड़ा सुन्दर किया है। इसके दोनों ही रूपों का वर्णन रोचक शैली में किया है। कोमल और भीषण रूप दोनों के ही उदाहरण क्रमवार हैं—

'सिन्धु सेज पर धरा वधू,
अब तनिक संकुचित बैठी सी।" (कोमल रूप)

उधर गरजती सिन्धु लहरियाँ
कुटिल काल के जालों सी।
चली आ रही फेन उगलती,
फन फैलाये व्यालों सी॥
(भीषण रूप)

कामायिनी की भाषा शैली—

इसकी भाषा शैली मधुमय शब्दों से सनी हुई होने पर भी अधिक उदय ओजस्वि और सुगठित है। इसकी भाषा प्रसाद जी के भावों की अनुगामिनी है। यह दुरूह पाण्डित्य से रहित और स्वच्छ है एवं है। इसमें प्रसाद गुण का कुछ अभाव रहा है। इन्होंने अपनी भाषा में उनके अर्थ-शब्दों का प्रयोग भी अनूठे ढंग से किया है।

कामायनी में छायावाद

प्रसाद जी की यह कृति छायावाद का नमूना है । लज्जा सर्ग इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है । वह प्रकृति को भी मानवी के रूप में बड़े अनूठे ढंग से व्यक्त करते हुए लिखते हैं—

"पगली ! हाँ, संभाल ले,
कैसे छूट पड़ा तेरा अंचल ?
देख बिखरती है मणिराजी,
अरी उठा, बे सुध ! चञ्चल"

कामायनी में रहस्यवाद

कामायनी में रहस्यवादी भावनायें भी बड़े अनूठे ढंग से व्यक्त की गई हैं । इतनी बड़ी प्रकृति के रूप में उसे विराट पुरुष के दर्शन करके उसके प्रति जिज्ञासु (रहस्यवाद को प्रथम कदम) मनु के रूप में कवि ने कितना मार्मिक लिखा है—

"सिर नीचा कर किसकी
सदा सब करते स्वीकार यहाँ ।
सदा मौन हो प्रवचन करते
जिसका वह अस्तित्व कहाँ ?
हे अनन्त रमणीय ! कौन तुम
यह मैं कैसे कह सकता
कैसे हो, क्या हो ? इसका
तो भार विचार न सह सकता !

कामायनी की महत्ता

काव्य और महाकाव्य के शाश्वत माप दंड पर तौल कर देखने पर मैं जिस परिणाम पर पहुँचता हूँ—वह यह है कि भाषा भाव कथानक और चरित्र चित्रण सभी दृष्टि से कामायनी का हिन्दी क्षेत्र में एक

महत्व पूर्ण स्थान है। इसमें प्रसाद के चिन्तन अनुभूति और कल्पना का सुन्दर समन्वय हुआ है। प्रसाद जी की यह बहुमूल्य निधि 'मानवता' का प्रबन्ध काव्य है।

(सम्पादक)

ऐसा मेरा घर हो

इस स्वार्थ मय जगत से दूर-बहुत दूर मेरा घर हो। स्वप्नमय मण्डल के विस्तृत चन्दोवे के नीचे शस्य श्यामला के वक्षस्थल पर मेरी पर्ण-कुटीर हो। उसके सन्मुख विस्तृत हो विशाल कच्चा प्रांगण। उस प्रांगण में एक ओर खड़ा हो एक नीम वृक्ष। मेरा द्वार प्रहरी हो एक कदम्ब, जो अपनी मनमोहक सुगन्धि से अतिथियों का स्वागत करे। घर से कुछ दूर हों लहलहाते हुए हरे भरे खेत और सामने ही हो फूलों से आच्छादित बगिया, जिसमें सर्वदा शीतल छाया खेला करती हो।

ग्रीष्म आवे, चाहे अपनी कितनी तप्त श्वासों को छोड़े। दिवाकर गगन से चाहे कितनी ज्वाला बरसावे, पर मेरे सुमन कानन की छाया में सर्वदा शीतलता ही बनी रहे और उसमें से सदा सलोनी सुगन्धि ही उच्छ्वासित होती रहे। मदमाती अलस दुपहरिया में कोई अनजान पथिक वहां विश्राम करले यही मेरी मनोकामना है।

पावस की उच्छ्वासों में झूमता हुआ, जल से अँचल को प्लावित करता हुआ, उन्मोदकता से पगों को धरता हुआ पावस आवे। सावन का सुखद मास हरियाली तीज—उमंगों को अपने अंतों में भरे हुए, नयनों में सरसता की मादकता को टपकाती हुई मृगनयनी आँगन में लगे नीम की डाल में झूला डालें। उनकी कोकिल कण्ठों से बाहर मल्हारों की तान फूट रही हो।

सावन के कड़े कड़े सुरीले पावन उनकी यौवन मादकता पर अमर

घुमड़ छा जावें। और वे आँचल में मोती उछालती, वसन सम्भालती सकुचाती इठलाती मेरी कुटीर में घुस आयें! ऐसा मेरा घर हो।

भादों आकर मेरे घर की कुछ दूरी पर खड़े धान के पौधों को जल प्लावित कर जावें।

शरद्-यामिनी की विदाई और शरद का आगमन! शरद प्रभात में नित्य उषा-कामिनी, स्वर्ण-मुस्कान छिटकाती, खग बालाओं के कण्ठों में मधुर संगीत जगाती, सुमनों के अधरों पर अरुण लावण्य छिटकाती और दूर्वादल को रोमांचित करती मेरे प्रांगण में उतरा करे। खुले वितान में धूप की चादर बिछे और उस पर क्रीड़ायें कर हम अपने शीत को दूर करें। ऐसा मेरा घर हो, जिसमें नित्य सुवर्ण दिवस बरसा करें।

शरद् का प्रस्थान हो और मेरी सुमन बगिया में वसन्त का नृत्य हो। घर के पीछे सघन अमराइयों में मधुकोयलिया 'कुहकू'-कुहकू' कर उठे। प्राची खिड़कियों से आम्र-मंजरी के गन्ध भार से झुकी समीर सर-सर करती आवे और सुप्त पुलकावलियों को जाग्रत कर जायें। वसन्त के क्रीड़ा-स्थल मध्य मेरा घर हो और मैं उसका स्वामी हूँ।

स्वर्ण-दिवस का अवसान हो और रजत-रजनी प्रांगण में नृत्य करे। अलस सन्ध्या की श्रान्त किरणें अपना अरुण अंचल समेट अस्ताचल के पार विश्राम ले लें और मेरे प्रांगण में दुग्ध-फेन-सी श्वेत ज्योत्स्ना की वर्षा होने लगे। मेरा घर रजत ज्योत्स्ना में स्नान करता हुआ मुस्करा रहा हो। पल्लवों को बेंधती हुई किरणें नीम की छाया के नीचे एक जाल-सा बुन रही हों और उसी जाल की छाया में बैठा मैं इस अलौकिक माध्मा का पान कर रहा हूँ।

सुमनों की भीनी-भीनी गन्ध मेरे घर में उड़ रही हो और बाहर कदम्ब अपनी सुगन्धि की मादकता से वातावरण को स्निग्ध कर रहा हो।

यामिनी आये, कृष्णपक्ष हो, नील गगन की चादर में टंगे सितारे झिलमिलाया करें और उनकी छाया मेरे प्रांगण में पड़ा करती हो।

प्रकृति की स्नेही गोद में, पवन के मृदुले कम्पनाओं में कुछ का
की छाया में, ज्योत्स्ना की मुस्कान में, हास्यरणागत के हृदय
शीश के पाद-प्रक्षालन के नीचे मेरा घर हो और मैं हूँ उसका
मात्र अधिकारी। (साधारण

चरित्र शक्ति ही सर्व श्रेष्ठ धन है

If wealth is lost, nothing is lost; if health is lost, something is lost; if character is lost, everything is lost.

सम्पत्ति के विनष्ट होने से कुछ विनष्ट नहीं होता, परंतु स्वास्थ्य विनष्ट होने से कुछ विनष्ट अवश्य होता है, परन्तु चरित्र विनष्ट होने से सब कुछ विनष्ट हो जाता है। क्या इसमें भी संदिग्ध दृष्टि डाली जा सकती है? नहीं कदापि नहीं! जब मानव की अमूल्य निधि चरित्र ही गया तो रह क्या गया? यही तो इस एटम युग में मानव की सबसे बड़ी शक्ति है।

विश्व जलाशय की तूफानी उत्ताल लहरों की भयंकर थपेटों से जिसका चरित्र-जलयान नहीं डगमगाता और उनको रौंदता हुआ जीवन आदर्श के तट पर लगता है, वहीं सफल मानव है। मोह-ममता के गोरख धंधे को छिन्न-भिन्न करके जो स्पष्ट निकल जाता है, प्रतिकूल परिस्थिति के संकुचित शैल को जो धीर यती के समान पार कर जाता है, सम्पत्ति वैभव और सांसारिकता की चका चौंध से जिसके दृग नहीं चौंधियाते, विधाता के विपरीत विधान के सम्मुख जो धीर-वीर वक्षस्थल तान कर खड़ा होता है, वही मानव सच्चा चरित्रवान है। वही मनुष्य सर्व विश्व-यात्रियों के लिये प्रकाश पुंज बन सकता है।

चरित्र-शक्ति और एकता शक्ति से ही मानव बनकर जीवन को सफल बनाता है। यही शक्ति आत्म विश्वास और आत्म निर्भरता का

अधिष्ठाता, शौर्य और कार्यचातुर्य का वरद देवता, निर्भयता और शक्ति का दाता है। इसी के द्वारा मानव में वज्र की शक्ति, भूकम्प बल, सिंह की निर्भयता आ जाती है। जो मानव तनिक सी कठिनाइयों से डर जाते हैं– आत्म विश्वास की छुट्टी दे बैठते हैं वे विश्व-संघर्ष में कैसे अपना पथ निर्माण कर सकते हैं?

विश्व-संघर्ष को विजय करने के लिये चरित्र शास्त्र की ही आवश्यकता पड़ती है।

इस शक्ति से बना हुआ मानव आतंक और तोप-तलवार से कभी नहीं घबराता है क्यों कि इस शक्ति के सम्मुख विरोधी की पाशविक शक्ति भी मन्द हो जाती है।

प्रत्येक मानव जीवन के आदर्श के अनुसार ही अपने चरित्र का संगठन करता है। ऐसा न करने पर पग पग पर असफलता के आघातों से आहत होना पड़ता है। बिना चरित्र निर्माण के वह न तो अपने आदर्श के अनुरूप जीवन बना सकता है और न अपने आदर्श को प्राप्त ही कर सकता है। अतः चरित्र शक्ति की बड़ी आवश्यकता है।

इसमें वह शक्ति विद्यमान है जो विद्या, बुद्धि और सम्पत्ति में नहीं! कितने ही निर्धन साधु महात्मा अपने राष्ट्र का कल्याण कर जाते हैं,

कितने ही महर्षियों ने इसी के कारण बड़े २ प्रलोभनों को ठुकरा दिया और बड़े बड़े आतंकों की उपेक्षा की। हमारे महापुरुष अपने आदर्श चरित्रों के कारण ही आज विश्व में अमर हैं।

चरित्र के बिना मानव ही नहीं अपितु बड़े २ राष्ट्र भी नष्ट हो जाते हैं। अतः इस सक्रान्ति काल में जीवित रहने के लिये चरित्र शक्ति अत्यन्त आवश्यक है। (सम्पादक)

पावस प्रमोद

आज हमारे स्वागत के लिये पूर्वी क्षितिज से सम्पन्न घटायें उमड़-घुमड़ कर आ रही हैं। ऊदे-ऊदे, कजरारे, सलोने सोने और भूरे-भूरे

घन गगनमण्डल में मस्त गज के समान रेंग रहे हैं। घन के सजल नेत्रों में अविरल अश्रु निकल २ कर हमारी ओर बढ़ रहे हैं। शीतल पवन कामिनी साड़ी फहराती, मादकता फैलाती, लता-कुंजों में सौरभ की सुगन्धी को समेटती हुई विहर रही है। पावस की उन्मुक्त बहारें नन्हीं-नन्हीं बिन्दु कण की रिमझिम बौछारें हम में नव-जीवन का संचार कर रही हैं। खग-बालाएं सहमी सकुचाई पंख समेटे नीड़ों में बैठी इस की छटा को प्रसन्न वदन और तृप्त नयनों से निहार रही हैं। यह है पावस ऋतु के एक दिन की छटा का रेखा चित्र—

पावस ऋतु आई और तभी जगत ने निदाघ की प्रचण्ड ज्वाला-मय शासन से अवकाश पाया। पावस कामिनी जब सृष्टि रूपी भवन में कदम रखती है तो वो अपने नेत्रों में जल, ओठों में परितृप्ति, उच्छ्वासों में उन्माद, स्वरों में मधुर राग भरे हुये होती है। और अपनी इन अमूल्य वस्तुओं के द्वारा जगत के अवसादी वस्त्रों को फाड़ डालती है। और जगत का मुरझाया हुआ कंकाल पुन: जीवित हो उठता है। वसुधा भी आनन्द की ओढ़नी ओढ़कर हरियाली की साड़ी पहन कर और उन्माद मदिरा के प्याले को अधरों से लगाकर नृत्य कर उठती है।

सघन काली २ घटाएं घिरती हैं। मयूर नृत्य कर उठते हैं। केकी के अमृत मधुर स्वर का गुन्जार कर उठते हैं। कजरारे-कजरारे बद-रानों को उमड़ते हुए देख यौवन से क्रीड़ा करने वाली नव वधूटियों की समता पुतलियों में प्रियतम के मिलन की चमक झिलमिलाने लगती है। मेघ की गर्जन होती है, सांय-सांय करता हुआ शीतल पवन चलता है, घन के अंचल में दामिनी दमकती है—यौवन मद में छिन काम-नियां अलस उन्मादनी में झूमने लगती हैं और उनके अधर बसन्त कोकिल के समान कूक उठते हैं—पावस आया। सखी चलो प्रिया के देस सावन को देखते ही पपीहा तृषित स्वर से 'पीउ-पीउ' पुकार उठता है।

करोड़ों नश्वर मानसों में सुप्त व्यथाएं जगाता, स्वप्नविल किये

ही दगोंमें हिमजल छलकाता, कितने ही दग्ध हृदयोंमें हूल उपजाता, कितने ही ओठों पर विहाग तड़पाता पावस आता है—पावस आता है।

और कितनी ही पुतलियों में मादकता का प्रकाश, कितने ही मानसों में मस्ती का उन्माद, कितने ही कार्यों में उत्तावलापन और कितने ही स्थानों में धर्मोपदेश का अलख जगाता पावस आता है।

पावस की रागनियों में ही तो भारतीय ललनाओं के अधरों पर मधुर गान मन्दन कर उठते हैं। असंख्य कामिनी ओष्ठ स्पंदित हो उठते हैं—'रखिया बंधालो भय्या, सावनि आया।' इन्हीं दिनों में रक्षाबन्धन जैसा पवित्र पर्व आता है। करोड़ों आर्य बालाएं डबडबाते दगों, उमड़ते हृदय, विहँसते ओष्ठ, प्रगाढ़ विश्वास और कम्पित करों से अपने भ्राताओं के हाथों में राखी बाँधती हैं। राखी के इन सूक्ष्म तारों में क्षत्रियों को देश रक्षा और रानियों को विद्या-दान का शुभ सन्देश मिलता है।

नव यौवनाओं के हृदय को गुदगुदाने के लिए पावस हरियाली तीज को लाता है और अमुवा की शाखायें उन कामनियों के मृदुल गातों से लचकनी आरम्भ हो जाती हैं। आम्र मंजरी की मादक सुगन्धि मादकता बिखराती हैं। सावन की नन्हीं फुव्वारें नया जीवन उड़ेलती हैं।

भादों का उन्माद आया। वसुन्धरा जलप्लावित हो उठी। क्यारियाँ स्नेह पान करती हुई फूट पड़ीं, (झरने सरितायें कल-कल कलरव से दिशाओं को निनादित करती, उमड़-घुमड़ती बहने लगीं। चंचल प्रपात अपने यौवन मदमाते, गिरि कन्दराओं को गुँजाते, पर्वतों की गोद में कुदकने लगे।

भारत के जर्जरित कृषकों की आशा पावस, राष्ट्र का आधार और प्राणियों का साकार जीवन पावस रिमझिम २ की मुरीली तान को छेड़ता हुआ आया है। किसी ने सत्य कहा है जहाँ पावस नहीं वहाँ जीवन नहीं। ——— (सम्पादक)

हास्य रस और उसका हिन्दी साहित्य में स्थान

मनुष्य और पशु में एक बड़ा अन्तर है; मनुष्य हँसता है, पशु नहीं हँसता। हास्य गुण विशेष के कारण ही मनुष्य पशुओं की श्रेणी से पृथक किया जाता है। यह समझो कि मनुष्य की मनुष्यता हँसने-हँसाने ही में है। हास्य का निरादर करना मनुष्य होने से इंकार करना है। जे० पी० श्रीवास्तव ने एक स्थान पर लिखा है—'मनुष्य होकर हास्य की निन्दा करने से पंडिताई तो कैसी सिद्ध होती है, वही जाने, मगर यह अलबत्ता पता चल जाता है कि मुँह सिकोड़े-सिकोड़े हज़रत की खाली समझ ही नहीं सिकुड़ गई, बल्कि हँसने वाली कमानी सिकुड़ कर मुँह भी थूथन बन गया है।'

संसार में हास्य का बड़ा ऊँचा स्थान है। हँसना जीवन का सबसे महान तत्व है। प्रकृति प्रतिपल हँसने का उपदेश करती है—

> हँस मुख प्रसून सिखलाते,
> पल भर है, जो हँस पाओ।
> अपने उर के सौरभ से,
> जग का आँगन भर जाओ॥

बाहर निकल कर देखो, तारे नाच रहे हैं, चन्द्रमा हँस रहा है कलिकाएँ दाँत निकाल रही है, नदी मस्तानी चाल से इठलाती, झुके हुए वृक्षों की पत्तियों से क्रीड़ा करती, किनारे पर बजने की थाप देकर मधुर स्वर से गुनगुनाती बह रही है। फिर मनुष्य को क्या अधिकार है कि वह मुहर्रमी सूरत बनाये ऐसे सुरम्य वातावरण को दूषित करे और जगती में विष बखेरे। सदा किशोर बने रहने वाले राम और कृष्ण के सरस जीवन विश्व को यही संदेश सुनाते हैं।

हास परिहास जीवन की सबसे बड़ी आवश्यकता है। इससे जीवन में मधुरिमा का संचार होता है। जब मनुष्य परिश्रम से थक जाता है, तब हास्य उसमें नवीन शक्ति और स्फूर्ति का संचार करता है। हँसने

से मनुष्य स्वस्थ होता है क्षय के रोगियों को इसीलिए हास्य रस की पुस्तकें पढ़ने को दी जाती हैं। कितना महान उपकार है यह! हास्य-रस हृदय के फफोलों की जलन मिटाने के लिए सर्वोपरि औषध है। मनुष्य की जीवनी असफलता, विषाद, आँसू और आहों की एक लम्बी कहानी है। ऐसी अवस्था में हँसी ही के सहारे उसकी जीवन नैया किनारे लगती है। जब कोई व्यक्ति दुख सागर में निमग्न हो जाता है तो उसके इष्ट मित्र अनेक युक्तियों से हँसा कर उसका मनोरंजन करते हैं। निराशा-निशा में हास्य विनोद दीप-स्तम्भ बन कर मनुष्य को पथ दिखलाता है। भोजन में जो स्थान नमक का है, वही स्थान हास्य का जीवन में है। हास्य विहीन जीवन भार स्वरूप हो जाता है, उसमें कटुता आ जाती है। हास्य का सबसे बड़ा लाभ दोष-सुधार है। चरित्र, स्वभाव, समाज, धर्म, साहित्य—जहां कहीं भी त्रुटि देखता है, यह उसे कट्टर समालोचक की भाँति प्रकाश में लाता है, उस पर चोट करता है और फिर उसे हँसी में लाकर उड़ा देता है। सबसे बड़ी बात यह है कि इसका प्रभाव स्थायी होता है। महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ-प्रकाश में हास्य-रस का इसी शैली पर प्रयोग किया है।

हास्य की उत्पत्ति मुख्य रूप से तीन अवस्थाओं में होती है—पतन, बेतुकापन और कठपुतलीपन। मनुष्य का स्वभाव है कि अपने से किसी को गिरा पाते ही उसे हँसी आ जाती है। इसका कारण गुणों की कमी या अवगुणों की अधिकता होती है। इसी को 'पतन' कहते हैं। इसे सबसे पहले अरस्तू ने मालूम किया था। दूसरी अवस्था में हास्य दो वस्तुओं की असमानता से उत्पन्न होता है। यह असमानता चरित्र, विचार या वचन किसी में भी हो सकती है। इसके उदाहरण बरसात में छाता उठाने वाले बाबू साहब या हरियाई की लंगिया में मूँज की बखिया। इस असमानता का ही दूसरा नाम 'बेतुकापन' है, जिसका पता सर्व प्रथम कैंट और हैज़लिट साहब ने लगाया था। चौथी अवस्था मनुष्य के पुराने स्वभाव के कारण उसकी बेबसी से

उत्पन्न होती है, जैसे किसी मसखरे के 'सावधान' कहने ही किसी पुराने सैनिक का हाथ से घी का भरा लोटा छोड़ बैठना। परवशता के कारण होने वाली वे क्रियाएँ 'कन्डुमवीज्म' के अन्तर्गत हैं। इस रहस्य को एम० बर्गसन साहब ने मालूम किया था।

भेद-विचार की दृष्टि से संस्कृत में स्मित, हसित, विहसित, उपहसित, अपहसित और अतिहसित—हास्य के यह छः भेद किए गए थे। किन्तु इन भेदों का आधार मुँह की आकृति है, कोई साहित्यिक नियम नहीं। मुख्य रूप से हास्य के दो भेद हैं—(१ अज्ञात हास्य, (२) ज्ञात हास्य। अज्ञात हास्य वह है जिसमें हँसाने वाला अपनी मूर्खताओं से अनभिज्ञ रहता है और उन्हें अनजाने प्रकट करके लोगों को हँसाता है। ऐसा व्यक्ति समाज में बौड़म, गँवार आदि कहलाता है। ज्ञात हास्य वह है जिसमें हास्य पात्र जान बूझ कर लोगों को हँसाता है। इसके दो अन्तर्भेद हैं—परिहास और उपहास। परिहास में हँसाने वाला अपने दोष पर स्वयं भी हँसता है और दूसरों को भी हँसाता है। उपहास में हँसाने वाला दूसरों के दोषों पर आक्षेप करके हँसी पैदा करता है। इसके पुनः तीन उपभेद हो जाते हैं—विनोद, व्यंग्य और कटाक्ष।

प्राचीन हिन्दी साहित्य में हास्य रस की योजना नाम मात्र को हुई। इसका मुख्य कारण था संस्कृत साहित्य में जिसके आदर्श हिन्दी में अपनाये गये, हास्य रस की कमी। वहाँ हँसाने का काम केवल पेटू ब्राह्मणों को मिलता रहा। संस्कृत में हास्य की कमी के कुछ विशेष कारण थे। हास्य रस अपना चमत्कार मुख्य रूप से गद्य में दिखलाता है। संस्कृत का युग पद्य का था, क्योंकि मुद्रणालयों का अभाव था और पद्यको कण्ठाग्र करनेमें सुविधा होती थी। दूसरे यह कि हास्यरसकी आवश्यकता दिल बहलानेके लिए आड़े समय में होती है। वह समय सुख और शांति का था। जीवन-पथ कंटकाकीर्ण न था। लोगों के मनोरंजन के लिए किसी बाह्य उपकरण की आवश्यकता नहीं

थी। तीसरा कारण यह था कि हास्य रस का प्रयोग प्रायः सुधार के लिए किया जाता है। वह समय सर्वांगीण उत्थान का था। उन्नति के मार्ग में कोई विघ्न बाधा न थी। जीवन निर्दोष था। फिर हास्य रस का प्रयोग क्यों किया जाता ?

हिन्दी साहित्यकारों का ध्यान इस तथ्य की ओर न गया। नेत्र बन्द कर संस्कृत साहित्य की परम्परा का पालन किया गया। परिणाम यह हुआ कि प्रारम्भिक साहित्य में इस रस की योजना नाममात्र के लिए हो सकी। जायसी ने रत्नसेन-पद्मावती मिलन प्रसंग पर इसकी झलक दिखाई है। तुलसीदास ने नारद-मोह और वाटिका-भ्रमण प्रसंग पर इसका पुट दिया है। कामांध नारद का राजकुमारी का ध्यान आकर्षित करने के लिए, यह व्यवहार कितना हास्योत्पादक है—

पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं
देखि दसा हरगन मुसुकाहीं॥

पुष्प वाटिका में राम के रूप पर मोहित सीता घर चलने में देर लगा रही है। यह बात देख कर एक सखी बड़ी मीठी चुटकी लेती है—

पुनि आउब एहि बिरियाँ काली।
अस कहि मन बिहँसि एक आली॥

सूरदास के कृष्ण कन्हैया भी कहीं चोटी बड़ी होने के लालच से 'काचो दूध' पीते ही अपनी चोटी की लंबाई देखकर, कहीं 'मुख दधि पोंछ' और 'दौना पीठि दुरा' अपने को निर्दोष सिद्ध कर, कहीं 'गोरे नन्द जसोदा गोरी, तू कत स्याम सरीर' कह कर खिजाने वाले बलदाऊ की शिकायत कर हास्य रस के आलंबन बनते हैं।

हिन्दी में खड़ी बोली का जब प्रचार हुआ तो भारतेन्दु जी ने इसकी ओर कुछ ध्यान दिया। वह स्वयं चूरन बेचने वाला बनकर सामने आये—

ले चूरन का ढेर-बेचा टके सेर।
चूरन साहब लोग जो खाता, सारा हिंद हजम कर जाता।

उत्पन्न होती है, जैसे किसी मसखरे के 'सावधान' कहते ही कि
सैनिक का हाथ से घी का भरा लोटा छोड़ बैठना। परवशता
होने वाली ये क्रियाएँ 'कठपुतलीपन' के अन्तर्गत हैं। इस
एम॰ बर्गसन साहब ने मालूम किया था।

भेद-विचार की दृष्टि से संस्कृत में स्मित, हसित,
उपहसित, अपहसित और अतिहसित—हास्य के यह छः
गए थे। किन्तु इन भेदों का आधार मुँह की आकृति है, कोई स
नियम नहीं। मुख्य रूप से हास्य के दो भेद हैं—(१) अज्ञा
(२) ज्ञात हास्य। अज्ञात हास्य वह है जिसमें हँसाने वाला
मूर्खताओं से अनभिज्ञ रहता है और उन्हें अनजाने प्रकट करके
हँसाता है। ऐसा व्यक्ति समाज में बौड़म, गँवार आदि कह
ज्ञात हास्य वह है जिसमें हास्य पात्र जान बूझ कर लोगों को
है। इसके दो अन्तर्भेद हैं—परिहास और उपहास। प
हँसाने वाला अपने दोष पर स्वयं भी हँसता है और दूसरों
हँसाता है। उपहास में हँसाने वाला दूसरों के दोषों पर आ
हँसी पैदा करता है। इसके पुनः तीन उपभेद हो जाते हैं-
व्यंग्य और कटाक्ष।

प्राचीन हिन्दी साहित्य में हास्य रस की योजना
की हुई। इसका मुख्य कारण था संस्कृत साहित्य में जिसके
हिन्दी में अपनाये गये, हास्य रस की कमी। वहाँ हँसाने
केवल पेटू ब्राह्मणों को मिलता रहा। संस्कृत में हास्य की
कुछ विशेष कारण थे। हास्य रस अपना चमत्कार मुख्य रू
में दिखलाता है। संस्कृत का युग पद्य का था, क्योंकि मुद्रण
अभाव था और पद्यको कण्ठाग्र करनेमें सुविधा होती थी। दू
हास्यरसकी आवश्यकता दिल बहलानेके लिए थारे समय में
वह समय सुख और शांति का था। जीवन-पथ कंटकाकीर्ण
लोगों के मनोरंजन के लिए किसी बाह्य उपकरण की आ

थी। तीसरा कारण यह था कि हास्य रस का प्रयोग प्रायः सुधार के लिए किया जाता है। वह समय सर्वांगीण उत्थान का था। उन्नति के मार्ग में कोई विघ्न बाधा न थी। जीवन निर्दोष था। फिर हास्य रस का प्रयोग क्यों किया जाता ?

हिन्दी साहित्यकारों का ध्यान इस तथ्य की ओर न गया। नेत्र बन्द कर संस्कृत साहित्य की परम्परा का पालन किया गया। परिणाम यह हुआ कि प्रारम्भिक साहित्य में इस रस की योजना नाममात्र के लिए हो सकी। जायसी ने रत्नसेन-पद्मावती मिलन प्रसंग पर इसकी झलक दिखाई है। तुलसीदास ने नारद-मोह और वाटिका-भ्रमण प्रसंग पर इसका पुट दिया है। कामांध नारद का राजकुमारी का ध्यान आकर्षित करने के लिए, यह व्यवहार कितना हास्योत्पादक है—

पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं
देखि दशा हरगन मुसुकाहीं॥

पुष्प वाटिका में राम के रूप पर मोहित सीता घर चलने में देर लगा रही है। यह बात देख कर एक सखी बड़ी मीठी चुटकी लेती है—

पुनि आउब एहि बिरियाँ काली।
अस कहि मन बिहँसि एक आली॥

सूरदास के कृष्ण कन्हैया भी कहीं चोटी बड़ी होने के लालच से 'काचो दूध' पीते हैं अपनी चोटी की लंबाई देखकर, कहीं 'मुख दधि पोंछ' और 'दौना पीठि दुरा' अपने को निर्दोष सिद्ध कर, कहीं 'गोरे नन्द जसोदा गोरी, तू कत स्याम सरीर' कह कर खिजाने वाले बलदाऊ की शिकायत कर हास्य रस के आलंबन बनते हैं।

हिन्दी में खड़ी बोली का जब प्रचार हुआ तो भारतेन्दु जी ने इसकी ओर कुछ ध्यान दिया। वह स्वयं चूरन बेचने वाला बनकर सामने आये—

ले चूरन का ढेर-बेचा टके सेर।
चूरन साहब लोग जो खाता, सारा हिंद हजम कर जाता।

गून पुलिस वाले जो मारें, सब क़ानून हजम कर जाते ॥ वे

भारतेन्दु काल के प्रायः सभी लेखकों की रचनाओं में हास्यरस
रूप मगी। पं० शिवनाथ ने 'आनन्द' में इसकी चर्चा देखी। प्रत
नारायण मिश्र ने इस पर रचनाएँ कीं। उनकी निम्न पंक्तियों
वृद्धावस्था का कैसा मनोरंजक वर्णन है—

दाढ़ी नाक याक मों मिलिगे, बिन दाँतन मुहँ अस पोपलन।
दाढ़ी पर बहि-बहि आवत है, कबौं तमाखू की फाँकन ॥
बारि पाकिगे, रीढ़ी झुकिगे, मूड़ी सासुर हालन लाग।
हाथ पाँव कछु रहे न आपन, केहि के आगे दुख रोवन ॥

द्विवेदी काल में फिर गम्भीरता छाई रही। तत्पश्चात् अंग्रे
साहित्य के संपर्क से इसे स्फूर्ति मिली। हास्यरस के आचार्य श्री जे. पं
श्री वास्तव के दर्शन हुए। इनकी रचनाओं ने हिन्दी में युगान्तर क
दिया। सौभाग्य से आज हिन्दी, संसार के अच्छे से अच्छे हास्य चे
में गौरव के साथ अपना सिर ऊँचा कर सकती है। उन्होंने मीठी हँसी
लंबी दाढ़ी, मर्दानी औरत, नोंक झोंक, मारमार कर हकीम, गुदगुदी
आँखों में धूल, लतखोरी लाल, विलायती उल्लू, दुमदार आदमी
कम्बख्ती की मार आदि अनेक हास्य रस की पुस्तकें लिखी हैं। अ
साधारण के पास पहुँचने के लिए आपको बात जरा खोलकर अवश
करनी पड़ी है, किन्तु उनपर अश्लीलता का दोषारोपण करना अपन
गन्दी रुचि का परिचय देना है। हास्यरस के दूसरे महान लेखक बा
अन्नपूर्णानन्द हैं। महाकवि चच्चा, मेरी हजामत, मगन रहु चोला औ
मंगलमोद–इनकी मुख्य रचनाएँ हैं। इनका हास्य श्री जे. पी. श्रीवास्तव
के हास्य से अधिक शिष्ट और समयोचित है। इनकी कृतियाँ हँसाने
की पूरी क्षमता रखती हैं, पर सबको नहीं। बात यह है कि एक बात
सबको समान रूप से नहीं हँसा सकती। हास्य का सम्बन्ध मस्तिष्क
से है, हृदय से नहीं। इसलिये उसका प्रभाव मस्तिष्क के विकास की
सीमा पर निर्भर है। इसीलिये बाबूजी द्वारा प्रस्तुत की गई सामग्री

साहित्यिक रुचि वाले लोगों का ही मनोरंजन कर सकती है।

पं० हरिशंकर शर्मा शिष्ट हास्य के श्रेष्ठ लेखकों में हैं। उन्होंने अपने 'चिड़ियाघर' में जानवरों के वार्तालाप में मानव समाज की बुराइयों का दिग्दर्शन कराया है। उसमें व्यंग्य के उत्तम उदाहरण हैं। 'पिंजरा-पोल' में प्राचीन कवियों पर परिवृत्ति-कविताएँ (पैरोडी) लिखी गई हैं। तुलसीदास की भाषाशैली में 'मोटरकार' का कैसा मनोरंजक वर्णन है—

पीवहिं तेल उड़ावहिं धूरी। पदचारिन कहँ दुरगति पूरी॥
दिव्य दीप करत उजियारी। जनु हरिचन्द उगेउ तम टारी॥
तेहि चढ़ि जन निज गर्व दिखावहिं। पद, प्रभुता, प्रमाद दरसावहिं॥
मग विच कीच उलीचत फेंके। फागन फाग रचहिं जन जैसे॥
बल विक्रम जय जात बखाई। सरकत नेक न उठति उठाई॥
धाइन-कुल की परमगुरु, सब कहँ सुलभ न सोय।
रघुवर की जिनपै कृपा, ते नर पावहिं तोय॥

बाबू गुलाबराय की 'मेरी असफलताएँ' (आत्म कथात्मक साहित्यिक हास्यपूर्ण निबन्ध) और 'ठलुआ क्लब' शिष्ट हास्य की सुन्दर रचनाएँ हैं। श्री बद्रीनाथ भट्ट भी हास्य के अच्छे लेखक हैं। उन्होंने 'विवाह विज्ञापन' में विवाह के पीछे दीवाने लोगों की मिट्टी पलीद की है और 'चुंगी की उम्मीदवारी' में वोट की भिक्षा की खूब हँसी उड़ाई है।

श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़ हास्य रस के प्रसिद्ध लेखक हैं। वह हास्य की अनेक पत्रिकाओं का संपादन कर चुके हैं। उनकी 'वेढब की बहक,' 'बनारसी एक्का' इत्यादि अनेक लोकप्रिय रचनाएँ हैं। श्री राधाकृष्ण गुप्त 'झपसटराय बनारसी', ने हास्य पर गद्य और पद्य दोनों में रचना की है। उनकी रचनाएँ पत्रों में छपती रहती हैं, जिनका एक संग्रह भी प्रकाशित हुआ है। श्री शिवनन्दन प्रसाद ने 'अलबर्ट कृष्णाचलो' के नाम से बहुत सी हास्यपूर्ण रचनाएँ की हैं। जगदीशपुर के

सरयू पन्डा गौड़ हास्यरस के अच्छे लेखक हैं। उन्होंने ले
मिस्टर तिवारी का टेलीफून काल, कोर्ट शिप आदि कई
हैं। श्री सुबोध मिश्र सुरेश ने 'चोट की चोट,' 'कांग्रेस
प्रसिद्ध रचनाएँ की हैं। मध्यप्रांत के श्री सिद्धिनाथ म
'निरंजन' नामसे सुन्दर हास्यपूर्ण कहानियाँ और व्यंग प
हैं। श्री गोपाल प्रसाद व्यास की हास्य की कविताओं क
निकला है। उनकी हास-परिहासमय रचनाएँ 'हिन्दुस्ता
रहती हैं। श्री केदारनाथ भट्ट के, जो नोंक झोंक का सं
हैं, कई रोचक लेख-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

हास्य रस का भविष्य बड़ा उज्ज्वल है। केवल इसी
रखने वाले चक्र, मदारी इत्यादि अनेक पत्र निकल रहे
पत्रों में भी हास्य रस पर कुछ न कुछ लिखने की परिपा
है। चौरचक्र-विनोद, हँसी का गोलगप्पा आदि चुटकुलों
की बिक्री हास्य रस के प्रति बढ़ती हुई जनरुचि की द्योत
तक इस पर बहुत कम लिखा जा सका, इसका कारण
की परिस्थितियाँ रही हैं। जब से हिन्दी साहित्य का
तभी से हम पराधीन रहे। पराधीन जाति का समय रोने
में व्यतीत होता है। अब हम स्वतन्त्र हुए हैं। हम अनुम
में हास्यरस का पूर्ण विकास होगा, इसमें किंचित सन्देह न

(हरिदत्त शर्मा

कवि और कृति

कवि की अभिव्यक्ति को ठीक प्रकार से, सच्चे अर्थों में
लिए पाठक और सहृदय होना अनिवार्य है। वैसे तो कहने को
प्रचलित है, कि कवि की कृति, अंधेरा में भी (मार्ग) बताने
पहुँच सकती है, परन्तु वस्तु की सूक्ष्मता तक पहुँचना एक अ

कवि काव्य की रसिकता से आनन्द प्राप्त करना दूसरी बात है। मैं तो यही समझ पाई हूँ, कि अधिकतर कथित साहित्य, प्रिय जनता, कवि की आकृति-प्रकृति और कवि के बाह्य व्यवहार-व्यापार से जितना रस ग्रहण करती है, उतना वह योग्यतावश वा विवशतावश कवि की अनुभूति तक नहीं पहुँच पाती। वे कवि के मुख को, वेशभूषा को और उसकी लट-रीली मुद्राओं को अपने हृदय में जितना अंकित कर लेने में समर्थ हैं। कवि और कृति हृदय की छाया तक भी वे नहीं पहुँच पाते। मैं तो इसे कवि और साहित्यिक जनता, दोनों के वातावरण की एक शिथिल अव-चेतना मात्र मानती हूँ।

एक श्रेष्ठ कवि की कृति समझने के लिए हमें सदैव निम्न स्तर से ऊँचा उठने की आवश्यकता है। कवि और उसकी आत्मा को हम तभी स्पर्श कर सकते हैं, *जबकि हमारी भावभूमि में नवीन अनुभूति के लिए* तीव्र चेतना और सहिष्णुता सहित नाना प्रकार के विचित्र और रहस्यात्मक विचारों का अपने शान्त मानस में आवाहन कर सकने की क्षमता हममें हो। कवि की पृष्ठ भूमि में जीवन की वास्तविकता है। अपने वातावरण में स्वर्ग की कल्पना। जिसे हम साधारण बोलचाल के शब्दों में कवि के दिवास्वप्न कहते हैं, उन्हें समझने के लिए असीम और चरम कोटि की सहिष्णुता हमें धारण करनी होगी। बिना धैर्यवान् बने, कवि की रचना को, जिसकी सृष्टि जीवन में भावनाओं द्वारा ही व्यक्त होती है, हृदयंगम करने में हम सदैव असफल रहेंगे।

साहित्य के आलोचकों ने, कवि को भावों के चितेरे के रूप में ही पाया है। कवि अपनी भावुकता की तीव्रता से, शब्दों की चेतना को विस्फुरित कर सन्तोष पाता है।

कवि की अनुभूति और अभिव्यक्ति रहित रचना कभी साकार नहीं होती। कवि, कृति का निर्माण उसी समय आरम्भ करता है, जब वह अपनी हृदय की उद्विग्नता से तिलमिला उठता है, वा वह आह्लाद को

चरम सीमा पर पहुँच इतना उत्सुकमना होता है, कि मानस में आलोकित हो रहे भावों को, अपने में और अधिक समय तक समाये रखने में नितान्त असमर्थ पाता है। यहाँ बुद्धि ठीक कर कम्पोज करने वाले कवियों की सुन्दर पंक्तियों की तो कोई चर्चा ही नहीं है, यहाँ तो कवि और उसकी कृति की अनुभूतिमय भाव भूमि की बात है।

आज हम, कवि कृति की रहस्यात्मकता को सचमुच समझना तो चाह रहे हैं, किन्तु हम उसे तब तक नहीं समझ सकते, जब तक कि हमारा हृदय स्पन्दन-हीन है। हृदय की स्पन्दनहीनता से तात्पर्य है: हृदय में जड़ता का समावेश। आज मानव जीवन में भावुकता का कोई स्थान स्पष्टतया दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। मेरा तो यह विश्वास है,—भावुक हृदय ही सृष्टि की नैसर्गिक चेतना या पवित्र और अनन्त ज्योति को जीवन में धारण कर, अपने वायु मंडल (वातावरण) को आलोकित कर सकता है, अन्य कोई नहीं। भावुकता से रहित जीवन का मूल्य (!) शून्य से अधिक है ही क्या (?) बिना मुकुर सम मानस के तरंगित हुए, कवि और उसकी कृति को समझने की कल्पना ऐसी ही है, जैसे कि हम बिना खड़े हुए ही दौड़ने की भावना कर बैठें।

भावों के शब्द चित्रकार कवि की अभिव्यक्ति, प्रायः मौलिक सूक्ष्ममयी होती है। प्रत्येक कवि की कृति में हम उसकी अभिव्यक्ति को समझकर, रसानुभूति के सहारे कवि को साक्षात् करने की, अपने में क्षमता उत्पन्न कर सकते हैं। इस रमणीय और भिन्न रुचि विचित्र वसुधा में, कोई किसी सुगन्ध पर मुग्ध है, तो कोई किसी रस का पिपासु। एक जीवन की सगुण रूप राशि की ओर बढ़ रहा है, तो कोई दूसरा निर्गुण निरंजन में सत्य के दर्शन कर रहा है। यही रुचि वैचित्र्य कवि और साहित्यिक के जीवन को रस की परिपक्वता के अनन्तर, उसमें स्थायित्व या अजर-अमरता के भाव आरोपित करता है। सुकवि, कृति के लिए कभी अपनी कृति सृजन नहीं करता, प्रत्युत अपनी सुन्दरतम रूपमयी, रसीली, कल्पना के प्रदर्शन मिस छन्द, ताल और लयादि

में अपनी भावाभिव्यक्ति के साथ-साथ अपनी प्रतिभा से संसार को आकर्षित करता है।

कवि की अभिव्यक्ति के विषय में यह बात निर्विवाद और सत्य है, कि वह जितना अधिक भावुक, सगित और जागरूक और हृदयवान क्षमताशील होगा, उसके कवित्व में उतनी ही शक्ति अधिक विशाल और प्रवाहमय रहेगी। सिद्ध और सफल कवि की कविता रानी का रूप तो सदैव निर्मल निखार की ओर, स्पष्ट और स्वच्छ रहता है। यह बात भी अविस्मरणीय है कि कवि की अभिव्यक्ति, वातावरण और काल से कभी मुक्त नहीं रहती, तदनन्तर भी काव्यमय कवि का काव्य कभी रस रहित और मुमूर्षु नहीं होता, *संभवतः इसी को दृष्टि में रखकर देव-वाणी* में कवि की महिमा का कीर्तन करते हुए कहा है—

कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः
और
परय देवस्य काव्यं न ममार, न जीर्यती।

(कुमारी निर्मला माथुर)

भारतीय वैधानिक प्रगति

प्रारम्भिक इतिहास (१६००)

यह वह समय था जब कि पाश्चात्य देशों का व्यापार उन्नति के पथ पर था और यह जाति अपने को शिक्षा की उत्तरोत्तर उन्नति द्वारा विश्व की दृष्टि में सभ्य तथा उन्नतिशील दृष्टिगोचर हो रही थी। ऐसे समय का लाभ उठाने के लिए कुछ पाश्चात्य व्यापारियों ने महारानी एलिजबेथ का सहयोग पाकर भारत में व्यापार करने की जिज्ञासा से ईस्ट इण्डिया कम्पनी का संगठन किया। सन् १६१५ में सर टामसरो जो केवल व्यापारिक सम्बन्ध के लिए राजदूत बनकर आया था। वह

३ वर्ष के कठिन परिश्रम के पश्चात् भारत की स्वतन्त्रता को मुट्ठी में बाँध कर स्वदेश को लौटा। इसके उपरांत भारत में पाश्चात्य व्यापारियों ने अपनी कोठियाँ बनाई जिससे उनका व्यापार उत्तरोत्तर बढ़ने लगा।

इस समय यवनों की सत्ता क्षीण तथा निस्तेज होती जा रही थी। अब कोई ऐसा शासक न रह गया था जो मुग़लों की शृंखला को उसी रूप से शृंखलित रख सकता। आपसी कलह के कारण छोटे छोटे नवाब तथा जागीरदार अपनी अपनी सत्ता को बढ़ाने के लिए इस पाश्चात्य कम्पनी के ऋणी बन गये थे। इस कम्पनी में लूट खसोट का आन्दोलन आरम्भ हो गया था। इस आन्दोलन को कुचलने के लिये १७७३ में रेगुलेटिंग ऐक्ट के अनुसार बंगाल के राज्यपाल (गवर्नर) ब्रिटिश भारत का गवर्नर जनरल बना दिया गया, जिससे इस कम्पनी के सारे अधिकार समाप्त हो गये।

१८५७ का असफल विद्रोह

भारत अशक्त हो चुका था—दिल्ली में भारतीय अन्तिम सम्राट बहादुर शाह जो कि अंग्रेज़ों का पेंशनर था अपने जीवन का एक एक दिन गिन रहा था। इसी समय में सबके अधिकारों के छिन जाने के कारण सबके हृदय में विद्रोह की ज्वाला भड़क उठी थी जिसने विद्रोह का रूप धारण किया। जो भारत की सर्व प्रथम संगठित क्रान्ति थी। परन्तु साधारण जनता का असहयोग तथा आपसी भेद भाव के कारण असफल रही जिससे भारत की परतन्त्रता की नींव सुगमता से बढ़ सकी।

एक्जिक्यूटिव कौंसिल ऐक्ट—

इस स्वतन्त्रता के प्रथम समर ने अंग्रेज़ों के हृदय में प्रतिशोध की ज्वाला भर दी। ऐसे अशान्त वातावरण में लार्ड कैनिंग ने बड़ी ही कूटनीतिज्ञता तथा दूरदर्शिता से काम किया तथा सन् १८६१ में

वाइसराय के अधिकारों को कम करके सलाहकार परिषद् बना दिया। १८७१ को कुछ संशोधित किया गया और परिषद् के हाथ में कुछ साधारण से विभाग भी सौंपे गये तथा ब्रिटिश सरकार ने चांदी के कुछ टुकड़ों तथा झूठे सम्मान के द्वारा अपने शासन को नींव की और भी जमा लिया था। तथा आपसी भेद भाव को उत्पन्न करने के लिये सरकारी पदों के लिये हिन्दू तथा मुस्लिम सीटों पर पृथक विभाजन कर दिया गया। इस प्रकार अंग्रेजों की नीति तीव्रता से अपने पथ की ओर अग्रसर होती गई।

कांग्रेस का जन्म

साम्प्रदायिक मत भेद बढ़ने तथा शासन की त्रुटियों के कारण जनता के हृदय विदीर्ण हो उठे थे। उनके हृदय को शान्त करने के लिए सन् १८८५ में ए० एच० ह्यू म के मस्तिष्क से कांग्रेस का जन्म हुआ। इसका एक मात्र उद्देश्य था राजकीय तथा अराजकीय राजनीतिज्ञों का वर्ष में एक बार एकत्रित होकर विचार विनिमय करना तथा राज्य का ध्यान शासन की उन त्रुटियों की ओर आकर्षित करना जिनके कारण किसी समय असन्तोष उत्पन्न हो सकता था।

इस संस्था में १८६२ में इण्डिया कौंसिल ऐक्ट के अनुसार चुनाव पद्धति बनी जिसमें गैर सरकारी नेताओं को भी इस सलाहकार परिषद् में स्थान मिला तथा उन्हें विवाद करने का भी अधिकार दिया गया। लार्ड कर्जन राजनैतिकता के इन कड़वे घूंटों को न पी सका और उसने कांग्रेस को कुचलने का प्रयत्न बंगाल के दो भाग करके हिन्दू यवन समस्या को गुरुतर बनाकर तथा एक संकेत पर ही मुस्लिम लीग जैसी प्रतिक्रिया वादी संस्था को जन्म देकर किया। बंगालियों ने बंग - भंग को प्रचण्ड रूप दे दिया और इस आन्दोलन का समर्थन कांग्रेस ने भी बनारस अधिवेशन में किया। इस समर्थन के पश्चात् ही वैधानिक संग्राम का प्रारम्भ बताना उचित होगा। साथ ही यह भी कहना अनुचित न होगा कि वैधानिक सुधारों का सूत्रपात भी यहीं से हुआ

सर्व प्रथम सुधार मिण्टो मारले सुधार था। जिसके अनुसार कौंसिलों के अधिकारों में अभिवृद्धि की गई।

कांग्रेस अब एक प्रगतिशील राजनैतिक संस्था बन गई थी। इसकी शक्ति को बढ़ता देखकर सरकार ने मांट फोर्ड सुधार की घोषणा की जिसका मसविदा ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में सन् १९१७ में पेश हो चुका था पर उसकी घोषणा भारत में १९१९ में हुई। १९१४ के महायुद्ध में भारत ने ब्रिटेन की बहुत सहायता की थी और वह आशा कर रहा था कि उत्तरदायी शासन बहुत ही शीघ्र मिलेगा। किन्तु इसके विपरीत सरकार ने रोलट ऐक्ट पास करके भारत की राजनैतिक आकांक्षाओं का दमन कर दिया। इस कारण समस्त देश में असन्तोष की ज्वाला भभक उठी। उस समय गांधी जी दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह संग्राम का नेतृत्व कर भारत वापस आ चुके थे। उन्होंने यहाँ की दशा का अवलोकन कर सत्याग्रह की घोषणा कर दी। इसके फलस्वरूप अमृतसर में पाश्चात्य अधिकारी वर्ग ने नृशंसता पूर्वक दमन किया। जलियाँ वाले बाग़ में जनता पर गोलियों की बौछारें की गईं। बापू ने इतने पर भी दोनों जातियों को एकता का पाठ पढ़ाया और असहयोग आन्दोलन को आरम्भ कर दिया। इसमें विदेशी वस्तुएँ, सरकारी अदालत, सरकारी स्कूलों, नौकरियों, और शराब का बहिष्कार किया।

इसका परिणाम यह हुआ कि अल्पसंख्यक विद्यार्थियों ने कालिज छोड़ दिये, हजारों वकीलों ने अदालतें छोड़ दीं। ऐसे समय में सरकार ने हिन्दू मुस्लिम फूट डाल दी। और बड़े २ सरकारी नेताओं को जेल में ठूंस दिया गया। कार्य में शिथिलता आ जाने पर पं० मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में स्वराज्य पार्टी ने कौंसिलों में आकर सरकार से संघर्ष किया। १९२७ में साइमन कमीशन भारत में आया। उसका सर्वत्र जनता ने काले झंडों से स्वागत किया। सन् १९३० में गांधी ने डण्डी यात्रा में नमक कानून तोड़कर सत्याग्रह का सूत्रपात किया। जिसको रोकने के लिए अनेक नये आर्डीनेन्स बनाये गये।

सन् १६३१ मार्च में लार्ड अरविन-गांधी समझौता हुआ।

गोलमेज कान्फ्रेन्स और १६३५ का शासन विधान

जनता में असन्तोष बढ़ जाने के कारण १६३० में गोलमेज़ कांफ्रेन्स लंदन में बुलाई गई। इसमें सरकार ने भिन्न-भिन्न जातियों के कुछ प्रतिनिधि स्वयं निमन्त्रित कर लिये। इससे भी पूर्ण सन्तोष न हुआ तो १६३५ में जाकर निम्न प्रस्ताव एक विधान के रूप में पार्लिमेंट में पास हुआ और दो सितम्बर को उस पर ब्रिटिश सम्राट के हस्ताक्षर हो गये।

१. इस विधान के अनुसार रियासतें भी भारतीय सरकार में सम्मिलित हो गईं अब तक केवल ब्रिटिश भारत के प्रान्त ही केन्द्रीय सरकार में सम्मिलित थे।
२. प्रान्तों को पूर्ण उत्तरदायी शासन दे दिया गया।
३. केन्द्र में रेलवे रिजर्व बैंक तथा विदेशी नीति को छोड़कर सभी महकमे केन्द्रीय धारा सभाओं के प्रति ज़िम्मेवार मंत्रियों को सौंप दिए गए।
४. सभी प्रान्तों व रियासतों की पूर्ण स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली गई। किन्तु कुछ एक मामलों में इनके द्वारा कुछ अधिकार स्वयं संगठित संघ को सौंप दिये गए।
५. साम्प्रदायिक चुनाव की प्रथा को स्थिर रक्खा गया था १६३२ में दिए गए ब्रिटिश प्रधान मन्त्री रैमसे मैकडानल्ड के निर्णय के अनुसार विभिन्न व्यवस्थापक सभाओं में हिन्दू, मुसलमान, सिख ईसाइयों के प्रतिनिधियों की संख्या नियत कर दी गई।

मध्य का मार्ग

कांग्रेस ने केन्द्र में इस संघीय शासन विधान को अस्वीकार कर दिया और प्रान्तों में चुनाव लड़ने का निश्चय किया। सन् १६३६, ३७ के शरत्काल में चुनाव का घोर संग्राम छिड़ा और उस में अप्रत्याशित

सफलता प्राप्त हुई। बिहार, उड़ीसा, युक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त, बम्बई और मद्रास में विशुद्ध कांग्रेसी मन्त्रीमण्डल बने। केन्द्र में सन् १६१६ का विधान कांग्रेस ने स्वीकार किया।

१६४२ की जन क्रांति व क्रिप्स प्रस्ताव

१६३६ में युरोपिय युद्ध छिड़ गया। इसमें लोकमत जाने बिना ही ब्रिटिश सरकार ने इस देश को भी युद्ध में घसीट लिया कांग्रेस ने इससे असन्तुष्ट होकर असहयोग की नीति स्वीकार की। सब प्रान्तीय प्रतिनिधियों ने इस्तीफे दे दिये इसके उपरांत १६४०–४१ में गांधीजी ने व्यक्तिगत आन्दोलन का संचालन किया। यह आन्दोलन भारत को स्वतन्त्रता दिलाने के लिये था। कुछ माह पश्चात् गांधी जी को स्वयं यह आन्दोलन बन्द करना पड़ा।

१६४२ का आन्दोलन

सर स्टेफ़ोर्ड क्रिप्स भारतीय नेताओं से बातचीत करने यहां आये, किन्तु कोई समझौता न होने पर कांग्रेस ने 'भारत छोड़ो' का नारा बुलन्द किया। ८ अगस्त १६४२ को म० गांधी को सत्याग्रह प्रारम्भ करने का भी अधिकार दे दिया गया। वे वाइसराय से पत्र द्वारा बातचीत करना चाहते थे कि सब नेता गिरफ्तार करलिये गये। इससे सारी जनता में असन्तोष फैल गया और इसने एक प्रचण्ड रूप धारण किया जिसका नाम सन् १६४२ की क्रान्ति पड़ा। इस में रेल की पटरियों को उखाड़ने, कई स्थानों में रेलगाड़ियों व स्टेशनों को जलाने, अंग्रेजों को मारने, थानों व अदालतों पर कब्जा करने के भरसक प्रयत्न किये गए। अनेक स्थानों पर नग्नता का शासन हो गया। इस पर सरकार भी चुप न रह सकी। उसने भी अपनी बर्बरता तथा नग्नता का परिचय दिया। अनेक स्थानों पर जन समूहों पर गोलियां चलाई गईं।

कितनी स्त्रियों पर बलात्कार कर उनको नंगी पेड़ों से लटका दिया

गया। कितने ही अबोध बच्चों को संगीनों से भेद दिया गया। कितनी नवयुवतियों के शरीर को अपवित्र कर उनको आग में झोंक दिया गया। गांव के गाँव जला दिए गए। अर्थात् जी खोल कर बदला लिया गया। जनता पर लाखों रुपये सामूहिक कर लगाये गए। यह आन्दोलन भी समाप्त किया गया किन्तु स्वतन्त्रता की भावना जनता के हृदय में प्रबल हो उठी।

वेवल योजना

इस क्रांति से ब्रिटिश सरकार को पता लग गया कि अब उनकी सत्ता का पलड़ा डावांडोल हो चुका है। जिस समय सारे नेता सरकार के मेहमान थे उस समय देश के बाहर सुभाष बाबू के नेतृत्व में आज़ाद हिंद फौजें बर्मा में ब्रिटिश सैनिकों से मोर्चा ले रही थीं। इसमें सफलता न मिल सकी। मई १६४५ में जर्मनी ने पराजय मान ली। इस विजय के उपलक्ष में सरकार ने विजयोत्सव मनाये और इनाम बांटे। परन्तु जनता ने इसमें कोई सहयोग नहीं दिया। गांधी जी छोड़ दिये गये। लार्ड लिनलिथगो के स्थान पर लार्ड वेवल वाइसराय पद पर नियुक्त हुए। उसने आते ही राजनैतिक नेताओं से परस्पर विरोध मिटाने के लिये बातचीत आरम्भ की। इसके लिये शिमला सम्मेलन बुलाया गया। सम्भव था समझौता हो जाता और वेवल योजना स्वीकृत हो जाती। किन्तु जिन्ना साहब की हठ ने इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करने दिया। इसके अतिरिक्त उसमें भी कुछ त्रुटियाँ थीं।

इस योजना में युद्ध विभाग और विशेषाधिकारों को छोड़ कर शेष सभी विभाग जन प्रतिनिध्यात्मक केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के अधिकार में दिये जाने की बात थी जो क्रिप्स योजना ने वाइसराय के लिये सुरक्षित रख छोड़े थे। सन् १६३४ के बम्बई अधिवेशन में पास किये गये प्रस्ताव के आधार पर भारत को एक विधान परिषद् द्वारा बनाया गया विधान ही मान्य होना चाहिये था, जिसका उल्लेख इस योजना में नहीं था। अतः यह असफल रही।

भारतमंत्री का अंतिम प्रयत्न

इतने पर लार्ड वेवल प्रयत्न करते ही रहे। उधर ब्रिटेन में प्रधान मन्त्री का चुनाव हुआ, जिसमें मजदूर पार्टी ने भारत को स्वतन्त्र करने की अपनी नीति की घोषणा करके चुनाव लड़ा और ब्रिटिश जनता की सहानुभूति प्राप्त की। इस पर मजदूर पार्टी की विजय हुई और श्री एटली प्रधान मन्त्री बने। इसके उपरान्त एक मण्डल भारत आया और उसने देश के राजनैतिक वातावरण का अध्ययन किया। उसके उपरान्त उसने अपनी रीपोर्ट ब्रिटेन पहुँच कर की। इधर लार्ड वेवल के प्रयत्नों से कांग्रेस को नया जन्म मिला।

इसके उपरांत भारत मन्त्री श्री पैथिक लारेंस, श्री क्रिप्स तथा श्री एलेक्जेंडर वायुयान द्वारा भारत आये। और भारत-वासियों के प्रति व्याख्यानों द्वारा अपनी उदारता प्रकट की। १६ मई के भाषण के आधार पर अन्तर्कालीन सरकार बनी। जिसके अध्यक्ष लार्ड वेवल थे।

इस योजना के अनुसार भारत को तीन भागों में विभाजित किया गया। आसाम बंगाल एक में सिन्ध पंजाब सीमाप्रान्त को दूसरे में तथा शेष प्रान्तों को तीसरे भाग में स्थान दिया गया। श्री जिन्ना इस विभाजन से पूर्ण संतुष्ट थे। किन्तु पं० जवाहरलाल नेहरू को इस बात से, कि भागों में प्रत्येक प्रान्त आत्म निर्णय के सिद्धान्त पर ही प्रवेश करेगा, जिन्ना साहब का मतभेद हो गया। अतः इस परिषद में पुनः असहयोग रहा।

कलकत्ते में रक्तपात

पं० जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में अन्तर्कालीन सरकार बन जाने के कारण श्री जिन्ना के नेत्रों में प्रतिशोध की ज्वाला भभक उठी। इसी हेतु १६ अगस्त को मुस्लिम लीग ने संघर्ष दिवस का निर्णय किया। कलकत्ते में इस संघर्ष ने बड़ा भयानकरूप धारण किया, जिसमें सहस्रों हिन्दू और मुसलमान मारे गए। इसके कुछ समय पश्चात् नोआखली

में रक्तपात हुआ। जिसका वर्णन लेखनी द्वारा भी होना कठिन सा है, इतने पर भी पं० नेहरू की केन्द्रीय सरकार असमर्थ थी, प्रान्तीय शासन अधिकारी मुस्लिम लीग के प्रभाव में थे जिसके कारण गवर्नर जनरल तक भी सब कुछ देखकर भी चुप थे।

मुस्लिम लीग सरकार में

ऐसे अशान्त वातावरण में श्री पं० नेहरू की सरकार स्वराज्य प्राप्ति के लिये घोर संघर्ष कर रही थी। और यह सम्भव हो गया था कि सम्पूर्ण स्थिति पर काबू हो जाता। किन्तु उसी समय लार्ड वेवेल ने मुस्लिम लीग को अन्तर्कालीन सरकार में मिल जाने को उद्यत कर दिया। मि० लियाकत अली अर्थ मन्त्री बनाये गए। इस सहयोग से भारत की दशा और भी बिगड़ती गई। क्योंकि मुस्लिम लीग पाकिस्तान की मांग की रट लगाये हुए थी। और कांग्रेस को सहयोग देनेके स्थान पर रुकावटें डाल रही थी। इस पर यह निश्चय हुआ कि भारत जून १९४८ तक पूर्ण स्वतन्त्र कर दिया जावेगा। और मुसलमानों को यह आश्वासन दिया जा चुका था कि उनकी इच्छा के विरुद्ध उन पर कोई भी विधान लागू नहीं किया जावेगा। इस से लीग ने बहुत लाभ उठाया। साम्प्रदायिकता में ध्वस्त रही जिसके कारण पंजाब, सिंध, व सीमा प्रांत में रक्तपात चालू रहा।

मौण्टबेन भारत में

२३ मार्च सन् १९४७ को लार्ड वेवल के स्थान पर लार्ड मौण्टबेटन गवर्नर जनरल बन कर भारत आये। उन्होंने सब नेता गर्णो से मिल कर यह निश्चय किया कि मुस्लिम लीग को पाकिस्तान दे दिया जाये। किन्तु पंजाब व बंगाल के हिन्दू प्रधान भागों को पाकिस्तान में न मिलाया जाये। इस विषय में ब्रिटिश सरकार द्वारा ३ जून ४७ को एक घोषणा की गई। जिस में भारत का विभाजन इस प्रकार किया गया—

सीमा प्रान्त, बिलोचिस्तान, सिन्ध, पश्चिमी पंजाब, और पूर्वी बंगाल (सिलहट ज़िले के साथ) पाकिस्तान को।

पूर्वी पंजाब, दिल्ली, युक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त, पश्चिमी बंगाल, आसाम, बिहार, उड़ीसा, मद्रास और बम्बई भारतवर्ष को। रियासतों को यह अधिकार मिला है कि वे जिस संघ में मिलना चाहें मिल सकती हैं और स्वतन्त्र भी रह सकती हैं।

इतने पर भी भारत में रक्तपात की गाड़ी पूर्ण वेग से बही जा रही थी, उसे रोकने के लिये बापू ने शीघ्र ही स्वराज्य देने का अनुरोध किया। अब पाश्चात्य सरकार की मन की इच्छा पूर्ण हो चुकी थी। इसलिये ८ जौलाई को ब्रिटिश पार्लियामेंट ने नया बिल पास करके भारत और पाकिस्तान दोनों को औपनिवेशिक स्वराज्य देने का निश्चय किया, और यह भी निश्चय किया गया कि जून १९४८ के बजाय १५ अगस्त १९४७ को ही भारत स्वतन्त्र कर दिया जाये।

१५० वर्षों के पश्चात् गोरी सरकार का शासन १५ अगस्त १९४७ को समाप्त हो गया और भारत तथा पाकिस्तान दोनों स्वतन्त्र उपनिवेश बन गये। इसके पश्चात् विदेशी सेनाओं को भी भारत छोड़ने की भी व्यवस्था की गई।

विभाजन का परिणाम

वाइसराय तथा सरकारी अधिकारियों ने दिन रात परिश्रम करके भारत के विभाजन को कुछ मास में कर डाला। सब दफ्तरों के काग़ज़ात, किताबें, फर्नीचर, कर्मचारी और उनकी पुरानी पैंशनें, मशीनें, कारखाने सबका विभाजन किया गया। प्रत्येक प्रान्त के सरकारी भवनों का अनुमान लगाया गया। सेनाओं, रेलगाड़ियों, लारियों, जहाज़ों इत्यादि को बराबर २ बांट दिया गया। रैडक्लिफ नामक अंग्रेज ने सीमा का बटवारा कर दिया।

इसके उपरान्त पंजाब के दोनों भागों में अल्पसंख्यकों पर अत्याचार आरम्भ हो गये। रक्तपात, नरसंहार लूटमार और आगज़नी के

भयंकर कांड होने लगे। अनेक स्त्रियों पर बलात्कार कर उनके अंगों को काट डाला गया। इस आतंक से तंग आकर अल्प संख्यक रक्षा के हेतु भागने लगे। पाकिस्तान से लगभग ४० लाख हिन्दू सिख अपने भवनों लाखों करोड़ों रुपयों को छोड़ कर भारत चले आये।

इन शरणार्थी बन्धुओं के खाने पीने तथा बसाने के प्रबन्ध में सरकार ने बड़ी तत्परता से काम लिया।

रियासतों की समस्या

१५ अगस्त १९४७ से पूर्व भारतवर्ष में करीब ६०० रियासतें थीं जिनकी आबादी लगभग ९ करोड़ तथा क्षेत्रफल ७ लाख वर्ग मील था। भारत सरकार के महान् नीतिज्ञ श्री सरदार वल्लभभाई पटेल रियासत सचिवालय के प्रधान मन्त्री ने अपनी कुशलता से सभी रियासतों को भारतीय संघ में सम्मिलित कर लिया और निम्न-लिखित चार परिवर्तन किये थे।

१—छोटी २ रियासतों को समाप्त करके उन्हें आस पास के प्रान्तों व रियासतों में मिला दिया गया।

२—मध्य श्रेणी की रियासतों को परस्पर संघ बनाकर एकत्र कर दिया गया और उनके शासन प्रबन्ध को केन्द्रित कर दिया गया। लगभग ३०० रियासतें ६ रियासत संघों में इस प्रकार सम्मिलित हो चुकी हैं—

नाम संघ	अन्तर्गत रियासतों की संख्या
१—सौराष्ट्र संघ	२२०
२—मत्स्य संघ	४
३—विन्ध्य प्रदेश	३५
४—राजस्थान संघ	१०
५—मध्य भारत	२०
६—पटियाला तथा पूर्वी पंजाब	८

३—जयपुर, जोधपुर और बीकानेर आदि राजपूताने की बड़ी रियासतें अब तक अपनी पृथक सत्ता को नहीं छोड़ सकीं।

४—रियासतों में निरंकुश शासन को दूर करके जनतंत्र प्रणाली को प्रचलित करने की चेष्टा की गई।

५—पुलिस, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि विभागों का भी संयुक्त संगठन किया गया।

भारतीय सरकार से सम्बन्ध

रियासतें तथा संघ अपने प्रान्तीय प्रबन्ध में स्वतन्त्र होने पर भी निम्नलिखित तीन विषयों पर भारत की केन्द्रीय सरकार के अनुशासन में रहेंगी—

१. राष्ट्र रक्षा
२. विदेशों से सम्बन्ध
३. यातायात

हैदराबाद व काश्मीर की समस्या—

सब रियासतों के सम्मिलित होने पर भी हैदराबाद और काश्मीर के शासकों ने संघ में शामिल नहीं होना चाहा। हैदराबाद का नवाब मुस्लिम राज्य के प्रभुत्व के स्वप्नों को घड़ियाँ गिन रहा था। वहाँ की इत्तहादुल पार्टी और रज़ाकारों ने जिसके नेता कासिम रिज़वी और मीर लायकअली थे, वे सब भारत पर अपना आधिपत्य जमाने की चेष्टा कर रहे थे। इस चेष्टा के फल स्वरूप ६६ प्रति शत हैदराबाद के निवासी हिन्दुओं पर नृशंस अत्याचार किये। विवश होकर भारत ने इसके प्रति सख्ती आरम्भ की। और ६-७ दिनों के कठिन परिश्रम के पश्चात् निज़ाम ने शस्त्र डाल दिए। इसके उपरान्त सरकार ने जनरल चौधरी के नेतृत्व में अस्थाई सरकार स्थिर कर दी।

काश्मीर में ६६ प्रतिशत मुसलमानी बहुमत था। काश्मीर की दक्षिण पूर्वी सीमायें भारत से मिलती हैं और पश्चिमी उत्तर सीमाएं

पाकिस्तान से मिलती हैं। काश्मीर का शासक हिन्दू होने के कारण पाकिस्तान में सम्मिलित नहीं होना चाहता था अतः पाकिस्तान ने ज़बरदस्ती उस पर कब्जा करना चाहा और चुपके २ पठानी फ़ौजों को सहायता देने लगा जो बढ़ते २ श्रीनगर तक पहुँच गई थीं। काश्मीर नरेश इस आतंक से घबरा गया और भारतीय संघ में सम्मिलित होने की घोषणा कर दी। ऐसा होते ही भारतीय सेनाएं वायुयान द्वारा काश्मीर पहुँच गईं।

युद्ध में भारतीय सेनाओं की विजय हुई। वहाँ की जनता के नेता शेख अब्दुल्ला भारत संघ में मिलना चाहते हैं। क्योंकि वे पाकिस्तान के घोर विरोधी हैं। यह सब निर्णय काश्मीर की जनता पर छोड़ दिया गया है।

नया विधानः—

संविधान सभा में २१ फरवरी १६४८ को डाक्टर अम्बेदकर की अध्यक्षता में मसविदा बनाकर विधान सभा में पेश कर दिया। लगभग कुछ वर्ष के कठिन परिश्रम के पश्चात् भारतीय विधान परिषद् में इस विधान की स्वीकृति २६ नवम्बर को हुई उस समय डा० राजेन्द्रप्रसाद ने अपने भाषण द्वारा इसकी राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक पृष्ट भूमि का पूर्ण रूप से जनता को दिग्दर्शन कराया।

संविधान की राजनीतिक पृष्ठभूमि—

इसकी प्रस्तावना के अवलोकन करने से ज्ञात हो जाता है कि देश की सरकार को सम्पूर्ण प्रभुता भारत के नागरिकों से प्राप्त होती है। इसमें मुख्य विशेषतायें यह हैं। सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक न्याय, विचार, विश्वास, तथा धार्मिक पूजाविधि की स्वतन्त्रता, नागरिकता के अधिकार, विकास अवसरों पर समानता तथा भ्रातृत्व प्रेम और राष्ट्रीय संगठन इत्यादि। इसको प्रजातन्त्रात्मक इसलिए कहा गया भारत के प्रधान अधिशासक का पद कोई पैतृक सम्पत्ति न होकर योग्यता तथा चुनाव के द्वारा प्राप्त होने वाला पद होगा।

इसकी तुलना संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के विधान से करने पर पता चलता है कि यह दोनों ही संविधान संघीय होते हैं और दोनों में ही प्रधान प्रशासक जनता द्वारा चुना जायेगा। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह भी है कि किसी भी राज्य को संघ से पृथक होने अथवा अपना संविधान स्वयं बनाने का अधिकार न दिया गया। इसके अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर उसका संघीय स्वरूप हटा दिया जा सकता है और वह एकात्मक विधान रूप में व्यवहार में लाया जा सकता है। साधारण परिस्थितियों के अतिरिक्त युद्धकालीन समय में अथवा किसी भी राष्ट्रीय संकट के समय में सारा देश एकात्मक राज्य के रूप में परिणित किया जा सकता है।

संविधान में व्यक्ति का स्थान—

इस विधान में व्यक्ति के अधिकारियों की बड़ी विशद और विस्तृत घोषणा की गई है। इसका कारण यही है कि भारत में सामाजिक असमानता की अधिकता और उसका शोषण बहुत चुका था। इसके अतिरिक्त भारतीय विधान निर्माताओं के सन्मुख संयुक्त राष्ट्र का विधान था। बजाय इसके कि भारत सर्वोच्च न्यायालय को व्यक्ति के मूल अधिकारों की व्याख्या करने का अवसर दिया जाता, संविधान में ही उसके मूल अधिकारों की घोषणा की गई है।

संविधान के द्वारा व्यक्ति को दिये गए अधिकार मुख्य रूप से निम्न हैं—

१. सामानता का अधिकार
२. स्वतन्त्रता का अधिकार
३. शोषण के विरोध का अधिकार
४. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार
५ सांस्कृतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार
६. सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार
७. *वैधानिक संरक्षण का अधिकार*

इसके अतिरिक्त विधान की १४ वीं धारा में कानून के आगे प्रत्येक व्यक्ति को समानता के अधिकार मिले हैं। धर्म विश्वास को लेकर किसी प्रकार का भेद भाव राज्य के कार्यों में नहीं किया जायेगा। इतना होते हुए भी विधान की १७ वीं धारा में ऊँच नीच के कलंक के मिटाने के लिए विशेष रूप से व्यवस्था की गई है और इस प्रकार से व्यक्ति की समानता के अधिकार की पूर्ण रूप से पुष्टि कर दी गई है।

१६ वीं धारा के अन्तर्गत नागरिकों को अपने विचार प्रकट करने तथा संस्थाएं बनाने, आवागमन, निवास, सम्पत्ति प्राप्त करने, रखने तथा हस्तांतरित करने, कोई भी उद्योग धन्धा, व्यवसाय या आजीविका अपनाने की पूर्ण स्वतन्त्रता दी गई है. हेबियस कार्पस के सिद्धान्तों को विधान की २० वीं तथा २१ वीं धारा के अन्तर्गत निहित कर दिया गया है। जिसका सारांश यह है कि किसी भी व्यक्ति को बिना कानून कार्यवाही के उसको स्वतन्त्रता से वंचित नहीं किया जा सकता। विधान की २२ वीं धाराके अन्तर्गत व्यक्ति की मनमानी गिरफ्तारी और अनिश्चित काल तक की नजरबन्दी के विरुद्ध व्यवस्था की गई है। नज़रबंद व्यक्ति अपनी इच्छानुसार किसी भी कानूनी सलाहकार से सलाह लेने का अधिकारी रहेगा।

२३ वीं धारा के अन्तर्गत नागरिकों का क्रय विक्रय तथा बेगार अपराध बनाये गये हैं। और २४ वीं धारा में बताया गया है कि १४ वर्ष की अवस्था से कम का कोई नागरिक फैक्टरी या खान अथवा किसी भयानक कार्य में नहीं लगाया जायेगा।

२५ वीं धारा से ३० वीं धारा के अन्तर्गत धार्मिक, सांस्कृतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकारों का उल्लेख किया गया है।

३१वीं धारा के अन्तर्गत बताया गया है कि कानूनी तरीकों के सिवाय, अन्य किसी तरीकों से किसी भी व्यक्ति को उसकी संपत्ति से वंचित न किया जायेगा। जिस किसी भी सम्पत्ति का अधिकार या स्वामित्व सार्वजनिक हित के लिये लिया जायेगा, उसकी क्षतिपूर्ति की जायेगी।

३२ वीं धारा के अन्तर्गत बताया गया है कि संविधान द्वारा प्रदान किये गये अधिकारों को कार्यान्वित कराने का उत्तरदायित्व देश के लिये सर्वोच्च न्यायालय को दिया गया है जो सदैव इसके लिये सजग रहेगा कि व्यक्ति के मौलिक अधिकारों पर कोई भी कुठाराघात न हो सके।

संविधान की सामाजिक और आर्थिक पृष्ठ भूमि

विधान के चतुर्थ खण्ड में राष्ट्र नीति के आदेशात्मक सिद्धांतों की घोषणा की गई है। इसमें बताया गया है कि राज्य जनता की सुख सुविधा को बढ़ाने के लिये सदा यत्नशील रहेगा और इसके लिये वह इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था उत्पन्न करेगा जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त हो सके। विशेष रूप से राज्य इस बात के लिये यत्न शील होगा कि प्रत्येक नागरिक पुरुष हो अथवा नारी आजीविका उपार्जन करने का अधिकारी होगा।

भारत की वैधानिक प्रगति का अंश

इस खण्ड में यह भी बताया गया है कि राज्य देश के उत्पादक साधनों के स्वामित्व और नियन्त्रण का इस प्रकार बटवारा करेगा 'जिससे जनता का अधिक से अधिक लाभ और कल्याण हो सके

आज की व्यवस्था को उत्पन्न करने के लिये ही कांग्रेस ने इतने दिनों से स्वतन्त्रता का संग्राम चलाया था। तब तक देश की स्वतंत्रता व्यर्थ सिद्ध होती है जब तक उस देश के निवासी आर्थिक समानता न पा सके हों। जो मौलिक अधिकार और सिद्धान्त इस संविधान में आये हैं उनका उल्लेख कांग्रेस ने पहले ही घोषणा पत्रों द्वारा कर दिया था। अतः यह कहना चाहिये कि पिछले पचास वर्षों से जिन सिद्धान्तों के लिए हमारे राष्ट्र से स्वाधीनता संग्राम का आरम्भ हुआ, उन्हीं को इस विधान में विशेष स्थान मिला।

यह भारतीय संविधान देश की जनता की आशाओं और आकांक्षाओं के अनुकूल विकास और प्रगति का जीता जागता स्वरूप है।

इस प्रकार से भारत की वैधानिक प्रगति हो सकी है।

(सम्पादक)

'चलते बोलते चित्रपट'

आज के 'ऐटम युग' में विज्ञान ने जो अपना चमत्कार दिखाया है, उससे हम सब परिचित हैं। इसी कला की उन्नति से हमें अपने मनोरंजन के साधन 'चलते-बोलते चित्रपट' जैसी अमूल्य देन प्राप्त हुई। इसका जन्म वैसे तो बीसवीं सदी के अन्तर्गत ही हुआ किन्तु इसके पहले भी मूक छाया-चित्रों द्वारा जनता की मनोरंजन की आवश्यकता को पूरा किया जाता था। समय की गति के साथ ही विज्ञान ने इतनी उन्नति कर ली कि कुछ वैज्ञानिकों ने छाया चित्रों में बोलने की शक्ति उत्पन्न करने के लिये साहसपूर्ण खोजें की और अन्त में जिन छाया चित्रों को 'एडीसन' जैसे प्रसिद्ध वैज्ञानिक ने जन्म दिया उनमें बोलने की भी शक्ति उत्पन्न हो गई। इस प्रकार धीरे २ चित्र संसार में उन्नति होने लगी। जनता का भी, नाट्यशालाओं से दिल ऊब चुका था। एक नवीन वस्तु चित्रपट को देखने के लिये वे शीघ्र ही इस ओर झुक गये।

आरम्भिक चित्रों में कला का इतना विकास न हो सका क्योंकि उनमें केवल साधारण घटनाओं की कथा ही वर्णित होती थी। इन चित्रों का आधार राजाओं की लड़ाइयाँ और जादूगरों की चटकीली कहानियाँ ही थी। यह तो था चित्रपट का शैशव काल। समय बीतने के साथ ही कुछ अच्छे कलाकारों का ध्यान इन चित्रों की ओर आकर्षित हुआ और उन्हीं के प्रयास से नवीन ढंग के सुन्दर चित्रों द्वारा भारत की संस्कृति पूर्ण रूप से विकसित होने लगी। उन्होंने अपने सन्मुख उच्च आदर्श रखकर जगत के सर्व अंगों पर चित्र बनाने आरम्भ किये और

इस प्रकार हमारे सम्मुख राष्ट्रीय, ऐतिहासिक, धार्मिक और सामाजिक चित्रों का आगमन हुआ। जिनका जनता ने हृदय से स्वागत किया अच्छी फ़िल्मों को बनाने में अधिकतर प्रभात चित्र, प्रकाश पिक्चर्स, बौम्बे टाकीज़, न्यूथियटर्स तथा रंजीतमुवीटोन आदि ने ही सर्वप्रथम प्रयत्न किया।

इस प्रगति को देखकर जनता रङ्गमंच का सर्वथा परित्याग कर चित्रों की ओर आकर्षित हुई। क्योंकि सुन्दर से सुन्दर वस्तु भी नेत्रों को खटकने लगती है यदि उसमें कोई नवीनता न लाई जाये— यही हाल था भारतीय रङ्गमंच का। समय और धन का अधिक व्यय होने पर भी जब रङ्गमन्च की त्रुटियों दूर न हो सकीं—तो निराश दर्शकों को ऐसे समय में छाया चित्रों ने अच्छा सहारा दिया। सिनेमा जाने से कम पैसों में, कम समय में, जब दर्शकगण नाटक देखने से अधिक सन्तुष्ट होने लगे तो फ़िल्मों की महत्ता और भी बढ़ गई। अच्छे २ घराने के लोगों ने भी नाटकों को छोड़ सिनेमा देखना आरम्भ कर दिया। अभी भी चित्र जगत में उच्च घराने के कलाकारों की कमी थी। पर जब इस व्यवसाय में धन अधिक उपार्जन करने के लिये पूरे २ साधन प्राप्त हो गये तो अच्छे २ कलाकारों की कमी भी जाती रही। एक विशेषता चित्र-पट में यह थी कि फ़िल्म में जो दृश्य हम दिखा सकते हैं वह बेचारे रङ्गमंच के भाग्य में कहाँ ? रङ्गमंच पर न तो पूं २ करती हुई मोटर दौड़ सकती है और न कल २ करने वाली नदियों की चंचल लहरें क्रीड़ा कर सकती हैं। इस अभाव के कारण रङ्गमन्च को हार खानी ही पड़ी।

छाया चित्रों द्वारा न केवल कला का ही विकास हुआ बल्कि देश की विदेशियों द्वारा पद-दलित संस्कृति को पुनः उठाने में चित्रपट ने पूरा सहयोग दिया। पाँचों कलाओं की उन्नति होने लगी और देश में जागृति का पुनः स्वर्ण अवसर आ गया। राम राज्य और भरत-मिलाप जैसे चित्रों ने तो धार्मिक-प्रचार में जो सहायता की वह अमूल्य है। समाज को बदल डालो जैसे सामाजिक चित्रों ने समाज को रूढ़िवाद की धारायें छोड़ कर प्रगतिवाद की तूफ़ानी लहरों में कूदने को उत्साहित

किया। शहीद और आन्दोलन जैसे राष्ट्रीय चित्रों ने देश भर में क्रांति सी मचा डाली। फिर तो क्या था कितने ही अच्छे २ और उच्च आदर्शों के चित्र स्टेज पर आने लगे। शान्ताराम, देवकी बोस, केदार शर्मा, विजय भट्ट, महबूब जैसे सफल डायरेक्टरों को पाकर फ़िल्म जगत इतना फूला फला कि आज संसार में अमरीका के हालीवुड के पश्चात् दूसरा देश भारत ही ऐसा है जो इस कला में सर्वोन्नत है।

अब तो उच्च घरानों के युवक और युवतियाँ चित्रों में निर्भय होकर अभिनय करते हैं। पृथ्वीराज, किशोर साहू, दिलीप कुमार जैसे महान कलाकार और नर्गिस, मधुबाला, कामिनी कौशल जैसी योग्य अभिनेत्रियों के होने से चित्र जगत चमक उठा है। किन्तु फिर भी इतना होते हुए भी कुछ निर्देशक और फ़िल्म निर्माता केवल धनोपार्जन करने के लिए ही जनता के सन्मुख अश्लील चित्रों का निर्माण करते हुए नहीं चूकते। उन्हें तो केवल दो चाँदी के टुकड़े चाहिएँ चाहे उसके लिए उन्हें अपनी सभ्यता और संस्कृति का मुर्दा ही क्यों न निकालना पड़े। आज हमारे सामने 'शहनाई' और 'जेब कतरा' जैसे बुरे चित्रों का प्रदर्शन हो रहा है क्या ऐसे चित्र जनता पर अच्छा प्रभाव डाल सकते हैं? कदापि नहीं। 'किस्मत' और 'संग्राम' जैसे चित्रों को देख कर युवक चोर और जेब कतरे न बनेंगे तो और क्या बनेंगे। इतने बड़े कलाकार अशोक को ऐसा कार्य करते देख लज्जा से नेत्र झुक जाते हैं। कई उपहास-चित्र ऐसे बन रहे हैं जिन्होंने हँसी २ में कला और समाज-सभ्यता का गला ही घोंट डाला है जैसे कि 'ढोलक' और 'शुक्रिया' इन फ़िल्मों में ऐसे बेतुके अश्लील गीत और संवाद हैं जिनको सुनकर हँसी के साथ रोना भी आता है।

अब हमें सोचना है कि यह त्रुटियाँ कैसे दूर हों जिन्होंने फिल्म-जगत को अवनति के गड्ढे में गिराने की चेष्टा की। सबसे प्रथम तो हमें अच्छे चित्र निर्माताओं को यही कहना है कि उन्हें धन का लोभ छोड़कर जनता के भले को देखते हुए अच्छे चित्रों का निर्माण करना

चाहिए। कहानी लेखक भी ऐसे ही नियुक्त किये जाने चाहियें जो केवल युवक युवतियों के कोरे प्रेम की कथायें न लिखकर कुछ समस्या-प्रधान कहानियों का सृजन करें। क्या ही अच्छा हो यदि टैगोर और प्रेमचन्द जैसे महान लेखकों की कृतियों को चित्रपट पर प्रदर्शित किया जावे। अभी कुछ ही दिन हुए तो बंकिमचन्द्र के 'रजनी' उपन्यास क रूपान्तर 'मशाल' नाम से चित्रपट पर आया। इसके अतिरिक्त टैगो का 'नौका डूबी' उपन्यास 'मिलन' के नाम से और शरतचन्द्र क 'स्वामी' उपन्यास 'स्वामिनी' के नाम से चित्रों का निर्माण हुआ। यि ऐसे ही चित्रों का सृजन होता रहा तो वस्तुतः भारत किसी दिन इ कला में अवश्य ही उन्नति करेगा। आज भी हम देखते हैं कि हमा सम्मुख 'संसार' और 'हम लोग' जैसे चित्र जो आये हैं वह क्या हम प बुरा प्रभाव डाल सकते हैं? 'हम लोग' में यथार्थ का जो स्पष्ट चित्र हम देखते हैं वह हमें आज तक किसी नाटक या चित्र में नहीं दिखा दिया। कहानियोंके प्लाट अर्थात् कथा वस्तु यदि ऐसी ही सच्ची घटना पर आधारित हों तो देश और समाज का भला अवश्य हो सकता है हमारे कई चित्रों में पाश्चात्य प्रभाव पड़ने से चित्रपट में पर्याप्त वृदि आ गई है। हमें उसको हटा कर शुद्ध भारतीय संस्कृति को ही अपना चाहिए। कई गीत और संगीत तो बिल्कुल ही अंग्रेज़ी ढंग के होते जो हिन्दुस्तानी बोली में होने से तनिक भी भले ज्ञात नहीं होते चित्र निर्माण करते समय देश काल आदि की ओर भी ध्यान दे आवश्यक है। अभिनेताओं और अभिनेत्रियों के वस्त्राभूषण और 'मे अप' बनाव सिंगार भी समय २ के अनुसार ही होना चाहिए। दृष्टिकोण से अंग्रेज़ी पिक्चर 'हेमलट' देखने योग्य थी।

यदि इन सब दृष्टिकोणों को ध्यान में रख कर चित्र निर्माण कि तो भविष्य में ऐसी आशा की जा सकती है कि भारत का चि पर्याप्त उन्नति कर सकता है। (सुश्री सुरेश शरण 'रश्मि

भारतीय समाज में नारी का स्थान

जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सुनीति बहार।
अलि! अब रही गुलाब की, अपत कटीली डार॥

सचमुच वह बहार बीत ही गई। उसे बीते हुए समय भी काफी हो चुका है। अब तो रस लोलुप भ्रमर देख केवल पत्तर विहीन ठूंठ मात्र ही रह गया है। भला यहां से तुझे क्या प्राप्त होगा? सब स्वप्न ही है।

हमारे भारत में नारी-जाति की ठीक आज यही दशा है। कुछ विद्वानों का मत है कि यह जाति किसी समय उत्कर्ष की चरम सीमा पर थी। सम्यताभिमानी आज कल के नवयुवक शायद उस समय को याद कर विधाता को न कोसने लग जांय? परन्तु हाँ! वह समय कुछ ऐसा ही था। देवियों का मान देवता किया करते थे। प्रत्येक समाज इनके सम्मुख झुकने में अपने को गौरवान्वित समझता था। नारी-जाति के उठने में ही देश का अहोभाग्य था, क्योंकि नारी ही राष्ट्र की नींव है इसके उठने में ही राष्ट्र का निर्माण हो सकता है। यही राष्ट्र की सेविकाएं भी रही हैं। इनके ऊपर ही देश का उत्थान-पतन निर्भर रहा है। यदि यह चाहें तो अपने देश को अपने गुणों के द्वारा उन्नति के शिखर पर पहुंचा कर उसे एक "सोने की चिड़िया" बना सकती हैं और यदि नहीं चाहें तो देश को अपने अवगुणों के द्वारा पतन के गर्त में डाल कर 'कलंकित' भी कर सकती है। अतः किसी देश के उत्थान पतन का भार इन्हीं पर निर्भर है।

प्राचीन वैदिक काल में नारी का समाज में सम्मान पूर्ण स्थान रहा है। वह नर की सब बातों में सच्ची सहधर्मिणी थी, इसलिये हमारे वेद शास्त्र आदि वैदिक ग्रन्थों में इसे अर्धाङ्गिनी का रूप दिया गया है। इसके बिना पुरुष को पंगु समझा गया।

'नारी' इस छोटे से दो अक्षर के पद में अपार करुणा, वात्सल्य तथा स्नेह भरा हुआ है और वास्तव में ही नारी वात्सल्य, त्याग तथा

करुणा की त्रिपथगा है। इसको जाया, जननी तथा कामिनी या जाया माता और धात्री इन तीनों रूपों द्वारा हमारे ग्रन्थों में सम्मानित किया गया है। नारी ने स्वयं भी विष्णु के समान समय के अनुसार रूप परिवर्तन किये हैं। आर्यों के समय में नारियों का अत्याधिक सम्मान किया जाता था। यज्ञ की सफलता उसकी यज्ञ में उपस्थिति पर निर्भर थी। अभिप्राय यह कि उस समय में पारस्परिक तथा सामाजिक जीवन में स्त्रियों के अधिकार पुरुषों के ही तुल्य थे। दोनों के परस्पर प्रेम, सहयोग तथा सहायता से ही मनुष्य जीवन के ध्येय की पूर्ति हो सकती है। वह नारी) प्रेमांगण में तो नायिका का पार्ट करती, परन्तु रणांगण में नायक का। वीरता, धीरता तथा कटार उनकी विश्वस्त सहेली थीं। *इस सिद्धान्त की सत्यता राजपूत स्त्रियों की वीरता के उदाहरणों से* प्रमाणित होती है:—

जिस समय राजपूत वीर युद्ध के लिये जाते थे तो उनकी अर्धाङ्गिनी ललनाएं उपदेश देती थीं:—

पाछा फिर मत झांक्यो, पग मत दीज्यो टार।
कट मत जाज्यो खेत में, पर मत भाज्यो हार॥

और पति के युद्ध में मारे जाने पर करुणा मूर्ति नारी की भांति रोने नहीं बैठती वरन् वे कहती हैं:—

भल्ला हुआ जु मारिया बहिणी महारा कन्तु।
लज्जेजं तु वयंसि यहु, जइ भग्गा घर एन्तु॥

हे सखी. बड़ा ही अच्छा हुआ जो मेरा पति युद्ध भूमि में मारा गया। यदि कहीं भाग कर जान बचा कर घर आता तो आपके सामने मुझे लज्जित होना पड़ता। यह कह कर वह पति के साथ चिता पर जीवित जलकर अपनी सहधर्मिणी होने का परिचय देती है। इस प्रकार नारियों के हृदय कामी कुत्तों के क्रीड़ागृह नहीं थे। यद्यपि रावण एक चक्रवर्ती सम्राट था किन्तु सीता की आँखों में 'कामी कुत्ता' था। दुर्योधन! महाबली एक छत्र सम्राट दुर्योधन में कौन से गुण नहीं थे?

परन्तु पाँचजी उसे सर्वदा एक डरपोक हीजड़ा ही समझती रही

सीता का सतीत्व तो विश्व भर के साहित्य में कहीं अपनी उ
नहीं रखता। महाभारत-काल संस्कृति तथा धर्म मर्यादाओं की दृ
पूर्ववर्ती कालों से हीनतर माना जाता है, परन्तु उस काल में
गान्धारी, कुन्ती जैसी आदर्श नारियों के दर्शन होते हैं।

आर्यों के हृदय में नारी-जाति के प्रति श्रद्धा! नहीं, अनन्त
और साथ में ही भक्ति भी थी!

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते यत्र देवता! अर्थात् जहाँ नारी-
होता है, वहां देवता निवास करते हैं का आदर्श था। आर्य लोग अ
अपमान पी सकते थे किन्तु नारी का नहीं। भीम को द्रौपदी के अप
ने ही तो पुरुष रक्त पीने को वाध्य किया था। एक निरामिश भोजी
बर्बर हिंसक पशु बना दिया।

यह था आर्यों के समय देवियों का सम्मान!

पूर्व मध्य काल में नारी जाति ने अपने नारीत्व धर्म को तनिक
विचलित न होने दिया। जिस समय गौतम यशोधरा को अकेली सं
छोड़कर बन को चले गये। इधर प्रातः काल जब यशोधरा जागी
उसने अपने पति को न पाया तो वह बहुत व्याकुल हुई, परन्तु
वह अपना पुत्र के प्रति कर्त्तव्य पति का साथ त्यागने पर भी निभ
है और वह कहती है—

'मेरी मलिन गुदड़ी में भी है राहुल सा लाल'!

परन्तु यशोधरा की शुभ कामना पति के लिये ज्यों की त्यों
रही। पति की विरह-वेदना से पीड़ित उसकी इच्छा है—

'बस सिंदूर बिन्दु से मेरा जगा रहे यह भाल'

यद्यपि वह एक कर्म निष्ठा नारी है। परन्तु, फिर भी वह अ
जननी पद के उत्तरदायित्व का अनुभव करती है। और कहती हैं—

स्वामी मुझको मरने का भी, तो दे न गये अधिकार।
छोड़ गये मुझ पर अपने वस, राहुल का सब भार॥

उनके हृदय में सदा यही परचाताप बना रहता है कि 'मेरे स्वामी आप मुझसे कह कर क्यों नहीं गये। यदि आप मुझसे कह कर जाते तो मैं आपके मार्ग का काँटा न बनती अपितु स्वयं ही मैं प्रसन्नचित होकर भेज देती !

इसी प्रकार जब हम परित्यक्ता भारत-आश्रम में तत्पर शकुन्तला से यशोधरा की तुलना करते हैं तो वह तनिक भी कम नहीं दीखती ! जिस प्रकार पाषाण हृदय दुष्यन्त को शकुन्तला के सम्मुख अन्ततोगत्वा हार माननी पड़ी, इसी प्रकार महात्मा बुद्ध भी नारी जाति की महत्ता की पुष्टि करते हुए कहते हैं—

'दीन न हो गये, हीन नहीं नारि कभी !
भूत दया मूर्ति वह, मन से शरीर से !!'

संसार की आँखें उन देवियों को एक बार पुन: देखना चाहती हैं परन्तु वे हैं कहाँ ?

भारत का उदय-भानु अस्त हुआ। पारस्परिक द्वेष के कारण धीरे धीरे अनार्यों (यवनों) का अधिकार भारत में जम गया। आर्यों की व्यवस्था का ह्रास हो गया। राजनैतिक व्यवस्था तो पहले से ही पतन के गर्त में पड़ी अपनी अन्तिम घड़ियों को गिन रही थी। अनार्य अर्थात् विदेशी शासकों की सभ्यता का प्रभाव भारतीय सभ्यता पर पड़ा और नारी-जाति में पर्दे की प्रथा का श्रीगणेश हो गया। इस कुप्रथा के कारण नारी-जाति की स्वतन्त्रता लुप्त हो गयी। ऐसा प्रतीत होता था मानो उसके स्वतन्त्रता रूपी जीवन पर डाका सा पड़ गया हो। तथा उस अबला की स्वतन्त्रता रूपी पूंजी लुट गई हो और वह चार दीवारी की बन्दी बन गई हो ! प्रतीत क्या होता था वास्तव में ही नारी-जाति के जीवन की स्वतन्त्रता/रूपी पूंजी को 'यवन शासक' रूपी लुटेरों ने लूटकर उसे चार दिवारी की बन्दी बना दिया। तथा जिस प्रकार से एक पिंजरे में कोई पक्षी एक बार फाँसकर फं। जाता है फिर हमेशा उस पक्षी से यही भय लगा रहता है कि कहीं वह पिंजरा खोल या तोड़कर उड़ न

जाय, ठीक यही दशा उस समय नारी-जाति की थी। उसे चार दिवारी में बन्द करके रखा जाता था और उनके साथ भी एक पक्षी की भांति सतर्क रहना पड़ता था कि कहीं यह नारी रूपी पक्षिणी चार दिवारी रूपी पिंजरे को खोल कर भाग न जाय।

वास्तव में उस युग में पूर्व की नारी की स्वतन्त्रता का अंकुर ब्राह्मणों तथा मठाधीशों के कठोर करों द्वारा उखाड़ा जा चुका था। वे नारी-जाति से शास्त्रार्थ करने में अपना निरादर समझते थे। जिस प्रकार कालिदास ने विद्योत्मा से शास्त्रार्थ करना अस्वीकार किया था। परन्तु विद्योत्मा की एक ही फटकार ने कालिदास जैसे कवि को ठीक कर दिया। बौद्ध काल में नारी-जाति की सोई हुई स्वतन्त्रता ने फिर से करवट बदली। भारतीय भिक्षुकों के साथ-भिक्षुणियां भी बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये विदेश भेजी गईं। ब्राह्मणों के द्वारा कुसलाई गई, जनता ने इसका घोर विरोध किया, पर सफल न हो सकी। बौद्ध-धर्म का अधिक विकास न होने के कारण नारी-जाति को फिर से अपने उसी पिंजरे में आना पड़ा और अन्त में निर्गुण सगुण व्यक्ति के रूप में उसी ब्राह्मण धर्म का प्रादुर्भाव हुआ। जिसमें नारि-जाति का स्थान सामान्य रहा। गो-स्वामी तुलसीदास जी के इस पद्यः—

'ढोल गंवार शूद्र नर नारी, यह सब ताड़न के अधिकारी।'

को पढ़कर कुछ संकीर्णता के पुजारियों ने तुलसीदास जी पर नारी का अपमान करने का दोष लगाया है। परन्तु राम-चरितमानस में सीता का चित्रण करने वाली एक भक्त आत्मा नारी के प्रति अपनी अश्रद्धा का दिग्दर्शन कराये, उसके लिये यह कैसे सम्भव हो सकता है? अर्थात् कदापि नहीं। भक्ति के युग ने मीरा जैसी कवित्री को जन्म दिया है।

यह सत्य है कि इस युग के शासकों के प्रभाव के अन्तर्गत नारी को वेदनाओं तथा असम्मान के पंजे में फंस कर उसका शिकार बनना पड़ा। यह सब अवश्यम्भावी ही था। परन्तु, फिर भी हिन्दी के बहुत से

साहित्यकारों तथा समाज सुधारकों ने नारी के हित के लिये तथा उसके सम्मान के लिए विशेष सावधानी रखी। राजनैतिक तथा धार्मिक रीतियों की प्राचीन प्रथाओं को उठा दिया।

पश्चिमी जातियों के स्त्री-पुरुषों की समस्याओं के द्वारा होने वाले आन्दोलनों ने उनके गृहस्थी-जीवन के विकास को क्षीण किया। अंग्रेजी शासकों ने भी भारतीय गृह जीवन को कलह-पूर्ण बनाने का भरसक प्रयत्न किया किन्तु वे अपने इस प्रयत्न में असफल रहे। हां! इतना अवश्य हुआ कि पश्चिमी स्त्रियों का या कहिये कि पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव भारतीय नारी पर इतना पड़ा कि अब वह भारतीय नारी न बन कर तितली बन गई। परन्तु, यह प्रभाव भी क्षणिक ही रहा, क्योंकि भारतीय नारी में धर्म की भावना अभी तक बनी हुई है। उसमें अब भी इतनी प्रबलता है। अब उस पर स्वतन्त्रता का जादू भी नहीं चल सकता। और अधिक तर्क-वितर्क द्वारा ही उसके वास्तविक भावनात्मक अतल रूप को तुच्छ बना सकता है। आज भी उसका गृह-जीवन विकास का केन्द्र बना हुआ है।

वैसे तो आज भी नारी मानव हृदय-वासिनी बनी हुई है। भारतीय-ललना का गौरव अब भी उसमें अपनी मातृत्व भावना को केन्द्रित रखता है। परन्तु फिर भी साहित्य-समाज में वह आज सम्मान नहीं पाती! अन्त में हमें यही कहना पड़ता है कि भारतीय संस्कृति में नारी का स्थान बहुत ऊँचा है, तथा वह मानव-जीवन में रस का संचार करने वाली अंग है। (कुमारी शान्ती माथुर)

भारत और कृषि

यह कौन नहीं जानता कि भारत एक विस्तृत-विशाल कृषि-प्रधान देश है, जिसकी [illegible] प्रतिशत जनता की आजीविका का ये कृषि पर निर्भर है और [illegible] प्रतिशत जन भारती जनसंख्या का ही कृषि द्वारा

अपना तथा अपने परिवार का जीवनोपार्जन करते हैं। फिर तो यह कहने में भी अत्युक्ति न होगी कि यहां प्रत्येक तीन में से दो मनुष्यों की उदरपूर्ति का एक मात्र साधन कृषि है। केवल चीन को छोड़ कर संसार भर में अन्य कोई ऐसा देश भारत की समता नहीं कर सकता, जिस में इतनी अधिक जन संख्या केवल कृषि पर ही अवलम्बित हो। इस से स्पष्ट है कि प्रत्येक दृष्टिकोण से विशेषकर आर्थिक दृष्टि से भारत की कृषि का विश्व के सर्वदेशों में एक महत्वपूर्ण स्थान है। आज भी भारत की कच्चे माल की मांग पर सब बड़े-बड़े देशों की शिल्पकारी व उद्योग धन्धे आधारित हैं। इतना ही नहीं भारत खांड, तम्बाकू और मूँगफली आदि वस्तुओं में अन्य देशों का नेतृत्व करता है। इसके अतिरिक्त हमारी राष्ट्र भारत में पटसन और लाख में सबसे अधिक और कपास में अमरीका के पश्चात् अलसी के बीजों में अर्जनटाईना के पश्चात् तथा चाय और चावल में चीन के तुल्य ही उपज होती है।

इतना होने पर भी हमारे राष्ट्र के सम्मुख अन्न-संकट की समस्या भूत सा भयानक रूप धारण कर के आ खड़ी हुई है। इसका कारण क्या है? इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट है कि हमारी कृषि में बहुत सी त्रुटियां हैं जिसके फल स्वरूप जो उत्पादन होता है, वह भारत की बढ़ती हुई आबादी का पेट भरने में भी असमर्थ है और उसको दूसरों के आगे झोली पसारनी पड़ती है। यह दशा भारत की कृषि की आरम्भ से न थी। इस 'मशीन युग' से पहले हमारे देश की कृषि सर्व देशों से उत्तम थी। अन्य राष्ट्र भी भारत को एक समृद्धिशाली देश समझकर 'सोने की चिड़िया' के नाम से पुकारा करते थे। किन्तु संसार परिवर्तनशील है, समय के चक्र में भी परिवर्तन होते रहते हैं, तभी तो कहते हैं 'सबै दिन होत न एक समान' इस भगवान की लीला में सृष्टि के मानव को भी समयानुसार रूप परिवर्तित करने पड़ते हैं। योरोपीय देशों के नेत्र तो १६ वीं शताब्दी की औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) के होने के पश्चात् पूर्णतया खुल गये। उन्होंने

नवीन युग के साथ अपने जीवन में नव-स्फुर्ति
शीघ्र ही नवीन आविष्कारों द्वारा उन्नति के म
बेचारा भारत अभी भी सोया रहा, चूँकि उस
रहने का आलस्य का नशा चढ़ा हुआ था। अन
सित रूप से होने लगी। खड़...खड़ड...करने
मशीनों द्वारा भूमि जोती जाने लगी—खट...खट
बैलों के स्थान पर फिट-फिट करने वाले ट्रैक्टर
प्रकार नये २ साधनों द्वारा कृषि उत्तोत्तर बढ़ने लग
खोजों द्वारा नये-नये अच्छी किस्म के बीजों और
प्रयोग करने लगे, वहां भारत प्राचीन रूढ़ियों से जकड़
पर आ रहा था।

आज का युग प्रतियोगिता का युग है उसी देश का सं
है जो इस उन्नति की दौड़ में आगे निकल जाता है। अ
और ब्रिटेन ही इस अवसर का लाभ उठा रहे हैं। अब के
ही समय केवल नहीं है बल्कि कुछ करने का अवसर आ ग
आज स्वतन्त्र है वह जैसा चाहे कर सकता है। इसीलिए स
सुसार ही भारतीय सरकार का उद्देश्य होना चाहिए। वैसे
संविधान में भी इस ओर विशेष ध्यान दिया गया है, पर उन
यों को कार्य रूप में परिवर्तित करने का कार्य-चक्र बहुत धीरे-
रहा है। हम अब देखेंगे कि किन-किन कृषि सम्बन्धी समस्या
क्रमशः सुलझाना चाहिये।

हमारी कृषि में जो त्रुटियां और उनके कुपरिणाम हैं वह हम
व ही देखते रहते हैं। सबसे मुख्य त्रुटि जो हमारी कृषि में है-
कृषि का प्रकृति पर अधिक निर्भर रहना। जैसा कि हम प्रति
ने है अधिकतर बेचारे कृषक अपनी खेती को अन्य सिंचाई
न होने के कारण वर्षा की कृपा पर
वह होता है कि

होते हैं कि वर्षा की झड़ी सी लगा देते हैं, जिससे बाढ़ आ जाती है और खेतों के खेत वर्षा को भेंट चढ़ जाते हैं और कभी इन्द्र देवता की क्रोधाग्नि में बेचारे पौधे वर्षा की दो बूंदों के लिये तरसते २ सूख जाते हैं। यह समस्या केवल सिंचाई के बनावटी साधनों द्वारा पूरी की जा सकती है। भारत में यह सिंचाई के साधन पर्याप्त मात्रा में नहीं है। भारत-पाकिस्तान बटवारे से पूर्व सारी उत्पादन करने वाली भूमि में से केवल २६.५ प्रतिशत ही दूसरे साधनों द्वारा सींची जाती थी और बटवारे के पश्चात् केवल १८.६ प्रतिशत ही बनावटी साधनों से सींची जाती है। पिछले वर्षों में सारी उपजाऊ भूमि में से निम्न साधनों द्वारा भूमि सींची गई :—

७४ प्रतिशत..........वर्षा से
२ प्रतिशत..........तालाबों से
६.५ प्रतिशत..........कुओं से
१७.५ प्रतिशत..........नहरों से

भारत में सिंचाई उत्तरी भारत में कुओं और नहरों द्वारा और दक्षिण में तालाबों द्वारा की जाती है। केवल ६ प्रतिशत जल राशि को ही कृषि की सिंचाई के प्रयोग में लाया जाता है शेष सारा जल व्यर्थ ही बाढ़ इत्यादि द्वारा कई बसी बसाई नगरियों को उजाड़ता हुआ सागर में जा गिरता है। इसी जल में २.५ प्रतिशत केवल बिजली निकलने के लिये प्रयोग में लाया जाता है जिससे बिजलीके कुएं अर्थात् ट्यू ब वैल (Tube-Well) द्वारा भी कृषि को पानी दिया जाता है। इतना होनेपर भी यह कमी भारतीय सरकारने नई सिंचाई-योजनायें बनाकर सुलझाने की चेष्टा की है। इनमें प्रमुख ६ बहुमुखी योजनायें हैं उदाहरण के लिये बिहार बंगाल में दमोदर घाटी की योजना उड़ीसा में हीराकुड योजना और पंजाब में भाकरा-नांगल योजना आदि। इन छः योजनाओं को पूर्ण रूप से तैयार होने में कोई दस वर्ष लगेंगे। और इनसे १२ करोड़ एकड़ भूमि सींची जा सकेगी। इन योजनाओं पर

श्रौर ज्वार, बाजरा इत्यादि की उपज भी ३० प्रतिशत सरलता से बढ़ाई जा सकती है। वर्तमान खांड चीनी की उपज प्रति एकड़ १६ टन है जो ३० से ४१ टन तक हो सकती है।" इस प्रकारके कई सत्य अनुमान खोजों द्वारा लगाये गये हैं जो कृषिके लिए अति उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

इससे स्पष्ट है कि कृषि की दशा को सुधारने के लिए अच्छे बीजों और खाद का होना तथा उपज को विनाशकारी कीड़ों से बचाना अत्यन्त आवश्यक है। बीजों की अच्छी किस्में दूसरे देशों से आयात करके भारत की जल-वायु के अनुसार उनका प्रयोग करना चाहिये जैसे कि अमरीका की कपास की एक किस्म पंजाब में बोई जाती है। अब शेष रह गया खाद का प्रश्न, जो हम खाद में द्रव्य औषधियों को मिला कर अधिक उपजाऊ खाद प्राप्त कर सकते हैं। इसी प्रकार अन्य विषैली गैस इत्यादि द्वारा कीटाणुओं और चूहों से फसलों को नष्ट होने से बचा सकते हैं।

हम देखते हैं कि इन्हीं त्रुटियों के कारण हमारी कृषि अन्य देशों की अपेक्षा कितनी पीछे रह गई है। हमारी उपज न केवल मात्रा में कम बल्कि घटिया किस्म की भी होती है। उदाहरण के लिए नीचे लिखे हुए आंकड़े पढ़िये—

	फसलें	देशों के नाम	उपज प्रति एकड़	
१	चावल	भारत	८९२ पौंड	१९३१–३७
	,,	जापान	२४२४ पौंड	
२	गेहूँ	भारत	११ पौधे	१९३७ W.F
	,,	हालैंड	४९ पौधे	
३	कपास	भारत	८४ पौंड	१९३८
	,,	मिस्र	५०८ पौंड	
	,,	अमरीका	२६४ पौंड	

यही दशा है बेचारी ईख की, भारत में ईख वैसे तो सब देशों से अधिक होती है पर उपज प्रति एकड़ तीनगुणा क्यूबा से कम, छः गुणा

जावा द्वीप से कम और सात गुणा हवाई द्वीप से कम होती है, यह सब किसलिये ? कि यहाँ तो ज्वार-बाजरा मनुष्यों को खाने के लिए मिलता है और अमरीका में वही पशुओं और सुअरों के आगे चारे के स्थान पर डाले जाते हैं। भारत में इतनी निर्धनता क्यों ?

इस प्रश्न का उत्तर केवल यही है कि हमारी कृषि की दशा सन्तोषजनक नहीं है। हमारी कृषिके विकास के लिए निम्न लिखित चार सुझाव संयुक्त राष्ट्र द्वारा निर्मित खाद्य, कृषि-व्यवस्था परिषद्—Food Agricultural Organisation' के डायरेक्टर जनरल मि० बौड ने कृषि के लिये रखे हैं:—

१. जंगलों द्वारा भूमि की उपजाऊ मिट्टी को बंजर होने से तथा सुरतने से बचाना चाहिये।

२. बनावटी उपज बढ़ाने वाले पदार्थों को छोड़ कर ऐसी फसलें उगानी चाहियें जिससे मिट्टी को उनके द्वारा नाईट्रोजन (Nitrogen) और ह्यूमस (Humus) मिले जैसे मटर के पौधे। ऐसी खाद को Green manwre ग्रीन मन्योर अर्थात हरी खाद कहते हैं।

३. मशीनों का प्रयोग भूमि बनाने तथा उनको उपजाऊ रहने से बचाने के लिए सीमित हों।

४. ट्यूब वैल (Tube-woll) अर्थात् बिजली के कुओं द्वारा सिंचाई के साधनों का विकास हो।

यह सुझाव भारत की कृषि के लिए अत्यन्त उपयुक्त हैं। यहाँ मशीनों द्वारा कृषि करने से अन्य इससे भी भयानक समस्यायें खड़ी होती हैं। जैसे कि मशीनों के प्रयोग से बेकारी की समस्या और भी अधिक विकट रूप धारण कर लेगी, क्योंकि एक मशीन कई आदमियों का कार्य अकेली ही कर देती है और मशीनों के क्रय करने से देश का धन बाहर जाता है। यह तब तक नहीं हो सकता जब तक कि संयुक्त समितियाँ Co-operative Societies द्वारा छोटे २ भूमि-भागों को इकट्ठा करके बड़े

टुकड़े न हो जाएं। क्योंकि इसके से इसका १२ हौर्सपावर के ट्रैक्टर के लिये भी ७१ एकड़ भूमि का एक टुकड़ा चाहिये। जबकि भारत में भूमि-भाग इतने खण्डित हैं कि अधिकतर उनमें दो तीन एकड़ से बढ़कर नहीं। इन भूमि-भागों के खण्डन की समस्या (Fragmentation and Subdivision of Holdings) बड़ी विकट है। इसी के कारण अधिकतर भूमि कृषकों से ज़मींदारों के हाथ चली गई है। जिसको ठीक करने के लिये भारतीय सरकार ने ज़मींदारी उन्मूलन बिल पास किये। कृषकों के लिये उधार रुपये का प्रबन्ध जो ज़मींदार भूमि को गिरवी रखकर करता था बन्द करके अब इस कार्य के लिये Co-operative Credit Societies खोली गई हैं, जिन्हें अग्रदात्री सहकारी समितियाँ भी कहते हैं।

वर्तमान दशा कृषि की चाहे इतनी सन्तोष जनक नहीं है फिर भी पर्याप्त सुधर गई है। वह पूर्ण रूप से ठीक तभी हो सकती है जब हम सब मिलकर इसमें सहयोग दें। अभी कुछ ही दिन हुए देहली में उपज प्रति एकड़ की एक प्रतियोगिता में कृषक विद्यार्थियों ने बहुत से कमाल दिखाये। इन भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् Indian Agricultural Researede Institute के योग्य विद्यार्थियों को प्रधान मन्त्री नेहरूजी ने पारितोषिक देकर और भी उत्साहित किया। इनमें से प्रथम मद्रास के एक कृषक श्री० के० वैलोयाह ने एक एकड़ में १२००० पौंड चावल की उपज करके संसार भर का रिकार्ड तोड़ दिया और इसी प्रकार श्री० सिंह एक और कृषक ने २६ मन गेहूँ और श्री० कृपाल ने ७२६ मन आलू एक एकड़ में बोकर कृषि पण्डित' का डिप्लोमा लिया। यह हैं भारतीय कृषकों के कुछ साहसपूर्ण प्रयत्न।

कृषि ? हाँ कृषि भारतीयों का प्राण है, उसकी सेवा का भार केवल कृषकों पर ही नहीं बरन् प्रत्येक भारतीय पर है। यदि हम सब मिलकर कृषि-सुधारके लिये एक होकर जुट जायें तो हम स्वयं अनुमान कर सकते हैं कि कैसा होगा भारत की कृषि का भविष्य ?

(सुश्री सुदेश शरण 'रश्मि')

साम्यवाद के आदि प्रवर्तक

और आदर्श समाज सम्बन्धी काल्पनिक योजनायें

आज हम जिस विचारधारा को *समाजवाद, साम्यवाद, समष्टिवाद* आदि नामों से पुकारते हैं, वह न तो एक व्यक्ति के दिमाग की उपज है, और न एक युग में ही उसका विकास हुआ। ऐसा अनुमान किया जाता है कि बहुत प्राचीन प्रागैतिहासिक युग में सर्वत्र समाजवादी व्यवस्था थी। दूसरे शब्दों में उस युग में वैयक्तिक सम्पत्ति नहीं थी, याने जो कुछ भी थी वह समाज की सम्पत्ति थी। यह सारी बात कपोल-कल्पना नहीं है, बल्कि वास्तविकता है। यह इस बात से ज्ञात होता है कि उन्नीसवीं सदी, बल्कि बीसवीं सदी के प्रारम्भ तक ऐसी कई जातियाँ आदिम अवस्था में मौजूद थीं, जिनमें इस प्रकार की समाज व्यवस्था थी। ऐसे लोगों में मछली मारने के जाल, शिकार के अस्त्र आदि उत्पादन के सब साधन सामाजिक सम्पत्ति समझे जाते थे। इनसे जो कुछ भी उत्पन्न होता था, वह सब में आवश्यकता के अनुसार बाँट दिया जाता था।

कैसे आदिम समाजवादी समाज का अन्त हुआ, कैसे वैयक्तिक सम्पत्ति के उदय के साथ-साथ वर्गों की उत्पत्ति हुई, आदि बहुत ब्यौरे की बातें हैं। और हम यहाँ उनमें नहीं जा सकते। यहाँ केवल इतना बता दिया जाय कि आदिम समाज में जो सुन्दर संतुलन था, उसके बावजूद वह समाज उत्पादन की दृष्टि से पिछड़ा हुआ था, फिर, भी बाद के वर्गमूलक समाजों में जो वार्गिक संघर्ष उत्पन्न हुये, उनके कारण समाजों के ज्ञानी तथा विद्वानगण बराबर किसी न किसी प्रकार की समानता का प्रचार करते हैं।

आधुनिक अर्थ में मजदूर वर्ग की उत्पत्ति पूँजीवाद के साथ-साथ हुई है, पर एक आदिम समतामूलक समाज के बाद उत्पादन कार्य दासों के द्वारा कराया जाता था। इस समाज-व्यवस्था में, जैसा कि

मैंने अपनी 'ऐतिहासिक भौतिकवाद' नामक पुस्तक में लिखा है, इसमें गुलाम मुख्य उत्पादक था, और गुलाम का मालिक उसके श्रम का सम्पूर्ण रूप से उपभोक्ता था। गुलाम शारीरिक रूप से भी मालिक के अधीन होता था, उसकी जानोमाल पर मालिक का अधिकार रहता था। गुलामों के बाद अर्द्ध गुलामों या भूमिदासों पर उत्पादन का सारा बोझ पड़ा। गुलामों के मुकाबले में अर्द्ध गुलामों को अधिक अधिकार प्राप्त थे। अब सामन्तवादी प्रभु का अर्द्ध गुलाम पर पूर्ण अधिकार नहीं था। वह केवल उसके श्रम तथा समय के एक बृहत् हिस्से पर ही माँग कर सकता था। इस प्रकार यहाँ पद्धति भी पिछली पद्धति के मुकाबले में अगला कदम था।

इसके बाद यन्त्रों में उन्नति होने के कारण साथ ही कुछ लोगों के हाथों में इनका नियंत्रण आ जाने के कारण उत्पादन पद्धति ने एक और पलटा खाया, और अब मज़दूर वर्ग सामने आया। 'मज़दूर के शरीर या गतिविधि पर पूँजीपति को कानूनी रूप से उस प्रकार का नियन्त्रण प्राप्त नहीं है जैसा पहले की पद्धतियों में प्राप्त था। वह कानूनी रूप से स्वतन्त्र है। देखने में वह स्वतन्त्र ठहराव (Free bargaining) पर काम करता है। इस प्रकार यह पद्धति पिछली पद्धतियों के मुकाबिले में अधिक उन्नत रही।' (ऐतिहासिक भौतिकवाद)

इस समय तो जिस प्रकार दुनिया दो शिविरों में बँट गई है, उसे तो हम जानते ही हैं। हम यह भी जानते हैं कि आज प्रत्येक दल अपने को मज़दूर किसान वर्ग का हिमायती सिद्ध करने के लिए आतुर दिखाई पड़ता है, पर पहले भी जैसा कि मैंने बताया कि प्राचीन काल के विद्वान तथा ज्ञानगाथा किसी न किसी प्रकार से समानता का प्रचार करते थे।

यदि हम भारत के प्राचीन धर्मशास्त्रों को देखें, तो उनमें एक ही साथ में विषमता और समानता दोनों तरह की बातें मिलेंगी। हम इनके ब्यौरे में जायँ तो वह स्वयं ही एक पोथा बन सकता है हम

कारण इंगित मूलक रूप से दो चार बातें बताकर ही हम पश्चिम की ओर चले जायेंगे जहाँ मजदूर-सभाओं (Trad-unions) तथा वैज्ञानिक समाजवाद का विकास हुआ। हमारे यहाँ तो ये सारी बातें अभी बहुत कुछ विकास की शैशवावस्था में ही हैं।

प्राचीन काल से ही यहाँ समदर्शी शब्द का बहुत प्रचलन रहा है। यह द्रष्टव्य है कि साम्यवाद और समदर्शी दोनों शब्दों में सम शब्द आता है। समदर्शी शब्द ऋषियों तथा मुनियों के लिये प्रयुक्त होता है, इससे इसका महत्व समझ में आता है। गीता में यह श्लोक आता है—

"विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः॥"

इस प्रकार से समता के सिद्धान्त को मनुष्य जाति से आगे ले आकर कुत्तों तक में लागू किया गया है। यहाँ गलत फ़हमी उत्पन्न न हो इसलिये मैं यह साफ कर दूँ कि मैं इस प्रकार की समदर्शिता के प्रचार को कोई अधिक महत्व नहीं देता, क्योंकि एक तरफ समदर्शिता के सिद्धान्त को कुत्तों, गायों और हाथियों तक ले जाने पर भी दूसरी ही साँस में चातुर्वर्ण्य का प्रतिपादन किया गया है। जो हमारी सामाजिक अधोगति का सबसे स्थायी निदर्शन है। अवश्य गीता में कर्म के अनुसार चातुर्वर्ण्य को प्रतिपादित करके उसे एक सहनीय रूप देने की चेष्टा की गई है। बौद्ध और जैन धर्म तो ब्राह्मणों के कर्मकांड प्रधान विषमतामूलक धर्म के विरुद्ध विद्रोह के रूप में प्रगट हुये। उनमें भी समता का बहुत प्रचार किया गया। पर हमें किसी पद्धति के मूल्यांकन के लिए उसके व्यवहार को देखना है न कि उसकी व्याख्याओं तथा दर्शनों को। अस्तु।

पाश्चात्य में भी इसी प्रकार के बहुत से तत्वज्ञानी हो गये हैं जिन्होंने प्रचलित समाज-व्यवस्था के विरुद्ध असन्तोष प्रदर्शित किया।

ईसा से ८०० वर्ष पहले टोकोश्रा के एक चरवाहे तत्वज्ञानी ऐमोस, इसके २२ वर्ष बाद होसिया तथा इनके बाद इसाया ने यह प्रचार किया कि शासक वर्गों के दोष के कारण ही समाज में दुःख और कष्ट है। ई० पू० ६९० के करीब उत्पन्न जेरेमियाँ नामक तत्वज्ञानी ने यह भविष्यवाणी की कि ऐसे युग का प्रारम्भ होगा जिसमें किसी को किसी बात की कमी नहीं रहेगी; सब सुखी रहेंगे, तथा एक ऐसे राजा का राज्य होगा जो न्याय करेगा। एजेकील नामक तत्वज्ञानी ने इससे भी आगे जाकर कहा कि भूमि-पद्धति में परिवर्तन होगा और ज़मीन न्यायपूर्वक सब में बाँट दी जायेगी, ज़मीन के बँटवारे में बाहर से आये हुए लोगों को भी हिस्सा मिलेगा, आदर्श राजा हिंसा तथा अत्याचार त्याग कर न्याय करेंगे।

ईसा मसीह ने जिस मतवाद का प्रचार किया, उसमें भूतल में स्वर्ग राज्य की स्थापना की बात कही गई। स्वर्ग राज्य का जो रूप पेश किया गया उसमें वही 'सर्वे सुखिनः भवन्तु' वाली बात थी। मैं फिर ऐतिहासिक भौतिकवाद से उद्धृत करूँगा। 'ईसाई धर्म में यह जो कहा गया था कि सभी मनुष्य खुदा के बेटे हैं, इसलिए परस्पर भाई भाई हैं, यह रोमन जुआ के नीचे पिसते हुये गुलामों के लिए बहुत आगे बढ़ी हुई आशा की वाणी थी। अब तक उन्होंने जो कुछ सुना था, उसके मुकाबिले में यह वाणी बहुत क्रान्तिकारी थी। इस वाणी ने गुलामों की बढ़ती हुई विद्रोहाग्नि में घृत की आहुति दी। स्वाभाविक रूप से ऐसा धर्म, जिसमें ऐसी आपत्तिजनक बात कही गई थी, शासकों को न पसन्द था। इसलिए ईसाई धर्म एक प्रकार से गुलामों की गुप्त समितियों के ज़रिये फैला। ईसाइयों में जो क्रूस चिन्ह प्रचलित है, उसके सम्बन्ध में एक सिद्धान्त यह भी है कि रोमन गुलाम लोग रात के अन्धेरे में अपने कामों से छुट्टी पाकर लुक छिपकर कब्रिस्तानों में एकत्र होते थे। चूँकि ये कब्रिस्तान ऐसे थे जिनसे क्रूस चिन्ह की सूचना होती थी, इसलिये ईसाइयों के लिये क्रूस

सावोनारोला (१४५२-१४६८) ने सांसारिक दुःखों के दूर करने करने के उपाय के रूप में केवल प्रचारमूलक कार्य ही नहीं किये, बल्कि उन्होंने कुछ व्यावहारिक कदम भी उठाये। उनकी यह धारणा थी कि बिलकुल धर्मराज्य स्थापित होना चाहिए। तदनुसार उन्होंने शोषित और दलितों के कल्याण के लिये प्रचार करना शुरू किया। लोग उनकी बात मान गये, और उनके द्वारा प्रस्तावित एक संविधान फ्लोरेन्स नगर की जनता के द्वारा स्वीकृत हुआ। समता स्थापित करने की धुन में नगर का रंग रूप बिलकुल बदल गया। स्त्रियों ने गहने गुरियें छोड़ दिये। व्यापारियों ने बेईमानी की सारी कमाई दे दी गिरजे अदालत का काम करने लगे। दान, व्रत, उपवास का बोलबाला रहा। पर यह धर्मराज्य अधिक दिन स्थायी नहीं हो सका। पोप इस प्रकार के धर्मराज्य से नाराज़ थे। बात यह है कि अब तो पोप एक सम्राट की तरह हो चुके थे, और उनका स्वार्थ तथा शोषक वर्ग का स्वार्थ एक हो चुका था। इसके अतिरिक्त फ्लोरेन्स के व्यापारी तथा अन्य स्थिर स्वार्थ वाले लोग सावोनारोला से नाराज थे। जनता भी कुछ अधिक तुष्ट नहीं थी क्योंकि अपनी धार्मिक धुन में सावोनारोला ने फ्लोरेन्स नगर को भिक्षुओं का एक मठ बना दिया था, और जो लोगों को बिलकुल नापसन्द था।

नतीजा यह हुआ कि सावोनारोला पर धर्म विरोध का अभियोग लगाया गया, और जैसा कि उस युग में रिवाज था उन्हें ज़िन्दा जला दिया गया। इस प्रकार जब एक व्यक्ति ने ईमानदारी के साथ समता के सिद्धान्त को कार्य रूप में परिणत करने की ओर कदम उठाना चाहा तो उसका किसी ने साथ नहीं दिया। ईसाई जगत के धर्मगुरु ने उसे अस्वीकार किया, और उसे शहीद की मृत्यु प्राप्त हुई। एक ऐसा शहीद जिसे किसी धार्मिक व्यक्ति ने समझने की चेष्टा नहीं की। इसी कारण बार बार इस लेख में यह कहा गया है कि धार्मिक लोगों की तरफ से जब समदर्शियों की बात कही जाती है, तो उस पर सहसा विश्वास

करने की इच्छा नहीं होती। असली कसौटी तो व्यवहार है। हमारे यहाँ एक चौथाई जनता को अछूत के रूप में रखकर यह प्रमाणित कर दिया गया है कि हिन्दू, बौद्ध, जैन आदि धर्म की तरफ से जो समता के सिद्धान्त पेश किये जाते हैं, वे सावोरानोला को जिन्दा जलाने वाले पोप से अधिक ईमानदार नहीं हैं।

१२३१ में इङ्गलैंड के शोषित किसानों ने वहाँ के जमींदारों तथा तात्लुकेदारों के विरुद्ध एक असफल विद्रोह किया। इस विद्रोह को दबाने में वहाँ के शासक वर्ग ने बड़ी निष्ठुरता से काम लिया, और किसानों पर बड़े बड़े अत्याचार हुये। इस मौका पर वहाँ के ईसाई पादरी बीच में पड़े, और उन्होंने इस बात की चेष्टा की कि किसानों पर अत्याचार कम हों, पर ऐसा करते हुए ईसाई पादरियों की तरफ से यह साफ कर दिया गया कि उन्हें भूमिगत साम्यवाद से कोई सहानुभूति नहीं है। विशप लाटीमर ने ईसाई धर्मशास्त्रों का हवाला देते हुये कहा कि यदि सम्पत्ति के मालिक सभी लोग होते, तो फिर इस कमाण्डमेण्ट याने उपदेश का कोई अर्थ ही नहीं होता कि चोरी मत करो। दूसरे शब्दों में विशप लाटीमर के अनुसार किसानों ने जमींदारों की सम्पत्ति पर हमला करके धर्म विरोध किया था, पर साथ ही उन्होंने यह कहा कि जमींदारों का यह कर्तव्य है कि लोगों पर दया रक्खें, और क्षमा वृत्ति से काम लें।

यूटोपिया की ऐतिहासिक योजनायें

यों तो जैसा हम अभी दिखला चुके हैं, धर्मगुरुओं में साम्यवाद प्रवृत्ति पाई जाती थी। पर वह व्यावहारिक सतह पर न होकर कुछ आध्यात्मिक और इस कारण अव्यावहारिक सतह पर होती था। इसी कारण धार्मिक साम्यवाद के विरुद्ध यह कहा गया है कि वह बहुत कुछ जनता की आँखों में धूल झोंककर [illegible] को रोकने में सहायता करता है। धर्म में इस

दुनिया को विषमताओं को उस दुनिया में सुधारने की आशा दिखाई जाती है, उसके संबन्ध में इस प्रकार की आलोचना का कोई उत्तर देना कठिन है।

अस्तु! अब हम इस प्रसंग में उन लोगों के सम्बन्ध में आलोचना करेंगे जो केवल उपदेशों तक अपने को सीमित न रख कर व्यावहारिक योजनायें पेश करने लगे। अवश्य ये योजनायें कार्यरूप में परिणत नहीं की गई थीं, बल्कि खाली योजनाओं के रूप में थीं। इसी कारण इन्हें स्वाप्निक कहा गया है।

इन लोगों ने एक आदर्श देश या भूमिको कल्पना की, जहाँ इनकी योजनायें कार्यान्वित मान ली गई थीं। चूँकि ये देश या भू-भाग कहीं भी नहीं थे। इस कारण इनका नाम यूटोपिया (शाब्दिक अर्थ कहीं भी नहीं) पड़ा।

सर टामस मोर (१४७८-१५३५) ने इस यूटोपिया शब्द का निर्माण किया। उन्होंने अपने बचपन में अमेरिका मे स्थित आदिम-जातियों के सम्बन्ध में ऐसी कहानियाँ सुन रखी थीं कि उनमे कोई व्यक्तिगत-सम्पत्ति नहीं होती, और उनमें जो कुछ भी सम्पत्ति है वह सबकी होती है। उन्होंने यह सुन रखा था कि वे सोना और मोतियों को तुच्छ समझते हैं और इनमें कोई राजा नहीं होता, सब अपने अपने राजा होते हैं। इन कहानियों से मोर बहुत प्रभावित हुए। जब इन्होंने अपने इर्द-गिर्द के विषमतामूलक समाज के साथ इस समाज को तुलना की, तो उन्होंने, अपने समाज को बहुत पिछड़ा हुआ पाया।

तदनुसार एक आदर्श समाज का चित्र प्रस्तुत हुआ और इसमें यह दिखाया गया कि राफायल हाइथोलाडी नामक एक पुर्तगाली विद्वान् है जो अमेरिगो३स्पूची के साथ समुद्र-यात्रा में जाता है, और यूटोपिया नामक द्वीप में पहुँच जाता है। हाइथोलाडी इस द्वीप की समाज तथा राज्य-व्यवस्था को देखकर बहुत प्रभावित होता है, और वह स्वाभाविक रूप से मन ही मन इङ्गलैंड की उस समय की राज्य-

व्यवस्था तथा समाज के साथ यूटोपिया की तुलना करता है। उससे यह ज्ञात होता है कि एक तो राजतंत्र की प्रणाली ही निरंकुशतामूलक है, तिस पर ये राजे तथा उनके घराने के लोग हमेशा इस काम में लगे रहते हैं कि किस प्रकार न्यायमूलक तरीके से अपने राज्य को बढ़ायें। यदि वे इस काम में लगे रहते कि किस प्रकार शान्ति के साथ किस प्रकार राज्य किया जाय तो भी गनीमत थी, पर वे ऐसा नहीं करते।

हाइथोलाडे ने यह उपसंहार निकाला कि इस विषमता का आधार निजी सम्पत्ति है। उन्होंने यूटोपिया के सम्बन्ध में कहा: 'इस नगर राज्य में उत्पादन का आधार कृषि है। देश भर में यत्र-तत्र कृषि-शालायें फैली हुई हैं। प्रत्येक नागरिक के लिये यह जरूरी है कि वह अपने समय का एक हिस्सा इन कृषिशालाओं में काम करने में बितावे। अधिकतर मज़दूर शहर और देहात के बीच अपने समय को बाँट देते हैं। इस प्रकार वह जानते हैं कि शहर और देहात में किस प्रकार के काम किये जाते हैं। बुआई और कटाई के दिनों में शहर से एक हज़ार मज़दूर काम करने के लिये देहात में आ जाते हैं, जिससे कि खेती का काम सुचारु रूप से चल सके। पहिले से बहुत बारीकी के साथ इसका अनुमान लगा लिया जाता है कि शहर वालों को खेती की कितनी उपज चाहिये, और तदनुसार इसी के अनुपात से शहर के रहनेवालों को देहात में खेती पर काम करने के लिये भेजा जाता है।'

यूटोपिया का वर्णन करते हुए यह बताया गया है कि यहाँ प्रत्येक व्यक्ति कोई न कोई धन्धा ऐसा भी करता है, जो उसका निजी धन्धा है। किसी खास धन्धा करने वाले को दूसरा धन्धा करने वाले से ऊँचा या नीचा समझा नहीं जाता। यूटोपिया में लोग केवल छः घंटे काम करते हैं। आठ घंटे विश्राम के लिये हैं, वह चाहे उनमें जो कुछ भी करें कोई आलस्य में समय व्यतीत नहीं कर सकता। यदि किसी को फालतू श्रम करना पड़ता है, तो वह सड़क की मरम्मत में लगता है,

जो सबका काम है। जब इस प्रकार के सारे काम हो चुकते हैं, तो काम के घण्टे घटा दिये जाते हैं।

माहवारी त्यौहारों के अवसर पर देहात और शहरों की उपजों का विनिमय होता है। द्रव्यों के वितरण में पूर्ण समानता बर्ती जाती है। प्रति मास या इसी प्रकार किसी नियम के अनुसार प्रत्येक परिवार का प्रतिनिधि अपने परिवार द्वारा उत्पन्न चीज़ों को शहर के भिन्न भागों में अवस्थित चार बाज़ारों में से एक बाज़ार में ले जाता है। ये चीज़ें गोदामों में पहुँचाई जाती हैं, और प्रत्येक चीज को अलग अलग रखा जाता है।

इस गोदाम में से प्रत्येक परिवार का पिता या प्रधान अपने परिवार के लिये आवश्यक चीज़ों को ले आता है, और इसके लिये वह न तो पैसे देता है, और न इसके बदले में कुछ देता है। बात यह है कि प्रत्येक वस्तु की बहुतायत है, इसलिये किसी की कोई चीज न देने का प्रश्न ही नहीं उठता। यह डर नहीं है कि कोई व्यक्ति किसी चीज को अपनी जरूरत से ज्यादा ले जायगा। यद्यपि किसी के पास अपनी जरूरत से ज्यादा चीज नहीं है, फिर भी यूटोपिया का प्रत्येक व्यक्ति धनी है। यहाँ धनी शब्द से यह अर्थ है कि लोग सुख से हैं, उन्हें कोई दुःख नहीं है। न किसी को अपनी नौकरी के सम्बन्ध में चिन्ता है, न किसी को इस बात से परेशानी है कि स्त्री कोई चीज माँग रही है, और उसे वह चीज नहीं दी जा सकती है, न किसी को यह फिक्र है कि उसकी तो अच्छी गुजर गई, पर लड़के की शायद गरीबी में गुजरे, न किसी पर यही चिन्ता सवार है कि उसकी लड़की का दहेज़ कहाँ से आये। स्वाभाविक रूप से यूटोपिया में किसी को धन बटोरने की फिक्र नहीं है। न किसी को सोना बटोरने की फिक्र है, और न चाँदी बटोरने की।

यूटोपिया की सड़कें चौड़ी और सुन्दर हैं। वहाँ की इमारतें सुन्दर और चमकती हुई हैं। उनमें न कोई ताला लगता है, और न कुंडा

सतह पर लाने की चेष्टा स्पष्ट है। विशेष जानकार पाठकों को यह मालूम होगा कि सोवियट रूस में इस समस्या को इस प्रकार सुलझाने की कोशिश की गई है कि सब किसानों को कृषि फार्मों के मज़दूर बना दिया गया है, ऐसे कृषि फार्म जिनके वे सामूहिक रूप से मालिक हैं। स्मरण रहे कि मोर ने कल्पना में विचरण करते हुए इस प्रकार के समाधान के सुझाव रखे हैं, वे कोई बहुत काल्पनिक नहीं हैं। ४०० वर्ष पहले दिये जाने पर भी वे समाधान के बहुत निकट हैं।

मोर ने यद्यपि स्पष्ट शब्दों में नहीं कहा है, फिर भी इस बात का यथेष्ट इंगित कर दिया है कि *समाजवाद में* अर्थात् उस आदर्श अवस्था में जब कि उपजों का बाहुल्य रहेगा, और प्रत्येक परिवार को उसकी आवश्यकता के अनुसार सब चीज़ें मिल सकेंगी, और साथ ही साथ अपनी खुशी से सब यथासाध्य काम करेंगे, संग्रहवृत्ति विलुप्त हो जावेगी।

अभी तक लोकतन्त्र का पूरी तरह परीक्षण नहीं हुआ था, और *मोर को यह मालूम नहीं हुआ था कि लोकतन्त्र के सारे दिखावे कायम* रखते हुए भी मज़दूर तथा किसानवर्ग शोषित रह सकते हैं, इस कारण यदि मोर ने लोकतन्त्र और राजतन्त्र के अजीब मिश्रण को तरजीह दी तथा यह समझा कि इस पद्धति से मज़दूर और किसानों के सारे दुःख दूर हो जायेंगे, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं।

प्रसिद्ध दार्शनिक बेकन [जन्म १५६१] ने ऐन मृत्यु के चार साल पहले याने १६२२ में 'नव ऐटलांटिस' नामक एक रचना तैयार की, जिसमें उसने दक्षिण समुद्र के एक द्वीप को अपनी कल्पना के लिये क्षेत्र बनाया। बेकन का झुकाव विज्ञान की ओर था। इस कारण उन्होंने यह कल्पना की कि व्यावहारिक विज्ञान के आधार पर एक बुद्धिमान नेता ने सुखी तथा समृद्ध लोगों का एक *समाज संगठित* किया। उनके इस समाज में सबसे महत्वपूर्ण संस्था सुलेमान भवन रखा गया, जिसमें

वैज्ञानिकगण दिन-रात खोजों में लगे हुए हैं । इन वैज्ञानिकों का उद्देश्य यह है कि नित्य नई खोज करके समाज को समृद्ध बनायें। वे कार्यों के अन्वेषण में लगे रहते हैं।

सोना या धन के लिये व्यापार नहीं दिखलाया गया है, बल्कि एक देश से वैज्ञानिकगण दूसरे देशों में जाकर अपने यहाँ का विज्ञान देकर दूसरे देश का विज्ञान ले आते हैं यही व्यापार है। वे ज्ञान के राज्य में साम्यवाद चाहते थे, अन्य क्षेत्रों के लिये उन्होंने कोई खास बात नहीं लिखी।

वे परिवार को ही समाज की इकाई मानते थे, और एक वृहत परिवार के पिता को अधिक महत्व देते थे। उन्होंने अपने ज़माने के व्यभिचारों की निन्दा की। उन्होंने भी राजतन्त्र का समर्थन किया, पर यह कहा कि राजा अपनी योग्या से राजा होगा। उन्होंने यह नहीं बताया कि आखिर योग्यतम व्यक्ति राजा कैसे बनेगा, या योग्यता की नाप कैसे की जायेगी। बेकन के युग में विज्ञान की द्रुत उन्नति होने लगी थी, और यह कई समस्याओं को सुलझा रहा था, पर उनकी यह धारा कि 'केवल विज्ञान से वे समाज की विषमता दूर होगी,' गलत थी। विज्ञान प्रकृति पर मनुष्य की विजय का प्रतीक है, पर स्वयं उसमें कोई गारंटी नहीं है कि विज्ञान से जो फ़ायदे होंगे, उनपर एक वर्ग का ही अधिकार न होकर सबका अधिकार होगा।

इन्हीं दिनों और भी बहुत से समाज-सुधारकों ने काल्पनिक समाज के चित्र पेश किये। योहान वालेन्टिन आन्द्री नामक एक जर्मन पर्यटक ने अपनी योजना इस प्रकार पेश की कि उन्होंने बताया कि समुद्र-यात्रा करते हुए वे क्रिस्चियानोपोलिस नामक एक द्वीप नगर में पहुँच गये, जहाँ ४०० नागरिक थे यह मज़दूरों का प्रजातन्त्र था, जहाँ लोग समानता के आधार पर शान्ति की कामना करते हुए तथा ऐश्वर्य का वर्जन करते हुए रहते थे। नगर हल्के और भारी उद्योग धन्धों के केन्द्रों में बँटा हुआ था इस नगर के लोगों का यह कथन था कि ज्ञान और

परिश्रम सामंजस्यपूर्ण है, याने एक शख्स के लिये परिश्रम करना स्वाभाविक होना चाहिये। मजदूर लोग उत्पादित द्रव्यों को एक सार्वजनिक स्थान में ले आते हैं। उत्पादन में कोई गड़बड़ी नहीं है, क्योंकि यह पहले से जान लिया जाता है कि किस चीज को कितने परिमाण में किस रूप में उत्पन्न किया जाय। तदनुसार मजदूरों को सूचना दे दी जाती है। यदि कोई चीज यथेष्ट परिमाण में उत्पादित हो रही है, तब तो उनको सृजनात्मक प्रतिभा को पूर्ण स्वतन्त्रता दी जाती है, याने फिर वे चाहें तो अपना शिल्प दिखला सकते हैं।

उस द्वीप नगर में किसी के पास धन नहीं है। कोई व्यक्ति अपने ऐश्वर्य के कारण दूसरे से बड़ा नहीं समझा जाता। यदि वहाँ बड़ाई है, तो योग्यता की बड़ाई है। उस द्वीप में घरों में संयुक्त परिवार प्रथा के बड़े बड़े परिवार न रह कर दम्पत्ति रहते हैं। घर में अधिक सामान आदि नहीं है, जिससे कि घर का काम पति-पत्नी दोनों के लिए आसान हो।

यह द्रष्टव्य है कि योहान की कल्पना में सब से बड़ी विशेषता यह है कि उसमें योजनामूलक उत्पादन की कल्पना की गई है। जानकार पाठकों को मालूम होगा कि आजकल सभी देश, जिनमें हमारा देश भी योजना के महत्व को समझ कर उस पर चलने के लिए चेष्टित हैं, क्रिस्टियानोपोलस में जिस प्रकार पहले उत्पादन का तख-मीना लगाया जाता है, वह रूस के गोस्प्लैन या अन्य स्थानों के योजना-आयोग की तरह है।

टामस काम्पानेला नामक एक इटालियन भिक्षु ने इसी प्रकार की एक काल्पनिक योजना रखी। जेनोया के एक सामुद्रिक कप्तान अपनी यात्रा में भटक कर सूर्यनगर में पहुँच जाता है। सूर्यनगर में एक नागरिक के पास जो कुछ भी है, वह उसे मैजिस्ट्रेट से प्राप्त करता है, और मैजिस्ट्रेट इस बात की देख-रेख रखता है कि किसी को उसकी अर्हता से अधिक न मिले। फिर भी जिसको जिस चीज की ज़रूरत है, उसे

उतनी अवश्य मिलती है। वहाँ के सब लोग धनी भी हैं और गरीब भी. धनी इस कारण कि उन्हें किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं, और गरीब इस कारण हैं कि उनके पास कुछ नहीं है। साम्यवाद के कारण उनकी कर्मशक्ति इस कारण कुंठित नहीं होती कि उनमें इतनी प्रबल देश-भक्ति है कि जेनोआ के उस कप्तान को विश्वास ही न होता था। वहाँ पर श्रम को बड़ी मर्यादा प्राप्त है। जो परिश्रम करते हैं उनकी इज़्ज़त होती है। जिन कामों में कठिन परिश्रम होता है, उसमें सम्मान सब से अधिक है। साधारण समय में लोग केवल चार घंटे काम करते हैं। काम्पानेला की इस योजना में कोई विशेषता नहीं है।

१६५२ में प्रकाशित स्वतन्त्रता का कानून नामक रचना में एक यूटोपिया का चित्र पेश किया गया। इसके रचयिता जेराई विन्स्टैनले थे। इस यूटोपिया में न तो भूमि का और न उसकी उपजों का क्रय विक्रय था। यदि किसी व्यक्ति को किसी चीज की आवश्यकता होती है, तो वह सार्वजनिक भंडार से उसे बिना मूल्य प्राप्त कर सकता है। यदि उसे घोड़े पर चढ़ना है तो वह सार्वजनिक घुड़साला में जाकर घोड़ा ले सकता है। यात्रा या सवारी के बाद वह घोड़ा वहीं लौटा देता है। प्रत्येक व्यक्ति यथासाध्य काम करता है। पारिवारिक जीवन में जिन चीज़ों की ज़रूरत होती है, वे उसी परिवार की निजी सम्पत्ति हो जाती है। जेराई इसका वर्णन करते हुए बताते हैं जैसे एक परिवार में पति-पत्नी की हैं, उसी प्रकार यह चीज़ें उस परिवार की हैं। यह मानना पड़ेगा कि इस प्रकार जेराई ने एक बात का स्पष्टीकरण कर दिया, वह यह कि उपभोग की सामग्री वैयक्तिकसम्पत्ति बोधनीय है।

जेम्स हैरिंग (१६११-१६७७) ने भी ओशियाना नाम से अपना यूटोपिया पेश किया। उसमें उन्होंने यह बताया कि उत्पादन के नियंत्रण के साथ राजनीतिक नियंत्रण का क्या सम्बन्ध होता है। उन्होंने अपने विश्लेषण के द्वारा यह बताया कि जिन लोगों के हाथों में ज़मीन होती है वे ही अनिवार्य रूप से समाज के दण्डमुकुट के मालिक होते हैं।

उन्होंने यह बताया कि जहाँ एक व्यक्ति जमीन का मालिक होता है, वहाँ अभिजाततंत्र है, और जहाँ सब लोग जमीन के मालिक, वहाँ कामनवेल्थ या जनतन्त्र है। उन्होंने यह भी कहा कि जनतन्त्र को ऐसे कानून बना देने चाहिएँ जिससे कि एक व्यक्ति या कुछ व्यक्ति जमीन के मालिक न हो सकें। उन्होंने इसके लिए बताया कि चुनाव गुप्तशलाका पद्धति से हो, पदों पर लोग बारी बारी से तैनात हों, और दो भवनों की पद्धति हो। लोकतन्त्र को सुरक्षित रहने के लिये उन्होंने यह बताया कि अनिवार्य शिक्षा होनी चाहिये, धार्मिक सहिष्णुता को प्रोत्साहन मिलना चाहिये।

हैरिंगटन ने जिस प्रकार की पद्धति की पैरवी की, उसमें कोई विशेषता नहीं है, फिर भी उन्होंने जिस तरह यह मत स्थापित किया कि समाज की सम्पत्ति के मालिक ही उसके राजनैतिक कर्ताधर्ता होते हैं, यह बहुत ही मार्के की बात है। इनके समय में जमीन ही उत्पादन का मुख्य साधन थी, इस कारण उन्होंने उसी की मल्कियत को महत्व दिया है। पर उन्होंने असली बात का पता लगा लिया।

एतियन काबे (जन्म १७८८) ने इकारिया के नाम से अपना यूटोपिया लोगों के सामने रखा। इकारिया १०० जिलों में बंटा हुआ है, और ये जिले १० कम्यूनों या इलाकों में बंटे हुए हैं। राजधानी देश से बिल्कुल बीच में है। राजधानी में चौड़ी चौड़ी सड़कें हैं। प्रत्येक ब्लाक में बराबर आकार के १२ मकान हैं। गर्मियों में (स्मरण रहे कि योरुप में ग्रीष्म ऋतु ही अच्छी समझी जाती है) लोग ७ घण्टे काम करते हैं, जाड़ों में इससे कम। प्रत्येक पुरुष और स्त्री को एक ही ढङ्ग का कपड़ा पहनना पड़ता है। केवल रङ्ग पर व्यक्ति का अधिकार होता है। एक पुरुष से एक स्त्री की शादी होती है। शिक्षा ५ वर्ष की उम्र में शुरू हो जाती है, और लड़कियों की शिक्षा में १७ तथा लड़कों की शिक्षा में १८ साल में शिक्षा समाप्त होती है, और कर्मजीवन शुरू होता है। ६५ साल उम्र के बाद कर्मनिवृत्ति हो जाती है। काबे ने इन

विचारों को कार्यरूप में परिणत करने के लिये १५०० व्यक्तियों को लेकर अपना प्रयोग शुरू किया। इसके लिए उन्हें टेक्सस में कुछ जमीन मिली, पर पीत ज्वर के कारण उन्हें अपनी बस्ती इलिनोयस में ले जानी पड़ी, पर वे सफल नहीं हुए।

इस प्रकार से जिन लोगों ने अपने स्वाप्निक विचार जनता के सामने यूटोपिया के रूप में रखे, उन्होंने साम्यवाद के विकास में अपने ढङ्ग से बहुत बड़े दान दिये। यह स्पष्ट्य है कि जिसने भी अपना यूटोपिया रखा, उसने किसी न किसी सत्य का आविष्कार किया। अवश्य कुछ लोगों ने विषमता दूर करने की धुन में कुछ अजीब बातें भी कहीं, जैसा कि एतियन काबे ने कहा कि सब एक से कपड़े पहिनेंगे, और इस प्रकार साम्यवाद को उपहासास्पद बना दिया, फिर भी वे वैज्ञानिक साम्यवाद के प्रवर्तक हैं, इसमें संदेह नहीं। उनकी योजनाओं के अध्ययन से पता लगता है कि समाज में फैली हुई विषमता के विरुद्ध उनके स्वप्न भी कितने शक्तिशाली सिद्ध हुये। (श्री मन्मथनाथ गुप्त)

शरद् पूर्णिमा में ताजमहल

किसी भी स्थान पर भ्रमण करने के लिए एक विशेष समय ऐसा भी होता है जब उस स्थान के भ्रमण करने का एक विशेष आनन्द प्राप्त होता है। उस समय विशेष रूप से यह अनुभव किया जाता है कि उस स्थान की सुन्दरता मोहकता और रोचकता द्विगुणित ही नहीं शतगुणा अधिक बढ़ जाती है। किसी मनोरम उपवन या पार्वत्य प्रदेश की यात्रा वर्षा ऋतु में अधिक आकर्षक तथा सुहावनी प्रतीत होती है। किसी अन्य विशेष स्थान का महत्व शिशिर की सुनहरी धूप में ही ज्ञात होता है और इसी प्रकार किन्हीं विशेष ऋतुओं में कुछ विशेष स्थान अधिक रुचिकर प्रतीत होते हैं।

भारत की उत्तरी मनोरम तराई में अनेकों ऐसे प्रदेश हैं जहाँ

विभिन्न ऋतुएँ अपना पृथक-पृथक सौन्दर्य प्रदर्शित करती हैं। उन अगणित सुरम्य स्थलों में से "ताज महल" भी एक है—ताजमहल उस महान् मुगल सम्राट् शाहजहाँ और सम्राज्ञी मुम्मताज़महल के असीम और अगाध प्रेम का पवित्रतम अमर स्मारक जो गत तीन शताब्दियों से आगरा नगर में यमुना के पुलिन पर खड़ा उसके नीचे जल में अपना अमिट-धवल-प्रतिबिम्ब डाल रहा है और कालिन्दी का नील-नीर आज तक भी उसके प्रतिबिम्ब में हल्की सी नीलिमा भी उत्पन्न न कर सका। तीन-शताब्दि पूर्व की प्रेम-गाथा का वह चिर स्मरणीय स्मारक आज भी उतना ही आकर्षक और मनोहर है जितना वह अपने निर्माण काल के समय रहा होगा और भारत ही क्या देश-विदेशों से दशों दिशाओं से कला प्रेमी दर्शकों का आह्वान कर रहा है, अपने सुन्दर और सजीव कलात्मक अस्तित्व के दर्शनार्थ।

वैसे तो आप कभी भी ताज देखने चले आइये, उसका लौह-चुम्बक सा आकर्षक व्यक्तित्व (भवन) आपका मन बरबस अपनी ओर खींच लेगा। और आप जीवन में जितनी ही बार उसे देखेंगे, सदैव उसमें एक नया आकर्षण, नया रूप, नूतन नैसर्गिक आभा—सभी कुछ नूतन पायेंगे। किन्तु शरद् पूर्णिमा को रात्रि को जब वर्षा ऋतु का अवशिष्ट प्रभाव भी समाप्त हो जाता है, जब यमुना का जल अपने भूरे मटमैले परिधान त्याग कर नीलम से वस्त्र धारण कर लेता है, जब प्रकृति वसन्तोत्सव के लिये श्रृंगारित स्वर्ग-अप्सरा सी मनहर वेष धारण कर लेती है, जब आकाश स्वच्छ, निर्मल और अमिताभ से उज्जवल वसन ओढ़ लेता है और जब मेघ-शून्य नीले-अम्बर में रजत-वृत्त के समान शशि अपनी सोलहों कलाओं से सज्जित होकर शोभायमान होता है उस समय ताज का रूप लावण्य, सुखकारी आकृति, सभी कुछ देखने योग्य होता है।

आपके नेत्रों के सम्मुख श्वेत-प्रस्तर-निर्मित ताज आज की वास्तु निर्माण-कला को चुनौती देता अपने धवल-वक्ष पर श्वेत पीत परि-

धान धारण किये खड़ा है–मानो कोई रूपसि सम्राज्ञी श्वेत-वस्त्रालंकार युक्त राज्य सिंहासन पर विराजमान है उसके चारों ओर फैली वाटिका की हरित-घास उस सम्राज्ञी के चरणों के नीचे बिछे हरे रंग के काश्मीरी कालीन को भी सौंदर्य-प्रतियोगिता में मात कर रही है और उस घास पर छिटकी विमल ज्योत्सना बहुत सूक्ष्म कोमल तथा बारीक रेशमी चान्दनी सी बिछी प्रतीत होती है। सौरभ-युक्त फूलों से उठता हुआ मकरन्द किसी महाराजाधिराजिणी के केलि-भवन के सुवासित वातावरण को नेत्रोन्मुख कर देता है। मुख्य प्रवेश द्वार से लेकर ताज के प्रमुख द्वार तक रक्ताभ-प्रस्तर की छोटी सी नहर के मन्द-गति में बहते जल में प्रतिबिम्बित कलाधर को देखकर प्रतीत होता है कि राकेश अपने मस्तक पर लगी कालिमा को धोने के लिये बारम्बार अपना मु मार्जित कर रहा है, क्योंकि अकलंक ताज के सन्मुख उसे स्वयं मुख की भी आभाहीन सी प्रतीत होती है।

ताज के पिछवाड़े जाकर दीवार के ऊपर पैर रखकर आधार-शि की रक्ताभ दीवार के साथ बहती हुई यमुना के मन्थर-गति से बा वाले जल में ताज का हिलता हुआ, बहता हुआ-सा प्रतिबिम्ब य आप देखें और ताज के दायें या बायें कोने की ओर चाँद के प्रतिबि को भी यदि आप देखें, तो प्रतीत होगा कि ताज और चन्द्र दोनों भाग रहे हैं, किन्तु चाल तीव्र किसकी है, यह अनुमान लगाना आ लिये असाध्य नहीं तो दुःसाध्य अवश्य हो जायगा। यमुना की ल धीरे-धीरे मन्द गति से आकर दीवार पर सिर टकराती इस प्र शब्दित होती हैं जैसे नृत्य-रत् किन्नरियाँ ताल और स्वर के साथ दूसरे के साथ तालियाँ बजाती हैं।

यमुना के धरातल से तनिक ही दृष्टि हटाते दूसरी पार वी में खड़े रक्त-प्रस्तर ताज का अपूर्ण चित्रीकरण दृष्टिगोचर होता लाल पत्थरों का वह अपूर्ण स्मारक भी उस शरद-रात्रि में अपने र (ताज) के भाग्य पर इठलाता गर्व से सिर ऊँचा कर लेता है

स्वयं को भी उसके आमोद-प्रमोद का एक भागीदार समझ कर चमकता है, झूमता है, गाता है और नाचता है।

दूर कहीं से आती कोयल की एक रसीली तान हृदय को एक नवल-हर्ष से परिपूर्ण कर देती है और प्रसन्नता से झूमते हुए दर्शक और भी उल्लसित हो उठते हैं और फिर वे निर्निमेष दृष्टि से उस धवल-नवल-सम्राज्ञी (ताज) की रूप-मधुरिमा का पान करते हुए मन्त्रमुग्ध से एकटक उसे देखते ही रह जाते हैं और वे शरद-रात्रि में जाज्वल्यमान ताज को विभिन्न रूपों में देखते, विभिन्न चित्रों में देखते और इसी प्रकार देखते-देखते खो जाते, न जाने स्वप्न-लोक में या ताज-लोक में, या शरद्-चन्द्र-लोक में। और अगली प्रातः को अरुणा की पहली किरण ही उनका सुनहला संसार परिवर्तित कर देती है किसी और संसार में। जिसे हम वास्तविक या सत्य संसार कहते हैं, जहाँ हैं केवल दुःख, विपत्ति, नीरसता, शुष्कता तथा शोक।

(श्री कुमार 'नीरस')

जूते की आत्म-कहानी

मनुष्य के जीवन-यापन के लिये बहुत सी वस्तुएँ अत्यन्त ही उपयोगी होती हैं। भोजन वस्त्र के पश्चात् उसे पद-त्राण की भी परमावश्यकता होती है। इसी कारण मेरा स्थान भी मानव जीवन में है, यह सोचकर मुझे सन्तोष सा होने लगता है। यों तो मेरा नाम ही जूता है, जिस नाम से प्रायः एक बार तो सभी चिढ़ते होंगे, परन्तु चिढ़ने से होता क्या है। मेरे बिना उनका निस्तार भी तो नहीं है।

मेरा जन्म सर्व प्रथम चीन देश में हुआ था। आरम्भ में तो मैं कोढ़े से बनाया जाता था धीरे-धीरे घास, कपड़ा आदि से निर्मित हुआ। जैसे-जैसे मानव समाज उन्नति के मार्ग पर बढ़ता गया वैसे-वैसे मेरा रूप भी परिवर्तित होता गया। मेरे पूर्वज सदैव से ही सम्मान

पाते आये हैं किन्तु इस बीसवीं शताब्दी में मेरे बिना जगती का कार्य चलना ही असम्भव प्रतीत होता है साथ-ही-साथ आजकल अधिक मात्रा में मिल जाने के कारण मेरा सम्मान गौरव भी लुटने-सा लगा है क्योंकि—

अति परिचय ते होत अनादर अनभाय ।
जस मय गिरी की भीलनी चन्दन देत जराय ॥

इसी प्रकार मानव के शरीर का एक भाग बन जाने के कारण मेरी प्रतिष्ठा लोप हो गई ।

किसी समय मैं सुन्दर चलने-फिरने वाले जानवर की कोमल त्वचा था । दैवयोग से उस जानवर का शरीरान्त हो गया । इसके बाद उ कहीं दूर फेंकवाया गया वहाँ पर चील, गिद्ध, शृगाल आदि हिंस जीव उस अभागे पर झपट पड़े किन्तु उसी समय एक चर्मकार व उपस्थित हुआ, उसके हाथ में एक तीक्ष्ण धार वाला चमकता हु छुरा था । वह लगा उस मृतक पशु की चीर-फाड़ करने एवं उ खाल उतार ली और उसे सुखा पका कर फिर उस पर सुन्दर र लगाया । तत्पश्चात् उसे चर्म-कार्यालय में उपस्थित किया गया ि एक ऊँचे कारखाने पहुँचा वहाँ जाकर मुझे काटा पीटा गया बा बढ़िये फरमे पर चढ़ाया गया । दूसरे ही क्षण मेरा जीवन ही ब गया । प्रत्येक शौकीन बाबू लोग मुझे हाथों में नचा नचा कर दे लगे । क्रमशः स्त्री पुरुष गरीब अमीर सभी मेरे सौंदर्य पर मुग्ध होग

एक के बाद एक मुझे पैरोंमें डालते और अन्तमें एक सज्जन पुरु अपने पैर में फिट समझकर मुझे खरीद लिया । मैं अपने मन में रहा था कि न जाने इस व्यक्ति के साथ गठबन्धन तो होगया परन्तु न नौका पार लगेगी या नहीं । मन में संकल्प विकल्प उठने लगे । सोचा चलो-जो भाग्य में लिखा होगा वह तो हर प्रकार से भोगन पड़ेगा। किन्तु इस महानुभाव ने मुझे बड़े यत्न के साथ रखा । ए समय मुझ पर पालिश कराई टूट फूट भी मरम्मत कराई किन्तु

में अधिक सुख नहीं बदा। एक अवसर वह भी आया कि मुझे सदैव के लिये त्याग दिया गया।

अस्तु मेरा खेद करना व्यर्थ है विश्व में सब के साथ यही व्यवहार होता आया है। बुढ़ापा सबको आया और मृत्यु तो निश्चित ही है। आज जीर्ण शीर्ण होकर वही जूता मैं सड़क के किनारे कूड़े के ढेर पर बैठ कर अन्तिम साँसें गिन रहा हूँ। अपने अतीत का स्मरण करने से मेरा शरीर एवं अन्तस्थल विदीर्ण होने लगता है किन्तु अब मृत्यु के मुख में जाने पर यदि पिछला जीवन याद किया जाय तो इससे लाभ भी कोई न होगा।

प्रत्येक जीवनधारी वस्तु को वह दिन देखना ही पड़ता है। प्रकृति ने कभी भी किसी प्राणी या वस्तु का अभाव महसूस नहीं किया। उसकी प्रत्येक क्रिया उसी भांति होती रही है। जीवन के अन्तिम सोपान पर पहुँचने पर सोच रहा हूँ कि किसी समय मैं राजप्रासादों में था और अब कितनी ही स्थितियोंमें मुझे परिणत होना पड़ा। आज कोई बात भी नहीं पूछता। इससे बढ़कर किसी का पतन और क्या हो सकता है। फिर भी इतना अभिमान करना उचित नहीं। न जाने कब क्या हो जाय। विश्व ही परिवर्तनशील है, अगर मैं बदल गया तो क्या हुआ। न जाने मेरे जैसे कितने ही विदीर्णावस्था में पड़े-पड़े कराह रहे होंगे।

(श्री गुणवल्लभ प्रेमी)

हमारी महादेवी बहिन जी

'अरे क्या हुआ, रो क्यों रही हो ?' क्रास्टवेट स्कूल के छात्रावास में एक १६ वर्ष की किशोरी ने एक छोटी बालिका को पुकारते हुए पूछा। बालिका दुलार पाकर; सिसकियाँ भर कर रोने लगी।

'अच्छा यहाँ आओ, क्या बात है, अरे तुम्हारी जलेबियाँ किसने बिखेर दीं ?' किशोरी ने फिर पूछा।

'चील झपट्टा मार कर गिरा गई' सिसकियां भरते हुये बालिका ने उत्तर दिया।

रोने का कारण जानकर युवती के मुंह पर मुस्कराहट आ गई थी, 'अच्छा आओ हमारे कमरे में हम तुम्हें और मिठाई देंगे।'

उपरोक्त घटना को लगभग १० वर्ष हुये, मैं उसी साल क्रास्टवेट स्कूल में दाखिल हुई थी। महादेवी बहिन जी उसी स्कूल में आठवीं या नवमी में पढ़ रही थी। बोर्डिंग हाउस में यह नियम था कि प्रातःकाल ६ बजे सबको प्रार्थना में उपस्थित होना पड़ता था। जगू हलवाई एक बड़े टकोरे में जलेबी या दाल सेव दोनों में सजा कर प्रतीक्षा में बैठा रहता था। प्रार्थना के बाद जिज्जा (मैटरन) प्रत्येक कन्या को एक दोना मिठाई देती थी। मेरा जलेबी का दोना उस दिन चील झपट्टा मारकर गिरा गई। और मैं शान्तिलता की बेल की ओट में खड़ी होकर रोने लगी, और न जाने कितनी देर तक रोती रहती, अगर महादेवी बहिनजी मुझे बहलाने न आती। वे मुझे अपने कमरे में ले गई, पुचकार कर उन्होंने मुझे अपने दोनों में से चार जलेबियाँ खाने को दी। मैं जलेबी खाने को लगी थी और वे मेरी मोटी चोटी से खेलती रही। उन्होंने मेरी चोटी को दबाते हुये पूछा,—'तुम इतने लम्बे बाल कैसे संभाली हो, कौन तुम्हारी चोटी गूंथता है?' मैंने कहा, 'हम दोनों बहिन एक दूसरे की चोटी गूंथ देती हैं' 'क्या तुम्हारी बड़ी बहिन है?' उन्होंने पूछा।

जलेबी कुतरते हुये मैंने उत्तर दिया, 'नहीं छोटी बहिन है।'

कुछ याद सा करती हुई बोली, 'वो ही गोल मुंह की गोरी सी लड़की, क्या नाम है, शकुन्तला।' मैंने सिर हिला दिया, जलेबी का रस मेरे फ्राक पर गिर गया था, उन्होंने गीले तौलिये से मेरा मुंह और फ्राक साफ करके, मुस्करा कर कहा, 'अच्छा, आया करो कभी मेरे कमरे में, अकेले खड़े होकर रोया नहीं करते।' मैं शरमा कर भाग गई।

उस दिन से महादेवी बहिन जी के प्रति मेरे हृदय में एक लगाव

सी पैदा हो गया। वे मुझसे आयु और कक्षा में बड़ी थी। अतएव अधिक परिचय बढ़ाने का साहस तो मैं नहीं कर सकी, परन्तु जब भी प्रार्थना भवन या रसोई अथवा ग्राउंड में वे मुझे मिलती तो देखकर, जरा गर्दन टेढ़ी करके मुस्करा देती। उनका व्यक्तित्व ऐसा प्रभावशाली था कि सादगी में भी आकर्षक प्रतीत होता था। उनकी चमकती हुई आँखें और खिलखिला कर हंसना, मनुष्य को बरबस अपनी ओर खींच लेतां था। बच्चों के प्रति उनकी दिलचस्पी, गरीबों पर दया तथा प्रत्येक काम को अपने अनूठे ढंग से करने की आदत का मुझे उन चार सालों में, जो उनके साथ बोर्डिंग हाउस में व्यतीत किये, भली प्रकार पता लग गया था। जहाँ चार बच्चे मिल खेलते, या झगड़ते होते वे दूर से खड़ी होकर उनकी बातचीत, भाव भंगी का अध्ययन सा करने के लिये रुक जाती थीं। उनकी साथ की सहेलियाँ झुंझला कर बोलती, 'अब आगे चलती भी हो कि यहीं रम गई, बस तुम्हें साथ में लेकर कहीं समय पर पहुंचना कठिन है, कहीं गिलहरी को कुतरते देखा या चिड़िया अपने बच्चे को चोगा देते दिखाई पड़ी कि तुम्हारे लिये तो एक तमाशा खड़ा होगया ' महादेवी कहती, 'भाई जरा देखो न इन्हें, ये बच्चे भी खूब हैं, इनकी आँखें कैसी चमकती हैं, अभी रो रहे हैं, अभी हँस देंगे, उधर लड़े और इधर फिर खेल मेल हो गया। कितना प्राकृतिक है इनका व्यवहार। मन में मैल नहीं। जैसे जैसे मनुष्य बड़ा होता है, उसके दिल में मैल जमता जाता है।' सहेलियाँ हंसकर कहतीं, 'अब तुम चलोगी कि कविता तरंग में गोता लगाओगी।'

महादेवी जी को एकान्त तो आरम्भ से ही पसन्द था। शायद इससे उन्हें साधना में सुविधा मिलती थी। पेड़ों के नीचे झाड़ियों के पीछे, बगीचे के किसी कोने में, मुड़ी हुई डाल पर, बैठ कर तने का टेका लगा कर, वह घंटों गुजार देती थी स्कूल की मैटरन जिज्जा भी उनके मौजी स्वभाव से वाकिफ हो गई थी। अगर खाने पर वे नहीं पहुंची या दोपहर की टिफिन के समय दिखाई न पड़ी, तो वे उनका खाना या नाश्ता उठवा कर रख देती थीं।

एक दिन की घटना है कि वे इसी प्रकार कविता रसंग में डूबकर चम्पा के पेड़ के नीचे सो गईं। उनसे कुछ दूरी पर एक नागिन सर्प मेंढकों का मारता कर कुंडली मार कर पड़ा था। इतने में चौकीदार भग्गू उधर से निकला। चिड़िया की चीं चीं से उसका ध्यान उस ओर आकृष्ट हुआ। महादेवी बहिन जी से कुछ दूरी पर सांप को देख वह बड़ा पशोपेश में पड़ा कि अगर लाठी की चोट मारता हूँ, तो कहीं सांप उलट कर उनकी ओर न भागे। भग्गू था चतुर। उसने धीरे से ओट में होकर अपने मोटे डंडे से सर्प का फन दबा कर पुकारा, 'ए बिटिया उठो, सांप है। सांप।' इधर क्रोध से सांप अपनी पूँछ फटकारने लगा। फन तो कुचल ही गया था। महादेवी के उठ जाने पर भग्गू ने लाठी से उसके धड़ के दो टुकड़े कर दिये। महादेवी बहिन जी ने भग्गू को एक रुपया इनाम दिया। उस दिन से जब कभी भी भग्गू सांप मारता हम सब चन्दा करके, एक रुपया जुटाते, जो कमी रह जाती, महादेवी पूरी कर देती।

उस दिन जिज्जा ने महादेवी बहिन जी को मीठी झिड़की देते हुये कहा, 'महादेवी तुमने तो परेशान कर दिया, अगर पेड़ के नीचे सांप डस लेता, तब!'

'भगवान के घर से अभी बुलावा आने में देर है; तुम मेरी चिन्ता मत करो'—वे अपने अनूठे ढङ्ग से खिलखिला कर बोली।

ममता से भरकर जिज्जा बोली 'भगवान करें तुम युग युग जिओ। तुम्हारे सिवाय क्रास्टवेट में है कौन जो कवि सम्मेलन में भाग लेकर स्कूल का नाम ऊंचा करे।'

महादेवी जी कविता तो १३, १४ वर्ष की आयु से ही करने लग गई थी। वे समस्यापूर्ति तथा उत्सवों पर स्वरचित कविता पढ़ कर सुनाती थी। इसके अतिरिक्त हम लोग उन्हें अभिनय के लिये भी कविता रचने के लिए परेशान कर छोड़ते थे। मुझे पहले नहीं मालूम था कि वे कविता भी करती हैं, एक बार गर्ल्स गाइड्स के उत्सव में

हमारे ग्रुप ने 'भारत के प्रान्त' अभिनय के लिये भिन्न भिन्न प्रान्तों का परिचय पद्य में देना था। उस विषय पर महादेवी बहिन जी से कविता बनवाने का भार मुझे सौंपा गया। पहले तो बहिन जी हँस कर टाल-मटोल करती रहीं। जब मैंने मुँह लटका कर कहा, 'अच्छा, जैसी आपकी इच्छा, पर लड़कियों मुझे ताना अवश्य देंगी कि महादेवी जो की दुलारी होने का अभिमान था, इतना ही काम नहीं करवा सकी।' यह सुनकर मालूम नहीं उन्हें क्या विचार आया, कलम उठाई और आधे घंटे में इस पद रच कर उन्होंने मुझे पकड़ा दिये। सहेलियों में मेरी साख बनी रही। इसके लिए मैं आज तक उनकी कृतज्ञ हूँ। इसके पश्चात एक बार उन्होंने वसन्तोत्सव पर भी अभिनय कविता रचकर दी थी। इस खेल में एक कन्या ऋतुराज बनी था, दूसरी वनदेवी, तीसरी पवन बनी थी। उसकी वेषभूषा आदि का सुझाव भी महादेवी बहिन जी ने हो दिया था। यह खेल वार्षिक उत्सव पर हुआ था, सबने बहुत पसन्द किया। इसके अतिरिक्त जन्माष्टमी पर झांकी का शृंगार करने में भी महादेवी बहिन जी के सुझाव बहुत सुरुचिपूर्ण होते थे।

एक बार यूनिवर्सिटी में श्रीधर पाठक के सभापतित्व में कवि सम्मेलन का आयोजन हुआ। क्रास्थवेट कालिज के विषय में यह बात प्रसिद्ध थी कि वह यूनवर्सिटी की प्रत्येक प्रतियोगिता में भाग लेता है। महादेवी जी उन दिनों इंटर में पढ़ती थी। 'घूंघट के पट खोल' इस पर समस्यापूर्ति करनी थी। कबीर के सदृश्य रहस्यवादी रचना तो युवकों को करनी पसन्द न थी। महादेवी जी ने भी कुछ अपनी रचना में नवोढ़ा नायिका का दृश्य ही चित्रित किया था। लड़कों ने जब देखा कि क्रास्थवेट से भी कन्याएं प्रतियोगिता में भाग लेने आई हैं, पहले तो उन्हें बड़ी खुशी हुई, परन्तु बाद में जब उन्होंने देखा कि श्रीधर पाठक जी ने शृंगार रस की अधिकता के कारण अधिकांश कविताओं को पढ़ी जाने से रोक दिया, तब तो उन्हें बहुत बुरा लगा। सारी सभा में खुसर पुसर मच गई। धीरे धीरे लड़के बिदकने लगे, हो हल्ला

एक दिन की घटना है कि वे इसी प्रकार कविता तरंग में डू
चम्पा के पेड़ के नीचे सो गईं। उनसे कुछ दूरी पर एक धामिन
मेंढकों का मारता कर कुंडली मार कर पड़ा था। इतने में चौकी
मग्गू उधर से निकला। चिड़िया की चीं चीं से उसका ध्यान उस
आकृष्ट हुआ। महादेवी बहिन जी से कुछ दूरी पर सांप को देख
बड़ा पशोपेश में पड़ा कि अगर लाठी की चोट मारता हूँ, तो कहीं
उचट कर उनकी ओर न आवे। मग्गू था चतुर। उसने धीरे से
में होकर अपने मोटे डंडे से सर्प का फन दबा कर पुकारा, 'ए बि
उठो, सांप है। सांप।' इधर क्रोध से सांप अपनी पूँछ फटकारने
फन तो कुचल ही गया था। महादेवी के उठ जाने पर मग्गू ने
से उसके धड़ के दो टुकड़े कर दिये। महादेवी बहिन जी ने म
एक रुपया इनाम दिया। उस दिन से जब कभी भी मग्गू सांप
हम सब चन्दा करके, एक रुपया जुटाते, जो कमी रह जाती, म
पूरी कर देती।

उस दिन जिज्जा ने महादेवी बहिन जी को मीठी झिड़की
कहा, 'महादेवी तुमने तो परेशान कर दिया, अगर पेड़ के नी
डस लेता, तब ?'

'भगवान के घर से अभी बुलावा आने में देर है, तुम मेरी
मत करो'—वे अपने अनूठे ढङ्ग से खिलखिला कर बोलीं।

ममता से भरकर जिज्जा बोली 'भगवान करें तुम युग युग
तुम्हारे सिवाय क्रास्टवेट में है कौन जो कवि सम्मेलन में म
स्कूल का नाम ऊंचा करे।'

महादेवी जी कविता तो १३, १४ वर्ष की आयु से ही
गई थीं। वे समस्यापूर्ति तथा उत्सवों पर स्वरचित कविता
सुनाती थीं। इसके अतिरिक्त हम लोग उन्हें अभिनय के
कविता रचने के लिए परेशान कर छोड़ते थे। मुझे पहले न
था कि वे कविता भी करती हैं, एक बार गर्ल्स गाइडस के

हमारे ग्रुप ने 'भारत के प्रान्त' अभिनय के लिये भिन्न भिन्न प्रान्तों का परिचय पद्य में देना था। उस विषय पर महादेवी बहिन जी से कविता बनवाने का भार मुझे सौंपा गया। पहले तो बहिन जी हँस कर टाल-मटोल करती रहीं। जब मैंने मुँह लटका कर कहा, 'अच्छा, जैसी आपकी इच्छा, पर सहेलियाँ मुझे ताना अवश्य देंगी कि महादेवी जी की दुलारी होने का अभिमान था, इतना ही काम नहीं करवा सकी।' यह सुनकर मालूम नहीं उन्हें क्या विचार आया, कलम उठाई और आधे घंटे में दस पद रच कर उन्होंने मुझे पकड़ा दिये। सहेलियों में मेरी साख बनी रही। इसके लिए मैं आज तक उनकी कृतज्ञ हूँ। इसके पश्चात् एक बार उन्होंने वसन्तोत्सव पर भी अभिनय कविता रचकर दी थी। इस खेल में एक कन्या ऋतुराज बनी थी, दूसरी वनदेवी, तीसरी पवन बनी थी। उसकी वेषभूषा आदि का सुझाव भी महादेवी बहिन जी ने ही दिया था। यह खेल वार्षिक उत्सव पर हुआ था, सबने बहुत पसन्द किया। इसके अतिरिक्त जन्माष्टमी पर झांकी का शृंगार करने में भी महादेवी बहिन जी के सुझाव बहुत सुरुचिपूर्ण होते थे।

एक बार यूनिवर्सिटी में श्रीधर पाठक के सभापतित्व में कवि सम्मेलन का आयोजन हुआ। क्रास्थवेट कालिज के विषय में यह बात प्रसिद्ध थी कि वह यूनवर्सिटी की प्रत्येक प्रतियोगिता में भाग लेता है। महादेवी जी उन दिनों इंटर में पढ़ती थीं। 'घूंघट के पट खोल' इस पर समस्यापूर्ति करनी थी। कबीर के सदृश्य रहस्यवादी रचना तो युवकों को करनी पसन्द न थी। महादेवी जी ने भी कुछ अपनी रचना में नवोढ़ा नायिका का रूप ही चित्रित किया था। लड़कों ने जब देखा कि क्रास्थवेट से भी कन्याएं प्रतियोगिता में भाग लेने आई हैं, पहले तो उन्हें बड़ी खुशी हुई, परन्तु बाद में जब उन्होंने देखा कि श्रीधर पाठक जी ने शृंगार रस की अधिकता के कारण अधिकांश कविताओं को पढ़ी जाने से रोक दिया, तब तो उन्हें बहुत बुरा लगा। सारी सभा में घुसर पुसर मच गई। धीरे धीरे लड़के बिदकने लगे, हो हल्ला

मचा दिया। महादेवी जी बार बार जिज्जा से यही कहें, 'जिज्जा चलो
हम लोग यहां से चलें, मेरी कविता कोई दूसरा पढ़ कर सुना देगा।
यहां अब ठहरना उचित नहीं। हमारी उपस्थिति के कारण लड़कों में
असन्तोष छाया हुआ है।'

हार कर जिज्जा ने श्रीधर पाठक जी से निवेदन किया कि 'महादेवी
इतनी भीड़ में कविता न पढ़ सकेगी। यह है इनकी कविता। आप
किसी से पढ़वा लीजियेगा। हमें चलने की आज्ञा दें।' होस्टल वापिस
आकर सारी सहेलियों में उस कवि सम्मेलन को लेकर एक चर्चा छिड़ी
किसी ने कहा, 'महादेवी तुम कवि बनने का दावा भला क्या करोगी
लड़कों से डर गई।' दूसरी बोली, 'कविता शृंगार रस की थी तो क्या
हुआ। तुमने तो अपनी रचनायें शिष्टता को पार नहीं किया था।
तीसरी बोली, 'और क्या कवि के नाते तो तुम्हें बहुत कुछ दर्द दिख
कहना पड़ेगा, ऐसा शर्मीला स्वभाव लेकर तो कह चुकी।'

सखियां आलोचना करती जा रही थीं और महादेवी बहिन जी
खिल खिलाकर हंस रही थीं। ये आरम्भ से ही बड़ी संकोची स
स्वभाव की थीं। आत्म-प्रशंसा सुनकर तो इनका मुंह लाल हो जाता
था। हिन्दी की प्रोफेसर जब इनके लेखों तथा रचनाओं की कक्षा में
प्रशंसा करती, इनकी सुन्दर लिखाई तथा उपमाओं की दाद देती तो
इनका मुंह शर्म से लाल हो जाता।

निबन्ध का घण्टा केवल इन्हीं की रचना पढ़ने में बीत जाता, जिस
दिन 'पोयट्री' होती बस इन्हीं को अर्थ समझाने को खड़ा किया जाता।
उस दिन हिन्दी के पीरियड में एक अच्छा खासा कवि सम्मेलन का
मजा आ जाता। जब ये यूनिवर्सिटी में एम० ए० की पढ़ाई करने गईं
तब तक तो इन्हें काफी प्रसिद्धि मिल चुकी थी। सुना है उन दिनों में
भी प्रोफेसरों और लड़कों की प्रशंसा के कारण कुछ दिन तक तो
बड़ी परेशान सी रहीं। शनैः शनैः इस वातावरण की यह आदत
. ।

वेषभूषा तो महादेवी बहिन जी की आरम्भ से ही बहुत सादी रही है। आरम्भ में मैंने इन्हें कभी कभी रंगी हुई सूती धोती पहिने देखा भी था। रंगों का मिश्रण कर ये धोती रंगती भी बहुत सुन्दर थीं। कालिज में आने के पश्चात् तो यह बारीक किनारे की सफेद व सूती धोती ही पहिनती थी, सीधा लम्बा पल्ला इनके वेषभूषा की विशेषता थी। शृंगार के नाम से तो हाथों में दो कांच की चूड़ियाँ या माथे पर बिंदी भी लगाते मैंने इन्हें नहीं देखा। जिज्जा कई बार इन्हें टोकती भी, 'ए, महादेवी यह क्या सोटे से नंगे हाथ लटकाये फिरती हो सिर में तेल भी तो नहीं डालती। क्या उदास सा चेहरा बनाया हुआ है। पढ़ लिख कर आजकल की लड़कियों के ढंग ही अजीब हो गए हैं।'

यह मीठी झिड़कियाँ सुनकर महादेवी हँस देती। परन्तु उनकी हँसी भी उनके अन्तस्तल में छिपी उदासी को छिपाने में असफल ही रहती थीं। संसार के दुखों को इन्होंने इतनी तीव्रता से अनुभव किया था कि युवावस्था में ही वे एक सन्यासिनी की तरह रहने लगी थीं। सखी सहेलियों के लिए इनका मूड एक पहेली बना हुआ था। जिन बातों, चीज़ों तथा कार्यों से दूसरों का मनोरंजन होता था, ये उनके प्रति उदासीन रहती थी। मुँह पर मुस्कराहट हमेशा खेलती रहती, परन्तु आंखों में से एक उदासीनता झाँका करती थी।

इनके चेहरे में जो एक विशेषता है, वह है इनके कान, कुछ आगे को बढ़े हुए झाँकते हुये से। मानो वे मानव की करुण पुकार सुनने के लिये कुछ सतर्क हो खड़े हों

जिस साल मैंने काशी विश्वविद्यालय से एम० ए० किया वे भी कानवोकेशन पर वहाँ पधारी थीं। उन्हें यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि मैंने हिन्दी में एम० ए० किया है। मुझे कुछ लिखते रहने का प्रोत्साहन दिया। शाम को आर्टस कालिज में कुछ उत्सव था, मैंने पूछा, 'आप नहीं चल रही हैं?' कुछ हँस कर बोलीं, 'तुम्हारा विद्यालय

नगरी का निर्माण बहुत सुन्दर है, उत्सव तो बहुत देखे, दिन भर बैठे
बैठे थक गई हूँ, जी करता है, घूम आऊं।'

मैं भी साथ हो ली। बोटेनिकल गार्डन में से होते हुये, हम अमरूद
की वाटिका में पहुँच गये। खूब पक्के पक्के अमरूद लगे थे, मालिन को
एक रुपया पकड़ाया और उन्होंने पेड़ों पर से अमरूद तोड़ तोड़ कर
झोली भरनी शुरू की। मैंने आश्चर्य से पूछा, 'बहिन जी क्या करियेगा
इतने अमरूदों का?' एक पके अमरूद को उंचक कर तोड़ते हुये बोलीं,
'अभी बताती हूँ।'

सब अमरूदों को एक टोकरी में भर कर उन्होंने सड़क के पार ईंटों
के ढेर के पास खेलते हुये आठ-दस बच्चों को बुलाया। सबको बिठाकर
अमरूद उनमें बांट दिये। एक अमरूद खुद भी पकड़ लिया, एक मुझ
कर मुझे भी दिया और बस बच्चों से बातचीत करते हुये उन्होंने घन्टा
गुज़ार दिया। उनके बहिन भाई परिवार गांव आदि के बारे में पूछती
रही, फिर आग्रह पूर्वक बोलीं, देखो तुम पढ़ा करो। डूबते हुये सूर्य
की किरणें महादेवी जी के मुंह पर पड़ रही थीं मुझे उनकी कहानी
'घीसू' के गुरुजी की याद हो आई। आज इस रूप में उनके साक्षात
दर्शन हुये।

लौटते हुये मार्ग में पुराने दिनों की चर्चा छिड़ी। चन्द्रावती त्रिपाठी,
चन्द्रावती लखनपाल, ललिता पाठक आदि की चर्चा करती हुई वे बोलीं,
'सावित्री! वैसी सहेलियाँ अब नहीं मिलतीं। छात्रावास में बीते हुये, वे
दिन कितने सुन्दर और प्यारे थे। अतीत की स्मृति एक मीठा-मीठा
दर्द पैदा कर देती है। प्यारा बचपन बीत गया।' मैंने कहा, 'भविष्य
भी तो सुन्दर और आशाजनक है। सफलता और यश तो आपका
स्वागत करने के लिये खड़े हैं।'

'हां ठीक ही है', कह कर वे कुछ मुस्करा दीं।
उनकी आँखों में फिर वही परिचित करुणा झांक उठी।

(श्रीमती सावित्रीदेवी वर्मा)

श्मशान दृश्य

"श्री राम नाम सत्य है, सत्य बोलो गति है!" एक समूह कंठ से निकले इन दो वाक्यों में एक ऐसा आकर्षण है, ऐसा चुम्बक सा प्रभाव है कि बरबस मनुष्य के सामने अपना अन्त समय नाच उठता है, चिता की लहराती लपटें उसके नेत्रोन्मुख हो जाती हैं और स्वप्न-वत् उसे दृष्टिगोचर श्मशान ऊजड़, वीरान, भयावह और वीभत्स—वह श्मशान जिसे भूतनाथ भगवान शिव का भ्रमण-स्थल कहा जाता है और पुष्पदन्त ने भी तो अपने 'शिव-महिम्न स्तोत्र' में लिखा है:—

> "श्मशानेश्वा क्रीड़ा स्मरहर पिशाचाः सहचरा
> श्चिता भस्मालेपः स्रगपि न करोटी परिकरः,
> अमंगल्यं शीलं तव भवतुनामैव मखिलम्,
> तथापि स्मर्तृणां वरद परमं मंगलमघि!"

किन्तु फिर भी जहाँ मंगलशील शिव का वास है, वहाँ भी मानव जाने से भयभीत होता है! कल्पना का वह चित्र जो भयावह और वीभत्स है मानव को श्मशान की ओर बढ़ने से रोकता है—वह वास्तव में भयप्रद नहीं है हाँ यह बात अवश्य है कि मानव-हृदय उस वीभत्सता को देखकर एक बारगी दहल उठता है और कितने ही भूत-प्रेतों पर विश्वास न करने पर भी उसे सहसा वहाँ भूत-प्रेत घूमते नज़र आते हैं और वह सोचता है कि वह वहाँ से भाग जाय और कितनी ही बार वह भाग भी जाता है?

बड़े बड़े शहरों में बने हुए पक्के श्मशानों की बात तो छोड़िये किसी गांव के श्मशान की ओर चलिये, जहाँ आस-पास के तीन-चार गाँवों के मुर्दे जलाये जाते हैं। किसी कृष्ण-पक्ष की अंधेरी रात में हिम्मत कर उधर क़दम बढ़ाइये। इधर-उधर नज़रें दौड़ाने पर आपको चारों ओर चितायें लहराती हुई जलती हुई दृष्टिगोचर होंगी, कहीं-कहीं कोई चिता लकड़ियाँ समाप्त हो जाने पर केवल कोयलों का ढेर मात्र रह जाती है और दूर से किसी ठंडे अलाव की तरह लगती है,

श्मशान भूमि में इधर-उधर खड़े हुए कुछ छोटे पेड़—जिन्हें
पौधे कहना ही उपयुक्त होगा - कीकर बबूल या बेरी की छो
कांटेदार झाड़ियाँ पहली नज़र में वहाँ काले-काले नंगे मनुष्यों
देती हैं और यदि दुर्भाग्य से हवा धीरे-धीरे या तेज चल रही
वे झाड़ियाँ इधर-उधर भागती हुईं प्रतीत होती हैं और वहाँ
हुआ दर्शक एकबारगी भूतों के भ्रम से भयभीत हो जाता है।

वर्षा ऋतु की काली और भयानक तूफ़ानी रात में तो अच्छे-अच्
के छक्के श्मशान में छूट जाते हैं। वर्षा और आंधी के थपेड़ों में सन
सनाती हुईं आवाज़ें, कहीं दूर किसी कुत्ते के रोने की आवाज़, और
कहीं से आता गीदड़ का रोना। स्वर, और रह-रह कर कड़क आती
बिजली में ऊँचे-ऊँचे पेड़ों का चमक-चमक उठना, और वर्षा के थपेड़ों
और तेज हवा के झोंकों से संघर्ष करती हुई चिता को लपटें
और उनका तेज हो-हो कर भड़क उठना, फिर मन्दा पड़ना और फिर
भड़कना यह सब मिल एक व्यक्ति के डरा देने के लिये पर्याप्त कारण
उपस्थित कर देते हैं और फिर किसी के लिये उस समय वहाँ ठहरना
कठिन ही नहीं असम्भव हो जाता है और वह डर के मारे सांस रोककर,
इस भय से कि कहीं कोई भूत-प्रेत न पकड़ ले और या उसका
हार्टफ़ेल न हो जाये, वह भागने लगता है और भागता ही रहता
है—भागता ही रहता है बिना सांस तोड़े, एक सांस से, और तब तक
भागता ही रहता है जब तक कि वह किसी ऐसे निरापद स्थान में
नहीं पहुँच जाता, जहाँ उसे भूत-प्रेत का डर नहीं होता और जहाँ
उसे अपने जैसे दूसरे मानवों के अस्तित्व और मौजूदगी का विश्वास
होता है, और जहाँ वह यह महसूस करता है कि श्मशान की वीभत्स
या भयानक छाया उसका पीछा छोड़कर बहुत दूर रह गई है। किन्तु
वह छाया जीवनभर उसका पीछा नहीं छोड़ती।

(श्री कुमार ...)

...रूप-वाणी प्रिंटिंग हाउस, ११, दरियागंज, दिल्ली में मुद्रित।